



मैत्रेय

गोविंदवल्लभ पंत





आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली



प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

मूल्य : ६ रुपए ५० न० पै०
प्रथम संस्करण १ ९ ५ ९
आवरण मा० मा० इतोसे
मुद्रक नवीन प्रेस दिल्ली ६

प्रकाशकीय

हिन्दी ने पिछले दिनों उपन्यास साहित्य में जितनी प्रगति की है उतनी किसी और क्षेत्र में नहीं। नवीन प्रतिभाओं और मान्यताओं का समावेश करके हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने उपन्यास-कला को काफी साज-संवार दिया है। सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और मूक साधक श्री गोविन्दवल्लभ पंत का यह नवीनतम बृहद् उपन्यास हिन्दी के हाथों में सौंपते हुए हम गर्व अनुभव करते हैं। पंत जी ने उपन्यास या नाटक जो कुछ आज तक लिखा है उसे अमरता के ऐसे अमृत-बिन्दुओं से रस सिक्त कर दिया है कि जो प्रत्येक पाठक के हृदय पर एक मर्मस्पर्शी और अमिट प्रभाव छोड़कर अपनी गणना सबसे पृथक उच्च कोटि के साहित्य में करा लेता है। 'मैत्रेय' भी उनकी एक ऐसी ही कृति है जिसे भुलाना हिन्दी के बस का नहीं यह हमारा दावा है। यद्यपि तिब्बतीय पृष्ठभूमि पर आधारित यह एक काल्पनिक उपन्यास है लेकिन भावभूमि तथा शैली द्वारा पंत जी ने ऐसा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है कि इसे पढ़ते समय ऐतिहासिक उपन्यास जैसा आनन्द प्राप्त होता है।

कई दर्जन उपन्यास और नाटकों के प्रणेता श्री पंत जी हिन्दी के लिए अपरिचित नहीं हैं।

प्रकाश और प्रचार के लिए प्रयत्नशील न होने पर भी हिन्दी साहित्य ने उनकी कृतियों को जैसा मान-सम्मान दिया है वह सचमुच हर्ष का विषय है। प्रस्तुत उपन्यास पर किये गये उनके परिश्रम का भी उचित मूल्यांकन होगा ऐसा हमें विश्वास है।

—प्रकाशक

परिचय

वह महिमावान भविष्य में जन्म लेगा मत्रय के नाम से। मेरे
अनुचरों से उसके भक्तों की संख्या कई गुना अधिक होगी।
—बुद्ध शाक्य मुनि (दीघ्यनिकाय)

इतिहास अपने को दुहराता है—यह वैज्ञानिक सत्य हो चाहे नहीं हमारा यह उपन्यास इस विवाद का पोषक नहीं है। इस संसार के पाप ताप को स्वच्छ-शीतल करने के लिए भविष्य में भगवान् के अवतरण का विश्वास संसार के सभी धर्मों में है। वह मुहम्मद के रूप में हो ईसा के कृष्ण के या मैत्रेय के।

तिब्बत की पृष्ठभूमि को लेकर इस उपन्यास की रचना की गई है। उपन्यास आंधी और कुहासा के बीच एक बर्फ के तूफान से आरंभ होता है। मुख्य कथा के सूत्र इस प्रकार हैं—

अमची कलजन और सिरता रिंबूची ने दोनों बचपन में एक ही गुरु के निकट पढ़ते थे। कलजन ने हिकमत सीखी थी और रिंबूची ने ज्योतिष। उन दोनों की पत्नियाँ मर चुकीं और उन दोनों के मन में वैराग्य ने जड़ पकड़ ली। दोनों आत्मा की खोज के लिए तैयार हो गये।

वे दोनों बंधनों से मुक्त थे। उनके कोई उत्तरदायित्व नहीं थे न किसी को कुछ लेना-देना। उन दोनों ने बहुत दूर चाङ् थङ् प्रदेश के हिम-मरु में अवस्थित खंपोलामा के मठ में उनसे दीक्षा लेकर आत्मा का मंत्र ज्ञान लेने का निश्चय किया और वे एक दिन बिना किसी तैयारी और भय के वहाँ के लिये चल दिए।

उक्त खंपोलामा के मठ के लिये विधाता के अदृश्य विधान में उत्तरी भारत के एक पात्र को भी अपना मार्ग बनाना था। उसका नाम था भैरव—हमारे उपन्यास का नायक। वह अपने धनी माता-पिता का

एकमात्र पुत्र था। वह बुद्धि का तीक्ष्ण था पर मस्त पर ठहर नहीं सकी उसकी समझ। झूठ-मूठ मिथ्या आहार-विहार, जीवन की तड़क-भड़क घर के भीतर ही से शुरू हो गई थी बाहर संगति ठीक नहीं मिली। पढ़ना लिखना छूट गया। क्लब खोलकर वह उसमें नाटक करने लगा और उस बहाने रात रात भर घर से गायब रहता।

माता पिता का स्नेह-बंधन धन-संपत्ति का लालच तथा अंकुश अधीनता सब कुछ छोड़कर एक दिन वह एक मद्रासी की कुमारी कन्या वासो को बहकाकर बंबई को चल दिया। दैवसंयोग से बंबई की एक धर्मशाला में वासो को धोखा देकर कोई दूसरा ही उठा ले गया! भैरव के मन में भयानक सामाजिक विद्रोह जाग उठा। वह पूँजीपति पिता का द्रोही तो था ही भारत के धर्म-पाखंड के लिये भी उसके मन में प्रचंड आग सुलग उठी। धर्मशाला के संस्थापक की मूर्ति की नाक तोड़कर वह भागा और रेल से बंबई छोड़कर अज्ञात दिशा को चल दिया।

रेल में उसकी र व नामक एक विशिष्ट मनुष्य से मित्रता हो गई और उसके साथ वह हिमालय की उपत्यका में स्थित भयंकरवादियों के संघ में भर्ती होने को तैयार हो गया। उस संघ में केवल अविवाहित ही भरती हो सकते थे। भैरव ऐसा था ही। अपने साहस की परीक्षा देने के लिये वह चलती हुई रेल से भूमि पर कूद पड़ा। उसके हाथ की हड्डी खिसक गई! उसकी मरहम-पट्टी कर र व उसे भयंकरवादियों के संघ में ले गया। संघ की सभानेत्री एक माता जी थीं। कहने को उससे यह कहा गया था कि यहाँ माता जी के सिवा और कोई नारी नहीं है। पर उसे वहाँ एक भिक्षुधारी दिखाई दिया—लंबे सिर, कमर तक लटकती हुई उसकी केशराशि थी माथे पर भस्म की रेखाएँ। उसके सारे शरीर में एक अद्भुत सौन्दर्य था और भैरव उसकी यष्टि को देखकर बड़े विस्मय में खो गया जब उसने अपने को पुरुष की संज्ञा दी। भैरव उस धोखे में नहीं पड़ा—वह उसे नारी ही समझने लगा।

उधर से अनेक कठिनाइयों को पार कर वे दोनों वैद्य और ज्योतिषी

संपोलामा के मठ में पहुँच गए और विश्व के कल्याण के लिए संसार में मैत्रेय के जन्म की कामना करने लगे ।

इधर भैरव को उस भयंकरवादियों के मठ में अंतरंग सदस्यता के लिए छांट लिया गया । उसे वह मठ आध्यात्मिकता का रंग लिए जान पड़ा । वे लोग एक 'युग चैतन्य' का निर्माण करना चाहते थे । युग चैतन्य— एक अतिमानव जो अपनी शुद्ध भावना से सारे जग और विश्व को प्रभावित कर उसमें शांति की स्थापना कर देगा । भैरव को उस युग चैतन्य के लिए छांट लिया गया । उसका आसन माता जी से भी ऊपर लगा दिया गया । उसकी आज्ञा वहाँ सर्वोपरि हो गई । लेकिन भैरव को वह भार असह्य हो उठा । वह उसे एक पाप समझने लगा । उसके मन में वह नरमेध-यागिनी भैरवी बस गई थी । उसी रात अपनी सर्वोपरि आज्ञा की शक्ति से उसने भैरवी का साथ ले वहाँ से चल देना निश्चित कर लिया पर बीच में बाधा आ पड़ने पर भैरवी वहीं रह गई ।

भैरव नदी में कूदकर जंगलों-पहाड़ों को लांघता हुआ कुछ तिब्बती सौदागरों के साथ गूंगा बनकर ल्हासा पहुँच गया फिर वहाँ से भागकर एक बुढ़िया के गाँव में उसका बेटा बनकर रहने लगा । बुढ़िया की मृत्यु पर एक दिन कुछ डाकू उसे आकर पकड़ ले गए और वह उनके दल का एक सदस्य बन गया ।

डाकुओं का सरदार उसे संपोलामा के मठ में ले गया । मठ के बाहर उसे एक हवाई जहाज दिखाई दिया और भूमि पर पड़ी हुई एक डायरी मिली जिसमें एक नारी के हवाई उड़ान का प्रारंभ लिखा था बाकी पन्ने फट गए थे ।

कमलम और रिशूनी उस मठ में मैत्रेय के अवतरण की साधना में लग गये । उन पर यह रहस्य खुल गया था कि वहाँ एक श्वेतांगना भी मैत्रेय की जननी के रूप में रहती है । ध्यान लगाने के लिए उन्हें उस महामाया का एक चित्र दिया गया । बाद को भैरव ने वहाँ आकर उस चित्र में भैरवी का वेश पाया— 'इस मठ में बंदिनी हूँ मैं कौन मुझे छुड़ायेगा ?—

कुमारी इवा मार्शिन।

भैरव बड़े चक्कर में पड़ गया। वह अब कापोलामा से मिला तो उसने अंग्रेजी के ज्ञान के कारण उसे उस श्वेतांगना का पुत्र मैत्रेय बन जाने की प्रेरणा दी। भैरव कुमारी इवा और कापोलामा के बीच में दुभाषिया बना।

बात ऐसी थी—कुमारी इवा हवाई जहाज द्वारा संसार की पहली परिक्रमा की रेकार्ड-स्थापना को उड़ी थी। मठ के पास उसका जहाज पेट्रोल की कमी से गिर पड़ा। कापोलामा ने उसे मैत्रेय के जन्म के लिए भगवान् का दान समझकर अपने मठ में रख लिया।

अन्त में भैरव मैत्रेय के सिद्धान्त पर विश्वास रखने पर भी उसके अवतरण का भार उठाने में अपने को असमर्थ पाता है और उस श्वेतांगना को श्वेतांगों की एशिया-विजय की कामना समझकर उसे वहीं से उसी हवाई जहाज में उड़ा ले जाता है।

—लेखक

१

छिन्नमस्ता

संसार का वह सर्वोच्च पठार! उसके ऊपर उस भयानक बर्फ के तूफान में मानो मूर्तिमान वीभत्स बढ़ा जा रहा था। उसकी गति में कोई शंका नहीं थी न उसके मन में किसी का डर। उसके कंधे पर जिस नारी का बोझ था उसके निराधार लटकते हुए हाथ-पैर और गरदन से स्पष्ट ही प्रकट था वह निष्प्राण थी।

मेघों में घनी कालिमा थी प्रचंड वेग था। बिजली में कड़क न थी गंभीर घोष था। कभी एकदम उजाला हो जा रहा था कभी तुरंत ही घोर अंधकार! पवन की गति तीस मील प्रति घंटे से कम न होगी। हिम की फुहार, फूलों की पंखुरियों-सी टूट-टूटकर धरती पर बरस रही थी।

भूमि पर आधे फुट के करीब बर्फ जम चुकी थी सामने के पहाड़ों को देखकर यही भासता था जैसे हिमालय पर्वत कुछ नीचे को उतर आए हैं। पहाड़ों पर के पेड़ बर्फ को ओढ़कर भूत-प्रेतों के से आकार में दिखाई दे रहे थे। जन-शून्य मार्ग! दूर-दूर तक कहीं किसी गाँव या मकान का पता नहीं था। वन में कोई पालतू या जंगली पशु न था न पवन में कोई पक्षी। इस कठोर धरती में सबके सब न जाने कहाँ छिपे बैठे थे?

केवल एक यही क्यों अपने प्राणों के लिए इतना निर्भय हो उठा? जान पड़ता है जब वह घर से चला था तब इस तूफान की कोई आशंका नहीं थी। और जो मिट्टी उसे इस समय ढोनी पड़ रही है वह

सहचारिणी थी। घर से चलते समय शायद ही उसने यह सोचा होगा कि वह ऐसे संकट में फँस जायगा।

उसके पैरों में घुटने तक का ऊन और चमड़े का जोता था जो हर कदम पर बर्फ के ऊपर बड़ा गहरा पदांक बनाता जा रहा था। ढीली बाँहों का पैरों तक लटकता हुआ उसका चुग्गा था कमर बाँध रखी थी उसने एक बैंजनी रंग के धारीदार ऊनी कमरबंद से। उसके सिर के लंबे बाल लंबी चोटी में गुँथे हुए पीठ पर लटक रहे थे। चोटी का शिरोभाग लाल के वस्त्र से घिरा हुआ था। उसके कानों में सोने की मुंदरी थी जिसमें कीमती पत्थर जड़े हुए थे। उसके गले और हाथों में भी मूँगे और फीरोजे की मालाएँ थीं। एक चौकोर चाँदी की कठुली उसके गले में लटकती थी जिसमें किसी तिब्बती देवता की उभरी हुई मूर्ति थी। उस ने अपने सिर में एक फ़ैल्ट का टोपा पहन रखा था।

वेश-भूषा से वह एकदम जंगली-सा नहीं प्रतीत हो रहा था पर जिस शारीरिक परिश्रम और ऋतु के काँटे को सहन करता हुआ वह अपने मार्ग में आगे बढ़ता जा रहा था उससे जान पड़ता था—वह व्यक्ति कठिनाइयों का भी अभ्यासी था।

वह फिर मार्ग में विश्राम के लिए रुक गया। उसने अपने कंधे के उस शव को भूमि पर बड़ी घृणा से पटक दिया। उसके दोनों हाथ उस के चुग्गा की लंबी बाहों के भीतर ही छिपे थे। उसने अपने टोप और कपड़ों पर जमी हुई बर्फ झाड़कर गिरा दी। बड़ी उपेक्षा-भरी दृष्टि से उसने शव की ओर देखा।

बाईस-तेईस वर्ष की सुन्दरी होगी वह। ऐसी किसी दीर्घ बीमारी के चिह्न अंकित नहीं थे उसके मुख में। युवक ने उसके अंग प्रत्यंग के तमाम आभूषण निकालकर एक कपड़े में बाँध फिर अपने चुग्गे के भीतर रख लिए। उसके बाद उसने अपनी कमर से चाँकू निकाला और तुरंत ही उसे वहीं खोल लिया।

फिर कुछ सोचा उसने और उस शव के तमाम वस्त्र खोलकर फेंक

दिए। उसका भार कुछ हलका हो गया था। लेकिन तूफान की तेजी जरा भी कम न हुई थी। फिर हिम से साथ संघर्ष करता हुआ वह आगे को बढ़ता गया। बड़ी आकुलता से मार्ग के चारों ओर देखता हुआ चला जा रहा था। कहीं पर किसी आश्रम या गाँव का कोई निशान उसे नहीं दिखाई दिया।

फिर थककर वह एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। उसने फिर अपना वह दुर्वह भार धरती पर पटक दिया। उसने बड़ी करुणा से उसके मुख को देखा। उसके प्राणविहीन होने पर भी उस युवक के भीतर कोई प्रतिहिंसा चल रही थी। यह स्पष्ट ही था। अचानक उसकी भावना में न जाने क्या तूफान आया उसने अपनी कमर में से फिर वह कांटा निकाला और उस शव की दोनों टाँगें काट डालीं। उसने दोनों को मार्ग से दूर जंगल की तरफ फेंक दिया। माँस की गंध से तुरन्त ही वहाँ पर गिद्ध और सियार प्रकट हो गये और उन कटी हुई टाँगों का माँस नोचने लगे।

इस बार निश्चय ही उसके बोझ में प्रत्याशित कमी हो गई थी। लेकिन तूफान में कोई सौम्यता नहीं आई थी। ठंड के कारण उस शव की नाड़ियों का काला खून जम गया था। उस बीभत्स भार को उठाकर उस युवक ने फिर अपने कंधे पर रखा और फिर अपने मार्ग में बढ़ने लगा।

वह ल्हासा की ओर जा रहा था। उस बोझ को वहाँ ले जाने का उसका क्या अर्थ होगा? और इस प्रकार उसे कम करने का ही मतलब क्या? वह कुछ दूर और बढ़ गया। उतना हलका कर देने पर भी वह शव उसे भारी लगने लगी। उसने उसे नीचे रख दिया और फिर कमर से कांटा निकाला। उसने उसके दोनों हाथ काटकर फेंक दिए।

अब वह उसकी चोटी पकड़कर ले चला। उसने कुछ ही मार्ग तय किया होगा कि फिर उसे बड़ी उलझन-सी प्रतीत हुई। फिर उसने उसे भूमि पर रख दिया। इस बार उसने उसका मस्तक काट लिया और

शेष धड़ के भी कई टुकड़े कर चारों दिशाओं में फेंक दिए।

तिब्बत में शव के अंतिम संस्कार की ऐसी प्रथा भी है। इसका मूल कारण वहाँ जलाने की लकड़ी का अभाव है। शव को काट-पीसकर अन्य जीवों को खिला तो दिया जाता है। पर इस प्रकार उसके अंग प्रत्यंग विच्छिन्न कर जगह जगह बिखरा देना शायद उस पुरुष के किसी मानसिक विक्षेप की साक्षी थी।

उस छिन्नमस्ता के मस्तक को उठाया उसने। वह व्यस्तभाव होकर बड़ी सरलता से सब हिम से लड़ता हुआ आगे को बढ़ने लगा। जाते जाते वह सोचने लगा—"जब सब कुछ इस अभागिनी नारी का काट काटकर फेंक चुका हूँ तो फिर इस मुंड का ही क्यों मोह हो गया ?"

उसने उस मुख को चोटी से पकड़कर अपनी ओर किया। इस बार प्रेत के चेहरे को देखकर कुछ हर्षित हुआ वह। फिर विचारने लगा—कितनी सुन्दर और छलहीन थी यह किसान रम्या ? जब मैं उस बरसात की समाप्ति में आई नमी से जब पीड़ित हुआ। इस सिर को कहाँ ले जा रहा हूँ मैं ? किसी मसाले के संयोग से इसे कुछ दिन के लिए स्थाई बना भी सका तो क्या ? हमारे प्रारंभिक दिनों की याद यह न जगा सकेगा। उसी चांडाल की छाया दिखाई देती मुझे इस मुख में !"

तूफान अब मिट गया था। हवा स्थिर हो गई थी और बर्फ का गिरना भी बंद हो गया था। उस युवक ने उस मस्तक को चोटी पकड़कर दो-तीन बार अपने पार्श्व में घुमाया और फिर दूर फेंक दिया। कुछ देर तक वह देखता रहा उसकी ओर अचानक जब उसने उस पर कुछ कौओं के झुंड को मँडराते देखा तो फिर उसका मोह जाग उठा और वह दौड़ा हुआ उस छिन्न मस्तक के पास आ पहुँचा। तब तक कौओं ने अपनी चोंचों से नोच-नोचकर उसकी नाक उड़ा दी थी उसके दोनों कान कुतरकर उसे सूना कर दिया था। जहाँ उसकी दो आँखें थीं वहाँ दो डरावने काले गड्ढे दिखाई देने लगे थे और दोनों होठों की मांसलता अदृश्य होकर दो जमे हुए जबड़ों की दन्तपंक्ति दृष्टिगत हो गई थी। बस

के मांसों को भी उन्होंने अपनी चोंचों से क्षत विक्षत कर दिया था।

उसने उस नारी को टुकड़े-टुकड़े कर दिशा-विदिशाओं में बिखेर दिया था। उसके मस्तक को काटकर वह उतनी दूर तक ले गया पर इस बीच कहीं उसके मन में ऐसा वैराग्य नहीं उपजा। उस क्षत-विक्षत मुख की कुरूपता से मानवी सौन्दर्य की क्षण-भंगुरता उसके मन में गड़ गई! उसने दोनों हाथों से अपना मुख ढक लिया और बड़ी जोर से चीख पड़ा—'हे भगवान्!

उस नारी के लिए उसकी जो भी घृणा थी वह सब समाप्तप्राय हो गई और उस सैनिक के लिये भी जिसने उसे बहका लिया था—जो कुछ प्रतिहिंसा उसने अपने मन में बड़ा रखी थी वह सब टूट-टूटकर गिरने लगी।

कैसा भयानक अंत है इस हाड़ चाम के निर्माण का? उसने धीरे-धीरे फिर उस नारी के शव को देखा। कौओं की चोंचों ने उसकी हड्डियाँ बाहर निकालकर उसकी असलियत खोल दी थी। उसकी इच्छा होने लगी उसी समय किसी दूर एकांत को चल दे। तिब्बत में मठों की कमी नहीं किसी में जाकर दीक्षित हो जाना असम्भव न था। विचार का यह बीज उसके मानस में पड़ गया।

'एक दिन मेरा भी इसी से मिलता-जुलता अंत हो जायगा और उस सिपाही का भी तो!" फिर वह गुनगुनाया मृत्यु के द्वार पर हमारी पार्थिव स्थितियाँ ही समानता को प्राप्त नहीं हो जातीं—मानसिक भावनाएँ भी अपनी विषमता खोकर सम पर आ जाती हैं। वह समता है वैराग्य की। श्मशान-वैराग्य!

उस भूलुंठित मुंड की यह दुर्दशा उसके लिये असह्य हो उठी। उस ने फिर उसकी चोटी पकड़कर उसे उठाया फिर दो-तीन चक्कर घुमा कर दूर फेंक दिया। निकट ही बहती हुई एक नदी के कगार पर गिर कर वह उसकी आँखों की ओट में हो गया।

उसने फिर ल्हासा की ओर जाने वाली अपनी राह पकड़ ली।

अब उसे शीत का प्रकोप अधिक सताने लगा। अब तक उसके पास एक भारी बोझ था जिसको ले जाने के श्रम से उसके शरीर में गरमी उत्पन्न हो रही थी और उसका मन बँटा हुआ था। अब शरीर और मन की अतिरिक्तता पर शीत बड़ी आसानी से चोट जमाने लगा। उसने अपनी चाल तेज कर दी। कुछ ही देर में वह एक छोटे-से गाँव के निकट आ गया।

२

चीनी भाई

इधर तूफ़ान का इतना अधिक ज़ोर नहीं था। जो कुछ थोड़ी-बहुत बर्फ़ गिरी थी वह गलकर साफ़ हो गई थी। गाँव के बीच से होकर ही मार्ग गया था। चारों ओर के खेतों में जौ की हरियाली फैली हुई थी। पेड़ों पर अभी बालें नहीं लगती थीं। वर्षा में स्नान कर उन पौधों का रूप निखर उठा था।

मारी के उस भयानक दंश का प्रभाव अभी तक उसकी चेतना में ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। ठंड से ठिठुरा हुआ वह गाँव के निकटतम मकान में जाकर आश्रय पाने के लिये बढ़ रहा था।

ज्योंही वह गाँव के भीतर को बढ़ा तो कुत्ते उस पर भौंकने लगे। वह चुपचाप एक ओर को खड़ा हो गया। कुत्ते अपने घर की तरफ़ घुसते हुए उस पर भौंकते ही रहे। घर के भीतर से एक बूढ़ा किसान आनेवाले को देखने के लिए बाहर निकल आया।

बूढ़े ने अपनी कमज़ोर आँखों पर हाथ रखकर प्रकाश की चकाचौंध को रोकते हुए आगे की ओर देखा और पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ धमजी कश्यप"—आगंतुक ने उत्तर दिया।

घर के स्वामी ने कुत्तों को झिड़क दिया। कुत्ते दुम दबाकर खिसक गए। उसने आवाज़ के सहारे आनेवाले को कुछ-कुछ पहचान तो लिया था, नाम सुनकर भी वह स्मृति के अंधकार में टटोलने लगा।

कश्यप इतने में उसके पास पहुँच गया था। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा—"क्यों बूढ़े गृह-स्वामी अच्छे तो हो ?"

अब उसे शीत का प्रकोप अधिक सताने लगा। अब तक उसके पास एक भारी बोझ था जिसको ले जाने के श्रम से उसके शरीर में गरमी उत्पन्न हो रही थी और उसका मन बँटा हुआ था। अब शरीर और मन की अतिरिक्तता पर शीत बड़ी आसानी से चोट चलाने लगा। उसने अपनी चाल तेज कर दी। कुछ ही देर में वह एक छोटे-से गाँव के निकट आ गया।

२

चीनी भाई

इधर तूफान का इतना अधिक जोर नहीं था। जो कुछ थोड़ी-बहुत बर्फ गिरी थी वह गलकर साफ हो गई थी। गाँव के बीच से होकर ही मार्ग गया था। चारों ओर के खेतों में जौ की हरियाली फैली हुई थी। पेड़ों पर अभी पातें नहीं उगती थी। वर्षा में स्नान कर उन पेड़ों का रंग निखर उठा था।

घाटी के उस भयानक अंत का प्रभाव अभी तक उसकी चेतना में ज्यों का-त्यों बना हुआ था। ठंड से ठिठुरा हुआ वह गाँव के निकटतम मकान में जाकर आश्रय पाने के सपने देख रहा था।

ज्योंही वह गाँव के भीतर को बढ़ा त्यों कुत्ते उस पर भौंकने लगे। वह चुपचाप एक ओर को खड़ा हो गया। कुत्ते अपने घर की तरफ घुसते हुए उस पर भौंकते ही रहे। घर के भीतर से एक बूढ़ा किसान आनेवाले को देखने के लिए बाहर निकल आया।

बूढ़े ने अपनी कमजोर आँखों पर हाथ रखकर प्रकाश की चकाचौंध को रोकते हुए सामने की ओर देखा और पूछा—'कौन है ?"

"मैं हूँ अपना कलमन'—आगन्तुक ने उत्तर दिया।

घर के स्वामी ने कुत्तों को झिड़क दिया। कुत्ते दुम दबाकर खिसक गए। उसने आवाज के सहारे आनेवाले को कुछ-कुछ पहचान तो लिया था नाम सुनकर भी वह स्मृति के अंधकार में टटोलने लगा।

कलमन इतने में उसके पास पहुँच गया था। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा—'क्यों बूढ़े गृह-स्वामी अच्छे तो हो ?"

अब उसके कोई संशय नहीं बाकी रहा—अत्यंत प्रसन्न होकर उसने कलजन का हाथ पकड़ लिया और उसे घर के भीतर ले जाते हुए बोला—"बड़े ठंडे तुम्हारे हाथ हैं। इतनी शीत में कहाँ से आ रहे हो हकीम जी ?"

गया था एक जरूरी काम से।

चलो पहले आग के पास चलो। मैंने चाय बना रखी है और अकेले उसे पीने को मेरा मन नहीं कर रहा था। बड़ी देर से वह भगोनी में पड़ी-पड़ी ठंडी हो गई है। —बूढ़े ने अपने निकट ही एक दम में बड़े प्रेम से कलजन को बिठाते हुए कहा।

कलजन बैठा नहीं बोला—"मैं बर्फ के एक भयानक तूफान से होता हुआ चला आ रहा हूँ।

खोला और कपड़े उतार लो तो। और जब तक तुम्हारी एक-एक चीज अच्छी तरह सूख न जाय मैं तुम्हें हर्गिज जाने न दूँगा। कई बार तुम यह रास्ता काट-काटकर गए हो। आज भगवान् ने मेरी बात सुनी है। —बूढ़े ने कलजन को ओढ़ने के लिए एक कासा गरम कम्बल दिया और जल्दी से फिर चाय गरम करने लगा।

कलजन ने जूते खोल दिए कमर का झोला और कोड़ा भी अलग रख दिए। चूल्हे के भीतर उसने आग तीव्र कर फूँक चिलमची का बस्तर और एक थैले में कुछ और चीजें थी वे सब निकाल डालीं। जूता खोलकर सूखने को टांग दिया। कलजन खोलकर वह उस बूढ़े के साथ आग के समीप बैठ गया। उसने पूछा— अकेले ही कैसे हो आज ? वे लोग कहाँ गए ?

लोग ही और कौन ? बेटा और बहू वे दोनों ल्हासा गए हैं। बहू के भाई की शादी है। उसका वह छोटा भाई जी पोताला में दलाई लामा का अंगरक्षक है।

'तुम नहीं गए ?

"इस बूढ़े को कहाँ वे अपने साथ ले जाते ? और मेरा भी मन

में दम घुट जाता है। तुम क्या किसी का इलाज करने गए थे ? लेकिन कैसे वे नासमझ लोग—एक घोड़ी भी नहीं थी क्या उनके यहाँ ? फिर ऐसों की दवा करने ही क्यों गए तुम ?

"कुछ ऐसे ही विचित्र संयोग में फंस गया मैं बूढ़े बाबा ।"

"कुली कितने पीछे रह गया तुम्हारा ?"

"कुली ? नहीं कोई कुली नहीं है मेरे साथ —कंचन मन-ही मन सोच रहा था वह यथार्थता को किस तरह प्रकट करे ।

"इस बर्फ की बौछार में थकते ही पैदल जिसने तुम्हें जाने दिया है वह कदापि अच्छा आदमी नहीं है हकीम जी । —चाय मथते-मथते बूढ़े ने कहा ।

बड़ी क्षीण हँसी के साथ कंचन बोला— 'मुझे किसी ने नहीं जाने दिया मैं खुद ही आया हूँ ।

'तुम खिरर्ची से आ रहे हो ?

'हाँ ।"

'किसी के इलाज के लिये नहीं गए। उसी तरफ तो तुम्हारी ससुराल है न ? वहीं से आ रहे हो ?"

'हाँ ।"

'लेकिन ससुरालवालों ने तुम्हें क्यों नहीं रोक लिया एक-दो दिन के लिये ?"

कंचन को अपनी आँखों के आगे बड़ा भयानक काला पहाड़ दिखाई दिया। वह उसके बीच कहाँ से मार्ग निकाले इस दुविधा में पड़ा था कि बूढ़े ने उसके आगे चाय का प्याला रख दिया। उसे सोच सकने के लिये बड़ा सहारा मिला। उसने चाय की एक घूंट पीकर फिर प्याला भूमि पर रख दिया।

कंचन की चुप्पी देखकर बूढ़े ने फिर कहा— 'विश्वास करता हूँ ससुरालवालों से कोई लड़ाई नहीं हुई तुम्हारी ।"

'नहीं तो ।"

"औरत कहाँ है तुम्हारी ?"

कनजन जिस बोझ को सिर से उतारने की दुविधा में पड़ा हुआ था उस भार को भूमि पर पटक देने के लिये उस बूढ़े गृहस्वामी ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

कुछ आश्वासित होकर कनजन उत्तर के लिये सही शब्द सोचने लगा। उसकी देर को बूढ़े ने फिर अपने वाक्यों से भरना शुरू किया— "बड़े अच्छे माँ-बाप की कन्या है वह। एक दिन मैंने देखा था उसे। मेरी बहू का कोई रिश्ता है उसके साथ। मैके या ससुराल कहीं जाते हुए उसने एक रात हमारे यहाँ डेरा डाला था। वह बड़ी अच्छी औरत है और तुम भी सज्जन आदमी। न जाने क्यों भगवान् उसे कोई सन्तान देने में इतना सोच-विचार कर रहे हैं। इस बार नए वर्ष के उत्सव में तुम टमीन्हुन्पो के आशीर्वाद लो। तुम्हारे जरूर पुत्र हो जावेगा। कभी मैंने उनका आशीर्वाद टूटता हुआ नहीं पाया। लेकिन तुम्हारा विश्वास पूरा होना चाहिए। क्यों ?

कनजन ने बड़े धैर्य से सत्य के ऊपर का परदा हटाते हुए कहा— "लेकिन "

बूढ़े ने फिर बीच ही में अपनी बात कह दी— "मैं तो उनको बहुत बड़ा चमत्कार मानता हूँ।" बूढ़ा चाय पीने लगा।

कनजन को अब कहना ही पड़ा— "लेकिन बूढ़े बाबा मेरी स्त्री तो मर गई।"

"कब ?" —बूढ़े गृह-स्वामी ने चाय का प्याला दूर रख दिया और आँखों में नमी और मुख के भावों में अचरज भरकर कुछ देर तक उसे देखता ही रह गया।

कनजन ने जवाब दिया— "यह संसार ऐसा ही क्षणिक है। हम इसे निरंतर सच्चा समझते रहते हैं। और इसको सच समझने से ही हम रोज पाप करते हैं।"

"लेकिन कब गुजर गई वह ?"

'उसकी मिट्टी पंचभूतों को सौंपकर ही आ रहा हूँ मैं।

बूढ़े ने अपने चूँगे की लटकती हुई बाँह से अपनी दोनों आँखों को पोंछते हुए पूछा— 'ससुराल में ही मरी वह? कब से बीमार थी? और तुम हकीम हो सबको अच्छा करते हो अपनी औरत को नहीं बचा सके?

'नहीं बूढ़े दादा वह कब बीमार नहीं हुई। उसने मौत को पुकार कर अपने पास बुला लिया।"

"उसने तुम्हारी दी हुई दवा नहीं खाई और अवपरहेजी कर दी" बूढ़े को सहसा कुछ याद आई उसने पूछा— और तुम्हारा चीनी भाई कहाँ है?"

इन सब बातों की जड़ पर तो वही चीनी भाई है।

"हो सकता है। बूढ़े बाबा ने फिर नजबल को कुछ चाय देते हुए कहा—"कुछ खसिया बना देता हूँ मैं तुम्हारे लिये भेड़ का सूखा माँस रखा है। प्रार्थना की बेला निकट आ रही है। प्रार्थना के बाद तुम खा लेना। मैं रात का खाना छोड़ चुका हूँ दिन का ही खाना मुझे हजम नहीं होता।

"नहीं दादा खाना आज मैं भी कुछ नहीं खाऊँगा उस मृतक को आदर देने के लिए मुझे एक वक्त का खाना छोड़ना ही होगा।"

'लेकिन तुमने उस चीनी की बात को रोक क्यों लिया?"

"मुझे उस चीनी की बात से कोई शिकायत नहीं है। वेश-भूषा बोली-ठोली, रीति-रिवाज चाल-ढाल रूप-रंग की कोई समानता न होने पर भी हम अपनी धार्मिक उन्नति के लिए बुद्ध की शरण में जाते हैं। ल्हासा में एक बीमार के रूप में ही मेरा उसका पहला परिचय हुआ था। बड़ी भद्दी बीमारी थी उसे। मैंने उसकी बीमारी ही अच्छी नहीं की उसको अपना भाईचारा देकर अपनी रुमी में भी हिस्सा दिया।"—कहते हुए नजबल ने एक विराम लिया।

बूढ़े दादा ने पूछा— 'ल्हासा में वह चीनी क्या करता था?"

"चीनी राजदूत के साथ जो सेना थी उसी में वह सिपाही था। बीमारी के कारण उसे सिपाहीगिरी की नौकरी छोड़ देनी पड़ी। स्वभाव का अच्छा था वह। उसकी दशा देखकर मेरे दया उमड़ पड़ी थी। बूढ़े दादा कोई भी आत्मज न था मेरे। अब नौकरी छूट जाने पर वह बेघर हो गया तो मैंने उसे ठौर दी खाने को दाम भी दिया और दवा भी दी।"—कलयन बात समाप्त कर अपना दूध चाटने लगा।

बूढ़े दादा कहने लगे—"तुम जितने अपनी दवा-दारू के लिये सारे तिब्बत में प्रसिद्ध हो उतने ही अपने उदार स्वभाव के लिये भी। हमारे जैसे गरीबों के तो तुम माता-पिता ही नहीं साक्षात परमेश्वर हो।"

कलयन ने गृह-स्वामी के उस अभिवादन की कोई परवाह नहीं की। वह अपनी बात में कहता जा रहा था—"बड़े दादा छः महीने लग उसे अच्छा होने में पूरे छः महीने। उस अवधि में वह बिलकुल एक नया ही मनुष्य हो गया। उसके तमाम घाव ही नहीं घावों के निशान तक भर गए।"

"लेकिन उसने तुम्हारे एहसान भुला दिए!"

कलयन ने बूढ़े के इस आक्षेप का बिना कोई सहारा लेते हुए कहा—"उन छः महीनों में हमने एक-दूसरे के स्वभाव को खूब अच्छी तरह पहचाना। किसी के सिर्फ अवगुण पर ही ध्यान रखना मैं मनुष्य के स्वभाव की भारी कमजोरी मानता हूँ।"

"क्या बदला दिया उसने तुम्हें ?"

"पैसा-कौड़ी कुछ भी नहीं था उसके पास क्या बदला देता ?"

"सीख में भी कुछ नहीं ?"

"नहीं बिलकुल अपने को अनाथ कहता था। लेकिन उसकी विनम्रता से और उसकी शक्ल-सूरत से मुझे उसके प्रति बड़ी प्रीति हो गई। सब से बड़ा गुण उसके भीतर सच्चाई थी। वह कहता था किसी बढ़िया या भूचाल में उसके माता-पिता और उसकी भू-सम्पत्ति सब समाप्त हो गए थे। संतान के प्रति माता-पिता का जो स्नेह-बंधन होता है, उसका एक

करण भी उसे नहीं मिला था। एक परोपकारिणी संस्था में उसने अपनी आयु के वर्ष बढ़ा लिए थे किसी तरह।

"मैंने कभी नहीं देखा उसे।"

"वह मेरी घर-गिरस्ती के भीतर—अपनी सौम्यता से—उसका एक अंग हो गया। वह फिर सेना में नौकरी कर लेने के लिये कहने लगा। मैंने ही उसे नहीं जाने दिया। माता-पिता का प्रेम जिसने पहचाना नहीं था उसे मैंने भाई का प्रेम दे देना निश्चय किया। मैंने उसे अपना सगा भाई समझ लिया। मेरी पत्नी भी उसे मेरे ही समान प्यार करने लगी और अपना पति मानने लगी।

'तुम जो-कुछ उसे दे सकते थे तुमने वह सब-कुछ उसे दे दिया फिर क्यों उसने अपना दिल अलग काट लिया तुमसे ?"

'मैंने एक कपड़े की दुकान खुलवा दी उसके लिये। तीन वर्ष हमारे बीच में बड़े प्रेम से बीते। मैंने कभी एक क्षण के लिये भी उसमें कहीं पर कोई भिन्नता न पाई। आरंभ में कुछ दिन तक उसकी बोली में कुछ विदेशीपन पाया था पर छः ही महीने में उसके भीतर से मेरा सगा भाई बोलने लगा। कितनी आसानी से उसने अपनी जन्मजात बोली हमारी भाषा में भुला दी। बार-बार मुझे यही ख्याल आता एक माता पिता से जन्म लेने से ही हम भाई नहीं होते।"

बूढ़े दादा बोले—"अजीब हालत है इस संसार की। कहीं पर इस में टिकाऊपन नहीं है। पेड़ की तरह से कोई चीज बढ़ती जायगी तो एक दिन आकाश को छूकर क्या देवताओं के भेद को न जान लेगी? इसी लिये एक युग के बाद देवताओं के शाप से पेड़ सूख जाता है। लकड़ी कोयले में और कोयला फिर जिस मिट्टी से पेड़ पनपा था उसी में समा जाता है।"

"मैंने पैसे की कभी कोई बड़ी कीमत नहीं लगाई और न पैसेवालों को ही धरती पर सबसे बड़ा आदमी समझा। लेकिन मेरा वह चीनी भाई, तीन साल तक वह मेरे विचारों के नीचे दबा रहा फिर

हुआ ? वह खूब धन कमाने लगा । उसने धन कमाना ही पौरुष माना बूढ़े बाबा उसने यश की कमाई को कोई चीज ही नहीं समझा ।"

"उसकी तुम्हारी उमर में भी तो फर्क होगा ।

"हाँ दस बरस का फर्क है । और हमारी स्त्री की उमर उसके नज़दीक है इसीलिये उन दोनों की अधिक निभ लग गई और उन दोनों ने मुझसे छिपाकर एका कर लिया । मेरी कभी धन जमा करने पर नीयत नहीं रही ।

"मैं समझ गया । उन दोनों ने तुमसे छिपाकर धन जमा करना शुरू किया होगा । झगड़े की सारी जड़ ही यह है ।

"उसके छोटे पति ने अपनी प्रियतमा की माला के लिये कुछ मूंगे और कुछ मोती जमा कर रखे थे । मुझे दिखाए नहीं थे कभी लेकिन मेरे देखने में आ गए थे । मैं इस बात को मन में रखकर चुप हो गया था ।

"तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें पहनकर नहीं दिखाई वह माला ? उसकी सुन्दरता को देखने का क्या अधिकार नहीं था तुम्हारा ?

"नहीं वे दोनों यही समझते थे कि धनवान की सुन्दरता को समझने की दोनों आँखें फूट चुकी हैं । बूढ़े बाबा किसी हद तक यह बात झूठ भी नहीं थी । एक दिन मेरे पास एक बुढ़िया अपने इकलौते बेटे को लेकर आई । वह राजरोग से पीड़ित था । बुढ़िया के पास कुछ भी बाकी बचा नहीं था । जो-कुछ खेत और ढंगर थे वह सब बेटे की दवा-दारू में खर्च कर चुकी थी । असल बात यह थी ठीक तरह से उसका इलाज नहीं हुआ था ठगों ने उसकी सम्पत्ति लूट ली थी और बेटे की बीमारी दिन-दिन खराब होती गई । कहीं से वह मेरा नाम सुनकर आ पहुँची । मैं क्या करता मुझसे उसके आँसू देखे नहीं गए । मैंने यथाशक्ति उसकी सहायता करने की ठान ली । बीमारी भयानक थी उस पर दवाइयों ने उसे और भी खराब कर दिया था । मोती और मूंगे के भस्म को मिलाकर एक दवा मुझे मालूम थी । वह बिचारी कहाँ से लाती ? मेरे पास भी तैयार न थी । मुझे अपनी स्त्री की वह माला याद आई ।"

बूढ़े बाबा बोल उठे— "मैं भी कहूँगा हकीम जी कप को देखने की आँखें तुमने जरूर पैदा कीं।

लेकिन उस बुढ़िया के बेटे को मैं जीवित ही देखना चाहता था। बूढ़े बाबा तुम्हें ताज्जुब होगा मुझे जरा भी इस बात का घमण्ड नहीं कि उसका बेटा मेरी दवा से अच्छा हुआ। अच्छा तो वह भगवान की ही दया और आशीर्वाद से हुआ सिर्फ एक निमित्त मैं बना और उस बुढ़िया को मरते समय सुखी देख सका—इसकी मुझे बड़ी खुशी है।

'तुमने उसे किस दवा से अच्छा किया था ?"

'उसी मूँगे और मोती के भस्म के योग से।

'क्या तुम्हारी स्त्री ने अपनी माला बलिदान कर दी थी ?

"नहीं मैंने उसे चुरा लिया।"

"ऐसा क्यों किया ?"

"माँगने से वह कदापि न देती।"

'जब उसे चोरी मालूम हुई तो क्या हुआ ?

"झूठ बोलने की मेरी आदत नहीं। जब वह बोली मेरी माला को गई तो मैंने कह दिया उसे फूँककर दवा में बदल दिया गया। वे दोनों मेरे साथ गाली-गलौज करने को तैयार हो गए। उसी दिन मुझे बीती माई की सारी मुसीबता का मर्म मिला। मैंने उसे बताया एक निराधार बूढ़ा को मरते समय सुखी करना पत्नी के हार पहनने से कहीं बढ़िया चीज है।

बूढ़े बाबा गद्‌गद होकर बोले— लेकिन इस मर्म को अधिक लोग कहाँ समझते हैं ?

'बस उसी दिन से हमारे घर के भीतर दरार पड़ गई बूढ़े बाबा दरार के उस पार वे दोनों थे और दरार के इस पार अकेला मैं। कुछ दिन तक मेरी और उनकी आपस में बातचीत भी बन्द रही। मैं इधर उधर गाँवों में चला जाता कभी घूमने और कभी बीमारों का बहाना बनाकर। मेरी अनुपस्थिति में उन्होंने न जाने मेरे विरुद्ध क्या-क्या

पद्मासन रच जाते। पहली बार मैं दो महीने बाद लौटा। प्रवास में रह जाने के कारण मेरा मन बदल गया। कुछ मैं उन दोनों की नादानी को भूल गया कुछ मैंने क्षमा कर देना उचित समझा। मैंने कोशिश की पहले ही के प्रेम को लेकर उनके साथ मिला। दो चार दिन ठीक बीते लेकिन फिर शीघ्र ही हमारे बीच में वही भेद भाव पनप गया।"

हमारा दिल कांच का बर्तन है उसके टूट जाने पर दुनिया के किसी भी मसाले से वह जुड़ नहीं सकता।

"उसकी पहली शादी मेरे साथ हुई थी उसे मेरा ही पक्ष लेना था। लेकिन वह मुझे धोखा दे गई।

'वह उमर में अपने दूसरे पति के निकट थी तुमने यह बात बता दी है मुझे।

नहीं उमर का उतना पक्ष नहीं इसका एक दूसरा और जबरदस्त कारण था। चीनी भाई अफीम खाता था और उसने रमी को भी उसका आदी बना दिया था।"

बूढ़े बाबा हँसकर कहने लगे—"हकीम जी तुम्हारी यही गलती हो गई, अगर तुम भी अफीम खाना शुरू कर देते तो तुम्हारे विचार जरूर उनके साथ मिल जाते। क्या वे शराब नहीं पीते थे ?"

'वह तो पीती ही थी चीनी भाई को अच्छी नहीं लगती थी। वह सदैव अफ़ीम ही खाता था और उसका साथ देने के लिये उसने भी अफ़ीम ही खानी शुरू कर दी। —कहकर कमलधन कुछ देर के लिये चुप हो गया।

बूढ़े बाबा के मन में कौतूहल बढ़ गया। उसने पूछा— "फिर क्या हुआ ?"

"हम दोनों समझ गए कि अब हमारे मन किसी तरह एक नहीं हो सकते।"

बूढ़े बाबा ने कुछ सोचा और कुछ तिल आग पर डाल दिए—"एक ताजा चाय और बना देता हूँ।"

नहीं अभी नहीं" कसबन ने अपनी जीवनी के सूत्र फिर पकड़—
"धीरे-धीरे चीनी भाई ने स्त्री के साथ न जाने क्या षड्यन्त्र किया मुझे उसकी दुकान में माल कम होता दिखाई दिया। एक दिन उसने कुछ रेशम खरीदने के लिए चीन को प्रस्थान किया। उसके थोड़े ही दिन बाद भाई की बीमारी की बात बनाकर श्रीमती जी भी अपने मैके को चली गईं।"

साले की बीमारी पर तो तुम्हें भी जाना चाहिए था।

'हाँ जब कई दिन हो गए तो मैं गया वहाँ और उनका सारा प्रपंच फूट गया। चीनी भाई जिस घोड़े को मोल लेकर चीन को गया था वह घोड़ा मैंने अपनी ससुराल के एक खेत में चरते देखा। मैंने इसका किसी से कोई जिक्र नहीं किया। दूसरे दिन मेरे सबसे छोटे साले ने मुझसे कहा— तुमने जीजी को क्यों नाराज कर दिया वह छोटे जीजा के साथ चीन जा रही है। फिर तो सारी बातें मुझ पर खुल गईं। मैं बिगड़ उठा। पहला पति होने के कारण जब तक मैं उसका परित्याग न करता दूसरे पति को कोई अधिकार नहीं था कि वह बिना मेरी राजी के उसे चाहे जहाँ ले जाय।

बूढ़े दादा ने इस बात का अनुमोदन किया।

'मैंने उसी दिन पंचायत बुलाई। सबने मेरे ही पक्ष में फैसला दिया और मैं दूसरे ही दिन उसे लेकर ल्हासा को चला।

"चीनी भाई कहाँ था ?

"ससुराल में ही न जाने कहाँ छिपा बैठा था। —कसबन की आँखें भारी हो चली थीं।

बूढ़े दादा ने उसके लिये अपने साथ ही बिस्तर लगा दिया और चाय बनाने लगा।

कसबन ने कहा— मुझे क्या मालूम! अफीम उसके पास थी ही घर से चलते वक्त उसने एक शीशी में थोड़ा-सा तेल रख लिया था। हमारे मार्ग के दो पड़ाव तक कुछ नहीं हुआ तीसरे पड़ाव के आरम्भ

होने पर मैं नहीं जानता उसने किस समय अफीम तेल मिलाकर पी लिया और जब मुझ पर भेद खुला तब बड़ी देर हो गई थी। एक घन शून्य निर्जन में जब बर्फ का तूफान उठ चुका था उसने मेरी गोद में प्राण त्याग दिए।"

३

पिछले पृष्ठ

कलजम की बातें सुनते-सुनते बड़े दादा को नींद आ गई लेकिन कलजम की आँखों में नींद कहाँ? जीवन के कुछ पिछले पृष्ठ जो उसको याद उभरने लगे थे वे अब फिर और भी स्पष्ट होकर उसकी आँखों के आगे नाचने लगे।

वह स्वप्न नहीं था क्योंकि उसमें जीवन का प्रतिबिंब था। वह सत्य भी नहीं था क्योंकि उसमें परिमाण न थे। स्मृति के परदे पर वह अतीत की प्रतिध्वनि थी। कलजम उस अँधकार में आँखें बंद किये हुए देख रहा था।

बाहर सर्वत्र बर्फ जमी हुई थी जो आग की गर्मी पाकर कहीं-कहीं घरों की छतों पर से टपटपा रही थी। आकाश में बादल का कोई भी टुकड़ा नहीं था। तारक चमक रहे थे ऊपर और धरती पर हिम की चादर के कारण चाँदनी का भ्रम भास रहा था।

कलजम के पिता एक साधारण स्थिति के व्यापारी थे। सिक्किम नेपाल और तिब्बत में एक जगह का माल दूसरी जगह ले जाकर अपनी गुजर करते थे। खच्चरियाँ और बकरियाँ उनके माल ढोने की माध्यम थीं। कुछ दवा-दारू और झाड़-फूँक का काम भी करते थे। नेपाल में ही उन्होंने विवाह किया था। कलजम उसी नेपाली स्त्री से पैदा हुआ था। बचपन ही में उसकी माता मर गई थी। पिता देश-विदेश ही में रहते थे। इस अभाव ने उसके भीतर एक आत्मनिर्भरता जगा उठी।

आत्म-निर्भरता के सहारे उसकी कठिनाइयों से मैत्री भी हो गई। एक उदासीनता उसके मानस में फूट उठी बचपन ही से जब उसके पिता

व्यापार के लिये विदेशों में घूमते होते तो कंचन ल्हासा में अपने एक रिश्तेदार के घर रहता था। दिन में पाठशाला में जाता और सुबह शाम उनके यहाँ काम करता। जब उसके पिता ल्हासा लौट आते तो उसे दिन में पाठशाला को त्याग कर उनके जानवरों को जंगल में चराना पड़ता था।

बड़े होने पर कंचन को पिता के वाणिज्य में कोई आकर्षण नहीं मिला लेकिन उनकी दवा-दारू ने जरूर उसका ध्यान खींच लिया। बचपन में वह सड़कों पर से कागज के टुकड़े बटोर किसी में कोयला किसी में ठीकरा और किसी में बालू पीसकर पुड़ियाँ बाँध लेता और अपने साथी बच्चों को बीमार बनाकर उनका इलाज करता था। बाद को जीवन के लिये उसकी यही वृत्ति बन गई। उसके पिता को जो कुछ नुस्खे-नटके टोने-टोटके मालूम थे उन्होंने वे सब बेटे को सौंप दिए और कहते हैं वह एक बार कहीं हिमालय पार करते हुए किसी अवसाद के नीचे दबकर मर गए, किसी किसी का यह भी ख्याल है तिब्बत के डाकुओं ने उन्हें मारकर लूट लिया।

बहुत दिन तक कंचन पिता के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। वह नहीं लौटा। लेकिन उसके भीतर एक भरोसा जागता रहा कि उसका पिता जीवित ही है। फिर लोगों ने कहा कि अब उसकी आशा छोड़कर उसे जीविका के लिए कोई धंधा पकड़ना चाहिए। दवा-दारू में ही उसकी रुचि थी और धीरे-धीरे उसी में उसको सफलता मिलने लगी।

कंचन युवा हुआ। विवाह के लिये उसके मन में कोई रुचि नहीं जागी ऐसा कोई सम्बन्धी-नातेदार भी उसका नहीं था जो उसका विवाह करा देता। वह अपनी साधु वृत्ति और दवाओं के लिये गाँवों में प्रसिद्ध हो गया। लोग उसे बिना गुरु का लामा कहने लगे।

सिनेमा के परदे पर मानो कंचन अपने जीवन के पिछले वर्षों को बड़ी त्वरित गति से देख रहा था। नट ही दर्शक हो गया था। वर्ष सिमट कर क्षणों में और विस्तार संक्षिप्त होकर बिंदु में समा गया था।

कलजन को वह सुन्दरी बाला याद आई जो बाद को उसकी स्त्री बनी। जब वह पहले-पहल उसके पिता के इलाज के लिए उनके गाँव में गया। कलजन की दवा और सुश्रूषा सफल हो गई।

बीमार पिता अच्छा होने पर बोला—"हकीम जी तुमने मुझे अच्छा कर मेरे बाल-बच्चों की रक्षा कर दी इसका कोई बदला नहीं दे सकता मैं। तुम्हारी इस [illegible] और इस सूने जीवन को देखकर मेरे मन में बड़ी दया जाग उठी है। नहीं मैं तुम्हें अब ल्हासा को अकेले ही नहीं जाने दूँगा।

और इसी के फलस्वरूप कलजन को उस बीमार की कन्या के साथ विवाह करना पड़ा। कन्या सीधी सादी उसके स्वभाव के ही अनुरूप थी। बहुत दिन संसार की सीमा कलजन का उस बहू की छाया में ही समाई जान पड़ी। वह पति की सारी गृहस्थी का भार उठाने लगी। काम की कन्या एक क्षण के लिए भी अपना समय व्यर्थ नहीं बिताती थी। उसने पति की दिनचर्या में से उसका आधा काम अपने सिर-हाथों पर उठा लिया और आधा समय उसके लिये अवकाश का बनाकर रख दिया।

कलजन को न दिन में सोने की आदत थी न कहीं चौपड़ या ताश खेलने की। वह लोगों के बीच में बैठकर न अपनी शेखी बघारता था न दूसरों की निंदा करना उसका काम था। पत्नी की नियुक्ति से जो समय उसके लिये बच गया था उसका वह क्या करे? ससुराल से उसे दहेज में एक प्रार्थना चक्र—मानी मिली थी उसके जीवन क्रम में बदलाव हुआ। जौ मकई, मटर, गेहूँ जो कुछ भी वह बहुत अपनी दवा-दारू के प्रतिदान में पाता वह सब उसे ही चक्की चलाकर आटे या सत्तू के रूप में पीसना पड़ता था।

शादी हो जाने पर उस चक्की की मूँठ पर उसकी स्त्री का हाथ पड़ गए और वह घुमाने लगा मानी—ओ३म् मणि पद्मे हुँ!—ओ३म् मणि पद्मे हुँ! एक मूँठ धरती पर के पाट को घुमाती थी दूसरी में

सृष्टि का चक्र घूमने लगा। जीवन के लिये दोनों ही आवश्यक हैं। स्थूल पर ही सूक्ष्म का आधार है। आटे और सत्तू पर से उठकर कलजन की कल्पना आकाश में मँडराने लगी। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए। ये तीन वर्ष उसके जीवन में बड़े सुख के थे इसीलिये उन्हें बीतने में कोई देर नहीं लगी।

उस रात को उसके दिमाग में उसकी पत्नी और चीनी भाई नहीं घूम रहे थे। उन तीन वर्षों के बीत जाने पर कलजन के जीवन में एक नई दिशा प्रकट हुई। उसकी कल्पना में चीनी भाई का वह प्रथम प्रवेश उस रात को बड़े विशाल आकार में फिर जाग पड़ा। उसने सोचा वह उसी की दया थी जैसा अजीब रूप रखकर उसने मन डस लिया।

उसने चीनी भाई को अपने घर में जगह दी। उसकी दवा और भोजन दोनों का प्रबन्ध उसकी दयालुता ने अपने कंधों पर ले लिये। चीनी भाई धीरे-धीरे, कलजन के मानस में तो घुल-मिल गया ही था उसके घर में भी समा जाने लगा।

सिर्फ दो कमरों का था मकान। एक में उसके सोने और खाने-पीने का प्रबन्ध था दूसरे में उसकी बैठक। एक सन्दूक में कुछ दवाओं की सीसियाँ थीं कुछ किताबें। ऊपर खूँटियों में वैसी जड़ी-बूटियों की थैलियाँ लटकती थीं। एक तख्त पर कुछ चीवर पायी हिरन और बाघ रियों की खालें बिछी रहती थीं। उसमें कलजन कभी दवा घोटता और कभी माला घुमाता था।

चीनी भाई का वही कमरा दिया गया। यह घटना न-जाने कब हुई कलजन को यह उसी रात की भी जान पड़ी। उसी तख्त पे लिटा दिया गया चीनी भाई। कलजन और उसकी स्त्री दोनों उसकी सेवा सुश्रूषा में लगे। हकीम ने अपनी स्त्री से ताकीद कर कहा— "देखो इस बीमार को एक क्षण के लिये भी विदेशी विजातीय और कोई अजनबी समझोगी तो फिर यह अच्छा न हो सकेगा। जो दर्जा मेरा है इस घर में वही इस अतिथि का भी होगा।" स्त्री ने अक्षरशः पति की उस आज्ञा

का पालन किया।

चीनी भाई द्रुत गति से अच्छा हो चला। वह चलने-फिरने लगा। वह हँसने-बोलने लगा। उन दोनों कमरों के बीच में जो द्वार था वह आगे की बातू थाने पर बन्द कर दिया गया। चीनी भाई के मन में कोई भेद भाव न जम जाय उसे साफ कर देने के लिये कलबल ने उससे कहा—"चीनी भाई अगर यह बीच का दरवाजा हम आज से बन्द कर लें तो हम दोनों की ठंड से रक्षा हो जाय।

ऐसा ही किया गया। उस दिन से चीनी भाई के मन में बाहर कुछ असमंजस बस गई। उधर कलबल ने एक दिन अपनी धर्मपत्नी से कहा—"चीनी भाई बहुत अच्छा आदमी है वैसे लेकिन फिर भी तुम्ह उसके साथ मतलब के बाहर की ज्यादा बातें करने की जरूरत ही क्या है?" स्त्री के मन में भी एक कौतूहल उपज गया उसी दिन से। बीच के द्वार के बन्द जाने से वह उस चीनी भाई को देखने के लिए व्यग्र हो उठी और उसके साथ के मुक्त संभाषण के लिए मुख के बन्द हो जाने से और भी वह उसके लिये लालायित होने लगी।

फिर कुछ दिन बाद—तब कलबल ने उसके लिए कपड़े की दुकान नहीं खोली थी—एक दिन जब वह कुछ देर में बाजार से लौट रहा था उसने उन दोनों को द्वार के बाहर एक दीवार की ओट में बहुत निकट से कुछ खुसपुसाहट करते सुना। उस पर नजर पड़ते ही दोनों चिल्ला उठे—"काला बाघ!"

"काला बाघ? कहाँ?"—कलबल ने पूछा।

चीनी भाई ने जवाब दिया—"मेरे कमरे में घुस आया। अगर यह श्रीमती आकर शोर न मचातीं तो वह जरूर मेरी टाँग घसीट ले गया होता।"

कलबल बड़ी जोर से हँसा—उसने उसकी पीठ थपथपाकर कहा—"चीनी भाई, यह बाघ हमारे मन ही के भीतर है। चलो मैं उस बाघ को भगा देने के उपाय करूँगा अभी।"

कलजन की पत्नी कुछ शरमा-सी गई। उसने उससे कहा—"शरमाने की क्या बात है? छिपने और छिपाने की वृत्ति ही तो पाप है। पाप से बढ़कर भयानक शत्रु और कौन हो सकता है। शत्रु हमें घर के बाहर नाश करता है, यह हमें घर और बाहर दोनों जगह।

अब भीतर को चलें। चीनी भाई अपने कमरे को और ये दोनों पति-पत्नी अपने कमरे को। कलजन ने कहा—"चीनी भाई, आज से अब तुम इधर से भी अपने कमरे को आ सकोगे। चलो इधर ही से।" उसने चीनी भाई का हाथ खींच लिया और इधर ही से उसे अपने कमरे को ले गया।

भीतर जाकर उसने चीनी भाई को अपने पास बैठाकर कहा—"चीनी भाई, विश्वासघात से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। लो मैं इस बीच के द्वार को खोल देता हूँ कि अब कभी अगर फिर काम आ गया तो तुम दोनों को एक दूसरे की सहायता के लिए आने में आसानी हो।

इसी समय बाहर से घोड़ा लेकर कोई आया और पुकारने लगा—"हकीम जी, हकीम जी!"

कलजन भीतर से बोला—"अभी आता हूँ।" इसके बाद उसने चीनी भाई से कहा—"मुझे मिरजाँ से बुलाने यह आदमी आया है। अपने-अपने विश्वास की बात है। ल्हासा में और भी इतने योग्य पुरुष हैं, उसने जब मुझे ही बुलाया है तो मुझे तुरन्त ही उस बीमार की औषधि के लिये जाना चाहिए।"

उसकी पत्नी कुछ सहमने लगी। चीनी भाई भी मुँह खोलने लगा। लेकिन कलजन ने दोनों को चुप रह जाने का इशारा किया। तुरन्त ही अपनी औषधियों की थैली उठाकर बाहर चला गया और घोड़े पर सवार होकर उस आदमी के साथ चल दिया।

पत्नी ने बाहर आकर आवाज़ दी—"कब आओगे?"

"दस-बारह दिन तो आने-जाने के ही हुए, रहना जितने दिन भी

पड़े।

चीनी माई बोला—'जल्दी प्याला।

कमजन जाते-जाते बोला—'डर की कोई बात नहीं चीनी माई मैंने वह दरवाजा खोल दिया है, जो तुम दोनों के बीच में शासन के मेघ उठाए हुए था।

वास्तविकता में न-जाने क्या था पर कमजन कई वर्ष पहले की उस सिपाही की यात्रा को घोड़े पर चढ़कर तय करते हुए देखने लगा—कुछ देर तक चीनी भाई और उसकी स्त्री ने हकीम जी को सिपाही की ओर आते हुए देखा। एक मनुष्य उसके घोड़े के पीछे-पीछे उसका सामान लिए हुए चल रहा था और एक जलती हुई लालटेन लेकर आगे-आगे। उन दोनों ने आपस में बातचीत कर निश्चय किया—चलकर आज हकीम जी को किसी बड़ी जगह से ही बुलाया गया है। इस समय तो वह एक ही घोड़े पर आ रहे हैं। आते वक्त कई घोड़ों के साथ आयेंगे और हर एक में कई तरह का सामान लदा होगा।"

कमजन आगे को बढ़ता गया पर उसकी कल्पना पीछे अपने घर पर देख रही थी। चीनी भाई ने कहा—"हे सुन्दरी अब कब तक तुम हकीम जी को देखती रहोगी? वह अब उस चूने और गेरू से पुती हुई दुरंगी दीवार की ओट में चले गए हैं। उनके चाकर के हाथ की लालटेन का प्रकाश भी अब छिप गया और कुछ ही देर में पटी हुई गली पर से उनके घोड़े की टापों की ध्वनि भी मिट जायगी। चलो हिमालय से आनेवाली ठंडी हवा का दंश बिच्छू के डंक से क्या कम है। हम भीतर चलें और बाहर का द्वार बन्द कर दें। हकीम जी की उदारता के गुण गायें क्योंकि वह बीच के दरवाजे को हमारे लिए आज खोल गए हैं।"

तिब्बत की बाला ने कहा—'हे चीन के सिपाही तुमने मेरे पति के प्रेम में कैसे हिस्सा पा लिया? मैं तुम्हारी उस चतुराई को ढूँढती फिर रही हूँ। मैं गाँव की एक भोली भाली लड़की कैसे उस भेद को पा सकूँगी। अगर तुम स्त्री होते तो मैं तुम्हें अपनी सौत बनाकर अपनी

आँखों में रख लेती छिरगों की इस लम्बी यात्रा में मेरे पति रात के अँधेरे में जा रहे हैं देवता उनकी रक्षा करें। मैं दरवाजा बन्द कर देती हूँ क्योंकि उनकी मूर्ति मेरे हृदय में ही है। आओ हम दोनों मिलकर उनकी कठिन यात्रा के मंगल की प्रार्थना करें।

द्वार बन्द कर दोनों घर के भीतर चले गए। छिम्मत की माता अपनी शय्या में चली गई और चीनी आई बैठक में अपने तख्त पर।

कुछ देर तक छिम्मत की माता ने चूल्हे के गरम भूसल को कुरेदकर अपने हाथ सेंके फिर उस पर चाय रख दी और कहने लगी— हे चीन के सिपाही तुम बड़े मतलबी जान पड़ते हो। कम्बल में सिमट कर उतनी दूर कहाँ बैठ गए? उनके इस बीच के द्वार को बात देने का मतलब कब तुम्हारी समझ में आयेगा? आओ हम उनकी यात्रा के लिये यहाँ एक साथ बैठकर भगवान से प्रार्थना करें। जितने अधिक मन प्रार्थना में जुड़ते हैं उतनी ही अधिक उसकी शक्ति बढ़ती है।

चीनी सिपाही वहाँ आया और उन दोनों ने हकीम जी की० यात्रा की सफलता के लिए प्रार्थना की। चीनी प्रार्थना के अनन्तर फिर अपने कमरे की ओर जाने लगा। तिब्बती माता बोल उठी—"उतनी दूर पर का यह तख्त ही क्यों तुम्हें इतना प्रिय हो गया। अब तुम बीमार भी नहीं हो कि तुम्हारा खाना तुम्हारे तख्त पर ही दिया जाय। और तुम्हें बाहर घूमकर भी नहीं आना पड़ता क्योंकि जिस चौकठ पर तुम्हारी आकांक्षा बँध गई थी उसने खुलकर दोनों द्वारों की बाँहों को आजाद कर दिया है।"

चीनी सिपाही मुस्कराकर वहीं पर बैठा रह गया।

माता कहने लगी— 'उनके लिये भी भोजन तैयार था लेकिन वह छिरगों के नामा के अतिथि होने के कारण और भी मूल्यवान और स्वादिष्ट भोजन के अधिकारी हो गए हैं। हम उनके हिस्से को खाना बनाकर किसी भूखे प्राणी को दे देंगे। वह तृप्ति पाकर जो आशीर्वाद देगा उससे उनकी यात्रा के तमाम संकट दूर हो जायेंगे।"

चीनी ने चुगा के भीतर से अपना कुल्हड़ बाहर निकाला और उसे अपने सामने रखा ।

बाला बोली— 'हे चीनी युवक ! जिस तरह चीन की चाय और तिब्बत का मक्खन मथानी में मथकर एक मय और प्राप्त हो जाता है ऐसे ही चाय की राह हम दो प्यालों में उसे पीकर कोई भिन्नता न अपनायेंगे ? क्योंकि इस गृह का स्वामी बड़ा उदार है। वह बीच के द्वार को उन्मुक्त कर खुद विरागी के मठ में आदर का आसन पाने को चला गया है ।"

दोनों एक ही प्याले में से चाय पीने लगे। चीनी कहने लगा— 'मेरी समझ में झूठ इतना खतरनाक नहीं है जितना झूठा ।

भीतर जब व दोनों बारी-बारी से इस प्रकार चाय पी रहे थे उस समय बाहर फिर लौट आया था कलजन ।

घर से कुछ दूर आने पर न-जाने कलजन को क्या याद आई उसने अपने साथ के सेवक से कहा—"भाई एक ऐसी दवाओं की घर ही भूल आया हूँ, उसे ले आना जरूरी है।

घोड़ा लौटा लिया गया और लालटेनवाले सेवक ने भी अपनी दिशा बदल दी। कलजन अपने घर से कुछ दूर ही घोड़ा छोड़कर पैदल वहाँ जा पहुँचा। उसने चुपचाप लकड़ी के तख्तों की दरारों पर से भीतर झाँका। उसने देखा, वे दोनों एक ही कुल्हड़ से चाय पी रहे थे।

बाला कह रही थी— 'उस गृह-स्वामी का मार्ग कंटकहीन और यात्रा विजयिनी हो जिसने इस बीच के द्वार को खोलकर इन दोनों कमरों का भेद मिटा दिया ।

और चीनी सिपाही समर्थन कर रहा था— 'और उस गृह-स्वामिनी की जय हो जिसने दो कुल्हड़ों को एक कर उसमें दोनों घूँटों की संधि कर दी ।"

कलजन ने बाहर से देखा और सुना। उसके दोनों हाथों की मुट्ठियाँ ऐंठने लगीं ।

इसी समय भीतर चीनी बोला—"मैं बीमार था उसने मुझे तंदुरुस्ती दी मेरे सिर के ऊपर कोई छत नहीं थी उसने मुझे अपने घर में आश्रय दिया मेरा दुनिया में कोई न था उसने मुझे बड़े भाई का रिश्ता दिया। उसकी जय हो उसने यह बीच का द्वार खोलकर मुझे अपने दिल में जगह दे दी।

बाहर सुननेवाले कप्तान की मुट्ठियाँ अपने-आप खुल गईं। वह लौट पड़ा और अपने साथियों से कहने लगा—"शायद मैं पहले ही से आया हूँ। ऐसे ही मन में एक भ्रम उत्पन्न हुआ। चलो।"

सब फिर पहले की तरह अपनी यात्रा में बढ़ने लगे।

भीतर बोलनेवाली बाला ने सावधानी से अपने होठों पर का थूक खींचकर कहा—"कोई है बाहर!

'तुम्हें यह कैसा भय व्याप गया? बाहर कोई भी हो इसे गृह स्वामी की अनुमति प्राप्त है। हम अपने घर के भीतर हैं और हमको अलग-अलग कर रखने वाला बीच का द्वार विमुक्त है सुन्दरी अब हमें बाब का कोई भी भय नहीं है।

सुन्दरी हँसने लगी। भोजन समाप्त कर चीनी सिपाही अपने तख्त पर सोने चला गया। एक कोने में बोधिसत्व की प्रतिमा के पास एक घी का दीपक जल ही रहा था।

सुन्दरी ने पुकारा—"चीनी युवक!"

"नहीं सुन्दरी अब का कोई भी आधार नहीं है।

'जाड़े का तो है। तुम्हें क्या नहीं लगता?

"लगता तो है यह बीच का द्वार खोल रखने से जाड़ा बढ़ गया है।"

"उपाय कुछ सोचते क्यों नहीं?"

"बीच का द्वार बंद नहीं किया जायगा। इससे हम गृह-स्वामी की आज्ञा को तोड़ देंगे। उनकी पीठ पीछे यह बात ठीक नहीं जान पड़ती।

"तो फिर हम अपना ओढ़ना-बिछौना एक कर लें।"—सुन्दरी ने कहा।

सिपाही चौंक पड़ा—"सुन्दरी ?

हाँ चीनी युवक ! मनुष्य के बनाये हुए कायदे हर जगह अलग अलग हैं। क्योंकि सभी जगहें एक-सी नहीं हैं लेकिन भगवान् के बनाए हुए कायदे सभी जगह एक-से हैं। यह मकान भगवान् का बनाया हुआ नहीं है। हम इसके दरवाजों को खोलने-बन्द करने में खूब मुख्तार हैं। और मैं तुमसे निश्चय रूप से कहती हूँ अगर हम अपने कंगन एक कर लें तो इस बाहर के द्वार की भी हमें कोई चिंता नहीं है। इसे भी खोल दिया जायगा तो सर्दी नहीं सता सकेगी हम।"

"सर्दी भी कुछ न कर सकेगी और ताला का भी कोई डर नहीं लेकिन बाद का क्या होगा ?"

ज्योंहि वे दोनों उन शब्दों को लिखता रहे थे। आधी-आधी नींद में जगे हुए कलजन के मुँह से उस कल्पना को देखते हुए एक चीख सी निकली।

सोया हुआ बूढ़ा गृह-स्वामी जाग पड़ा उसने कलजन को झकझोर कर कहा—"हकीम जी ! हकीम जी ! क्या हो गया तुम्हें ?"

"कुछ नहीं एक डरावना सपना देखा मैंने।

"तुम्हारे मन में भय घुस गया है पत्नी की मृत्यु का। संसार ऐसा ही नाशवान है तुम्हें इस डर को निकाल देना चाहिए।"

"हाँ बाबा।" बड़ी उदासीनता से कलजन बोला।

"कितना समय हो गया होगा ?"

आधी रात।"

बूढ़े बाबा ने करवट बदलकर कहा—"हाँ तुम्हारा अनुमान ठीक है। दो बजे से फिर मेरी नींद टूट जाती है।"

"मुझे तो बिलकुल नींद ही नहीं आई"।

"फिकर के मारे। चीनी साहू का क्या करोगे ?"

"वह अच्छा आदमी है मैं उसकी खोट को उसकी अच्छाई की ओट में छिपा देने को तैयार तो हूँ लेकिन वह मन्दाने क्यों मेरे

से डर रहा है।"

"वह चीन नहीं गया ?"

"नहीं गया। उसका जोड़ा मैंने ससुराल में देखा।"

"वह दूसरे जोड़े में नहीं आ सकता क्या ?"

"नहीं।"

"उसकी दुकान का क्या होगा ?"

"उसकी दुकान बंद है।"

"वह उसके लिए तो आयेगा तुम्हारे पास।"

"नहीं कह सकता।

"तुम उसे माफ कर दो तो आयेगा।"

मैंने उसके लिए कोई बात मन में बुरा नहीं किया है।"

"यही ठीक है। हकीम जी सो रहो अभी रात बहुत है।"—कहते दादा ने फिर सोने की चेष्टा की और थोड़ी देर में उनकी नाक बजने भी लगी।

लेकिन कलजंग फिर उसी अवस्था में रहा। वह न जागृति ही थी न स्वप्न ही। उसने देखा चीनी भाई फिर बीमार होकर उसके पास आया और बोला—"बड़े भाई मुझे माफ कर दो।"

कलजंग ने उसे छाती से लगाकर कहा—"तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है ?"

"मैंने कुछ नहीं बिगाड़ा। मैं फिर बीमार हो गया। मुझे अच्छा कर दो।"

"अच्छा कर दूंगा लेकिन मुझे और मोती की माला कहाँ से आयेगी ?"

"श्रीमती के गले से निकाल लाऊंगा मैं। वह कहाँ है ?"

"श्रीमती कहाँ है ? मैं नहीं जानता वह तुम्हारे ही साथ तो आयी थी चीन को ?"

"नहीं वह मेरे साथ नहीं आयी। उसने अपने साफ शब्दों में कह

बातों के बीच में घमघूम चीनी में कह जाने को तैयार

'अगर ऐसी बात है तो फिर मूँगे और मोती के लिये एक चीरन लानी पड़ेगी। चीनी भाई इस बार से माफी कर क्योंकि बिना चीरन के माला नहीं और माला के मूँगे-मोती नहीं और बिना उनके फिर फूँककर क्या बनाऊँगा ?

चीनी भाई बोला—"नहीं भाई यह बात असंभव है। मैं तुम्हारे देश में परदेसी हूँ कोई भी नहीं पतियाता मुझे।"

'उमर का देखकर उमर पतियाती है। मैं अब बुढ़ापे की ओर दौड़ रहा हूँ। मेरे पास कोई संपत्ति भी नहीं कि किसी के सामने बता सकूँ। कितने ही चीन के सौदागर यहाँ मौजूद हैं उनके मुहल्ले में जाकर तुम्हारा यहाँ परदेसी हो जाने का डर चला जायगा। क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है चीनी कुमारियों की पलटन की पलटन अपने-अपने पतियों की तलाश में यहाँ निकलती है।"

"झूठी बात ! बिलकुल झूठी बात !"—चीनी भाई चीख उठा।

कलजन की तंद्रा भंग हुई। उसने करवट बदली। सुबह की शीतल पवन बहने लगी थी अब उसे जरा गहरी नींद प्राप्त हुई, सपनों में भी कुछ अधिक स्थूलता प्रकट हुई। वह देश और काल का अतिक्रमण कर ल्हासा जा पहुँचा। अपने घर का दरवाजा उसने खटखटाया। उस की स्त्री ने उठकर द्वार खोला और बोली—"आओ इस वक्त में सो रहो अपनी बैठक में।"

कलजन पलंग भुलाकर तख्त पर जा बैठा और उसकी स्त्री कहने लगी—'खाना खाने के लिये उधर से घूमकर आना। मैं इस बीच के द्वार को बंद कर बैठी हूँ।' उसने बड़ी ओर से दरवाजे भिड़ाकर सांकल लगा दी।

इस आवाज से कलजन की नींद टूट गई। उसने देखा सूर्य की प्रातःकालीन सुनहरी किरणों से बूढ़े बाबा का शरीर प्रकाशित हो उठा था। अंगीठी पर चाय खौल रही थी और वह आँगन में कलजन के बरतों

को धूप में फैला रहे थे।

चाय पीकर कलजन बोला—"बूढ़े दादा अब मुझे जाने की इजाजत दो। मेरा मन अभी ही ल्हासा पहुँच जाने के लिये बेचैन है।

"कपड़े तो सूख जाने दो। बड़ी अच्छी धूप है आज।"

"रास्ते भर रहेगी धूप। करीब-करीब कपड़े सूख ही गए हैं जो कसर बाकी है वह पहने-पहने ही निकल जाएगी। मेरे मन की हालत तुम्हें मालूम ही है।"

"इसीलिये तो कह रहा हूँ दो-चार दिन और यहाँ रहकर अपना दुख भुला जाओ। —बूढ़े दादा ने बड़े आग्रहपूर्वक कहा।

लेकिन कलजन नहीं माना। बूढ़े ने फिर हठ की—"अब तुम्हें किस घर-बार की चिंता है? मेरी समझ में तो अब तुम्हें जगह-जगह घूमते-फिरते रहकर बिना किसी लोभ-लालच के लोगों का कल्याण करना चाहिए।

"दादा ऐसा ही करना पड़ेगा। घर-गिरस्ती का जो कुछ अवशेष बचा है उसका फैसला कर आता हूँ। चीनी भाई के साथ एक बार भेंट करनी जरूरी है।"

"तुम तो कहते हो वह यहाँ नहीं है।"

"लेकिन यहाँ आयेगा वह, उसकी दुकान है यहाँ। उसकी स्त्री के बचे हुए जेवर हैं मेरे पास। इनको लेकर मुझे क्या करना है। मैं उसे लौटा दूँगा।"

कलजन किसी प्रकार नहीं माना। बूढ़े दादा ने गाँव में से घोड़ा ला देने को कहा लेकिन वह पैदल ही चला गया। बहुत दूर तक दादा उसे सान्त्वना देता हुआ पहुँचा आया। शीघ्र ही फिर उसका अतिथि बनने का वचन लेकर बूढ़ा दादा लौट आया।

४

उत्तरी भारत में

उत्तरी भारत में भैरव के पिता की अच्छी जमींदारी थी। उसके पर्याप्त सुख और ऐश्वर्य था। लेकिन उसे सुखी होना नहीं बदा था। वह अपने माता-पिता की एकमात्र संतान था। घर के भीतर बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन हुआ था बाहर भी धनी प्रभु का बेटा होने के कारण सभी लोग अनेक मायनों से उसका आदर करते थे और उसे मान देते थे।

बुद्धि का तीक्ष्ण था भैरव लेकिन ठीक समय पर ठहर नहीं सकी उसकी समझ। मेल-जूल मिथ्या आहार विहार जीवन की तड़क-भड़क घर के भीतर ही से शुरू हो गई थी बाहर संगति ठीक नहीं मिली।

पढ़ने-लिखने में प्रीति न रही। उसे बेकार समझ उसने सिगरेट पान और शराबों में जीवन का मार्ग खोजना शुरू किया। धीरे-धीरे स्कूल छूट गया और व्यसन बढ़ गए। माता-पिता के उपदेश प्रभावहीन हो गए। उन्होंने जब कठोरता बरतनी आरंभ की तो घर से ही गायब रहने लगा। कई-कई दिन हो जाते उसे घर की शक्ल देखे।

भैरव की माता उसके पिता को दोष देती कि उन्होंने ही उसे सिर पर चढ़ाया और उसके पिता उसकी माता का ही कसूर बताते। एक दिन उन दोनों पति-पत्नी ने आपस में समझौता किया।

पति बोले—"देखो भैरव की माँ! अपराध न मेरा है न तुम्हारा मगर हम बेटे के बिगड़ने के कारण को ही ढूँढते रह गए तो अभी जो कुछ समय है उसके सुधार का वह भी हाथ से चला जायगा, फिर लकीर पीटने से कुछ हाथ न आयगा।"

पत्नी की समझ में बात आ गई। वह बोली—"हाँ अब तुम राह पर आए हो। तुम तो छूट उसके बिगड़ने की सारी जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर रख बैठे थे। जब मेरा अपराध नहीं है तो फिर तुम्हारा ही क्यों हो? तुम्हारे एक लड़का धन-सम्पत्ति की कमी नहीं तुम क्यों नहीं उसकी तमाम जिदें पूरी करते? कसूर किसी का नहीं भाग्य का है।

"भाग्य को भी हम बना सकते हैं। मेरे पास काफ़ी पैसा है, मैं भाग्य पर भी जैसा चाहूँ वैसा रंग घोलकर उसे चमका सकता हूँ।

"फिर कोई तरकीब सोचो न जिससे यह लड़का हाथ में आ जाय। इसने तो सारे शहर में हमारी हँसी उड़ा दी। दुश्मनों की बन आई।"

"पिछले दिनों यह कैश-बक्स का ताला तोड़कर न जाने कितने रुपए निकाल ले गया। एक महीने बाद बंबई से लौटकर आया वह भी अब एक-एक दाने को यहाँ मोहताज हो गया। मुझे सब मालूम है कौन लड़का ले गया इसे।

"कौन?"—धीरे-धीरे उसकी पत्नी ने पूछा।

"बताऊँगा समय आने पर।" कुछ सोचते हुए पति बोले—"इतना बड़ा कसूर किया। बताओ एक भी लफ़्ज़ कहा मैंने कुछ उससे?

"कुछ तो कहना चाहिए था।

"अरे क्या कहता! क्यों कहता? सुनती नहीं हो तुम? वह कहता है किसी को अधिकार नहीं है धन को तिजोरी में बंद करके रख दे। वह नदी की धारा और पवन के झोंके की तरह बिना किसी रुकावट के धरती पर बहते रहने की चीज़ है।"

"फिर क्या होगा जब तुम्हारी बात नहीं सुनता तो और किसका कहा मानेगा?"

"कहने-सुनने का ज़माना गया और उसकी उमर भी। अब तो कोई और बात सोचनी चाहिए।"

"पढ़ा-लिखा नहीं उसने बचपन में बुरी संगत में पड़ा, लेकर उसके

उसे ।"

"पढ़ने-लिखने से भी क्या होता है ? समझ देखती नहीं हो तुम उसको ? बहस में कोई जीत नहीं सकता उससे ? दुनिया की हर बड़ी घटना की खबर उसे रहती है । अखबारों का कीड़ा और सिनेमा का शौकीन । उसके फैशन उसकी बातचीत की शैली देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह सिर्फ नौवें दरजे तक ही पढ़ा है । फिर तुम जानती ही हो सोने में सुगंधि नहीं होती ।

"बंबई या कलकत्ते के किसी कॉलिज में भेज दो इसे । जितना वाजिब खर्च हो इसे दे दिया जाय । मेरा मतलब है इसका मन यहाँ नहीं है । वहाँ भेज देने पर पढ़ने-लिखने में नहीं लग सकेगा जी ?" पत्नी ने पूछा ।

"चूल्हे में जाय पढ़ना-लिखना । पैसा बड़े-बड़े पढ़े-लिखों को नौकर रख सकता है । वहाँ अगर यह निशाचरों के फेर में पड़ गया तो फिर बेटे से भी हाथ धो बैठोगी । बुरा भला जैसा भी है आँखों के आगे सब ठीक है ।"

"भगवान् जाने क्या होगा ?"—बड़ी निराशा के स्वर में पत्नी ने कहा ।

"मेरी समझ में एक बात आई है उससे बढ़कर दूसरा अब और कोई इलाज नहीं है ।"

"कहो भी तो ।

"एक सुन्दर लड़की ढूँढ़कर इसकी शादी कर दी जाय ।"

"यह तो मैं कब से कह रही हूँ, पर तुमने सुना ही नहीं ।"

"अब जल्दी करनी चाहिए । मुख्य बात लड़की सुन्दर होनी चाहिए । मुझे किसी के दहेज का लालच नहीं है । भगवान् ने मुझे काफी दे रखा है ।"

"भैरव को भी राजी कर लेना चाहिए ।"

"उसकी राजी कैसी ? मैं उसका पिता हूँ । मैं जहाँ कहूँगा उसको

करना होगा। अधिक-से अधिक उसे बहू की फोटो दिखा दी जायगी।"

पत्नी ने कहा— "सूचना तो देनी ही चाहिए उसे।"

"कुछ नहीं, तुम इससे अपने पक्ष की दुर्बलता दिखा दोगी।

"कहना तो चाहिए ही। फिर तुम ही कह देना किसी चतुराई से।"

"देखा जायगा।

"सफल हो जायें तो।"

"सफल होवें कैसे नहीं? होशियार बहू ढूंढ लेने की बात है। तभी उसकी नाक में ऐसी नकेल पड़ेगी कि इशारों पर राइट-लेफ्ट करे।"

यह उपाय पत्नी के मन में गहरा पड़ गया था। बहू की उपस्थिति से सूने घर में चहल-पहल होगी, यह साध पूरी होने के सिवा बेटा ठीक राह पर आ जायगा। इन बातों को याद कर माता के हृदय में एक नया मानव जा जगा और वह इस खबर को झट पट प्रकट कर देने के लिये आकुल हो उठी।

शाम को जब भैरव चाय पीकर घूमने को जा रहा था, उसकी माता ने उसके कमरे में जाकर बड़ी प्रीति के साथ कहा— "भैरव!"

बड़ी रुखाई से उसने जवाब दिया— "क्या कहती हो?

"बेटा तुम्हारे ही हित की बात।"

"हो क्या फिर, लौटकर आने पर कहना। इस समय मुझे देर हो रही है।"

"मेरा जरूरी काम है।"

"मेरा भी तो मुझे जल्द न जाना है। हमारा जलसा हो रहा है।"

"तुम फिर या समझे या नहीं। ऐसी हठ ठीक नहीं है, अब तुम सयाने हो चुके हो। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये एक सुन्दर बहू की खोज में हैं।"

"किसलिये?"

"विवाह के लिये और किस लिए।"

"इसकी आवश्यकता ही क्या है ?"

"मनुष्य का धर्म है यह और क्या आवश्यकता होगी है इसकी ?"

"मैं ऐसे धर्म को नहीं मानता।

"फिर तुम किस धर्म को मानते हो ?" माता ने तेजी से बाहर को जाते हुए पुत्र की बाँह पकड़कर कहा— "तुम्हें जवाब देना होगा।"

हर एक आचार है ये सब व्यक्तिगत प्रश्न हैं।"

"यह आजादी नहीं कही जायगी।

'खूब ! आजादी तब इसी का नाम है ? तुम अपने पसन्द की किसी छोकरी की चोटी मेरी चुटिया से बाँध दोगी और हम जन्म भर रोने मरने के लिये छोड़ दिए जायेंगे।

ऐसा क्यों होगा ?

जरूर ऐसा ही होगा।

'कभी न होगा सब दृष्टिकोणों से सुन्दर ! रूप रंग शिक्षा विनय धन-सम्मान जाति-कुल सब कुछ देखकर लाऊँगी मैं अपनी बहू !"

'धन-सम्मान की ताकत है यह जो कुछ लोगों ने संसार के उज्ज्वल पक्ष अपने काबू में कर लिए हैं यह सब अधिक दिन तक ठहरनेवाले नहीं हैं। सब का धन समान हो जायगा। रह गई जाति और कुल की बात !—भगवान् ने सबको एक ही सा पैदा किया है। चमड़े में फर्क हो सकता है मगर सबके प्राण ही हैं।"

बेटा ऐसी बातें नहीं करते। विवाह से पहले बहू की फोटो तुम्हें दिखा दी जायगी।"

"मैं किसी की फोटो नहीं देखता।"

"तुम्हारे पिता जी ने ऐसा कहा है।"

"हूँ हूँ ! मुझे शादी नहीं करनी है।"— कहकर भैरव चला गया।

माता ने मन-ही-मन कहा— 'कैसे नहीं करेगा शादी ? संसार का धर्म है। यों ही चल रहा है।"

संध्या धूप पत्तों से जा रही थी। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ भागता

जा रहा था भैरव भी। चौड़ी सड़क छोड़कर वह एक तंग और मैली गली के भीतर घुस गया। यहीं कहीं उसका मकान था?

इधर-उधर देखकर वह एक डेढ़मंजिला खपरैल से छाए मकान के भीतर घुस गया। बाहर के कमरे में एक प्रौढ़ा लालटेन की चिमनी साफ कर रही थी। भैरव को देखकर वह कुछ सहमी। उसने कहा—"आइए भैरव बाबू।"

"अभी तक दिया भी नहीं जला तुम्हारे यहाँ?"—कहता हुआ भैरव बेधड़क भीतर के एक अँधेरे कमरे में घुस गया।

मानो वह उसका अपना मकान हो। साफ-सुथरे भवन में रहनेवाला उस गंदी गली में कैसे घुस गया? क्या यही था वह नाटक जिसके खेलने की बात वह अपनी माता से कह रहा था? सुन्दर सुसज्जित कक्ष में रहनेवाला क्या उस मैले और अँधेरे कमरे के भीतर विराजमान हो गया?

उसके मन में मनुष्यों के बीच में जो समता का स्वप्न था क्या यही उसका प्रयोगात्मक पक्ष था? मूँज की चारपाई की तमाम टूट और मलिनता ऊपर से एक साफ चादर बिछाकर ढक दी गई थी। भैरव उसी पर जाकर बैठ गया।

प्रौढ़ा लालटेन जलाकर ले आई थी। कहने लगी—"लालटेन में तेल ही नहीं था जब खुद बाजार गई तब आई। इसी से देर हो गई।"

"लालो कहाँ है?"

"राम बाबू के यहाँ बर्तन मलने गई थी।"

"और रात होने को आई अभी तक नहीं लौटी।"—भैरव चारपाई पर से उठा और चार-चार कदम इधर-उधर टहलकर एक मैली कुरसी पर बैठ गया। कुरसी की बेंत की बुनाई टूट गई थी और उसके ऊपर चीड़ के एक तख्ते का टुकड़ा रख दिया गया था।

'बाजार का कोई सौदा खरीदने चली गई होगी।"

"फिर भी इतनी देर?"

"भैरव बाबू नाराज होने की कोई बात नहीं है। जब नौकरी की जायगी तो मालिक का कहना मानना पड़ेगा।

दिन भर की नौकरी थोड़े है ? झाड़ू और बर्तन बस इतना ही तो ? बहुत हुआ हल्दी-धनियाँ पीस दिया सिगड़ी सुलगा दी। अरे बड़े-बड़े इस सड़क का कहीं अन्त भी है या कम से खाना भी पकाना पड़ेगा परसों से बच्चा भी घुमाना होगा।

पेट की खातिर सभी कुछ करना पड़ेगा हमें क्या कोई शौक है। आप कुछ कर भी तो नहीं रहे हैं। रोज टाल-टूल ही करते जा रहे हैं।"

तुम्हारा यह ख्याल बिलकुल गलत है बाछो की माँ। भैरव को तुम कागज की बनावट का आदमी न समझो कि जरा सी फूंक में उड़ जाय। मैं अपने बाप से भी नहीं डरता मुझे समझो जरा। भैरव ने पतलून की जब में हाथ डालकर सिगरेट निकाली और सभी जेबों में टटोल कर दियासलाई की डिबिया न पाने पर कहा—"दियासलाई है ?"

लाना भूल गई बाजार से। अंगारा ले आऊँ ? —बाछो की माँ ने पूछा।

"रहने दो। भैरव ने लालटेन की चिमनी ऊपर उठाकर अपनी सिगरेट सुलगा ली।

'मैं जानती हूँ आपको।

"मैं अलग मकान ढूंढ रहा हूँ तुम्हारे लिये। फिर कोई जरूरत नहीं रहेगी तुम्हें किसी के यहाँ नौकरी करने की। सिर्फ एक ही अड़चन आ गई है। —भैरव ने सिगरेट में जोर का दम लगाकर धुआँ आकाश की ओर छोड़ा।

"अड़चन कैसी ?

"कभी सोचता हूँ कोई नौकरी कर लूं। क्योंकि मैं अपने पिता से एक पैसा नहीं लेना चाहता।"

"आप उनके इकलौते बेटे हैं। जब आप ही उसे नहीं लेंगे तो वह किसके काम आएगा ?

वह शायद मुझे देने से इनकार करें। लेकिन मैं न्यायालय की मदद से अपना हक ले सकता हूँ।

"क्यों नहीं ?"

'कभी सोचता हूँ किसी व्यापार में लग जाऊँ। व्यापार के लिये धन चाहिए और धन के लिये ज़रूरत है बाप से लड़ने की।

"इन सब बातों से पहले आपको आशो के साथ शादी कर लेनी चाहिए।"

'शादी ? —कुछ शरमाते हुए भैरव ने कहा।

"हाँ आपने कहा था मजिस्ट्रेट की मेज पर दोनों के दस्तखत कर लेने पर शादी हो सकती है। इसी के लिये तो आपने उसे पढ़ना-लिखना सिखाया। —आशो की माँ ने कहा।

तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। लेकिन शादी कर तुम्हें रक्खूँगा कहाँ ? मनोरंजन के लिये मैं कभी-कभी यहाँ आ जाता हूँ। बराबर रहने के लिये इस अँधेरी गली में बड़ी मुश्किल की बात है। देखो मैं बराबर इस फ़िकर में हूँ मकान तलाश कर रहा हूँ। जब प्रेम किया है तो उसे आखिरी दम तक निबाहा भी जायगा। शादी से ही क्या होता है ? हमारे घर ऐसे हैं जहाँ शादी हो जाने पर भी पति-पत्नियों के बीच में रात-दिन जूती-पैजार होती रहती है।

"चाय बना लाऊँ। सिगड़ी सुलग रही है।

'नहीं नहीं कोई ज़रूरत नहीं है।" भैरव को फिर-फिर आशो की अनुपस्थिति खटक रही थी। उसने फिर बाहर की ओर देखकर कहा— नहीं आई अभी तक ?

"बस आती ही होगी क्या जाने बहुजी के साथ कहीं गई हो कहीं सैर को।"

'पर कह जाना चाहिए था। मैं अपने समय का हर्ज करके आया हूँ।"

मैं जाकर देख आऊँ ?

"नहीं नहीं।

बासो की माँ ने न-जाने फिर क्या समझा। कहने लगी— "शादी तो हो ही जानी चाहिए बाबू। कोई अविश्वास या खुदगरज़ी की बात नहीं है।" वह फिर चुप हो गई।

"फिर क्या बात है?"

"बात तो कोई छिपी नहीं रह सकती। शहर की मैं नहीं कहती हमारे मुहल्ले में तो सभी इस बात को जानते हैं कि आपको बासो के साथ प्रेम हो गया है। मैं प्रेम को कोई बुराई की बात नहीं कहती। आखिर आदमी को एक का होकर तो रहना ही पड़ता है।"

फिर क्या डर है डरती क्यों हो?

डरती हूँ लोगों से। अगर आप शादी कर लें तो मैं फिर मेरी ओर हाथ उठानेवालों की आँखों में कोंच दूँ अपनी अँगुली।"—बासो की माँ उत्तेजना के साथ बोली।

"और एक घटा उठ रही है। मेरे माता-पिता मेरी शादी के लिये लड़की ढूँढ रहे हैं।"

बासो की माँ चिल्ला उठी—"भैरव बाबू! यह क्या कर दिया आपने?" उसने माथा पीट लिया।

"हूँ! हूँ! क्या कर दिया मैंने? अभी कुछ नहीं किया मैंने।"

"मेरी बासो की जिन्दगी का नाश मार दिया। कहाँ जाएँ, क्या करें अब हम?

"बात तो सुन लो पूरी। उनके शादी ठहराने से क्या होगा? अरे शादी करनेवाला तो मैं हूँ।

"आपके कहीं और शादी कर लेने से फिर दूसरी बात हो जाती है। फिर आप यहाँ नहीं आ सकते। मेरी लड़की को कलंक लग जायगा। लेकिन नहीं! नहीं! आपके यहाँ न आने से आपका तो कुछ भी नहीं बिगड़ेगा पर मेरी बासो कहाँ जायगी?"—वह रोने लगी।

भैरव उसे ढाढ़स बँधाता हुआ बोला—"तुम्हें मेरी बात का विश्वास

रखना चाहिए। मैंने वासो को अपना हृदय ही नहीं दिया है सर्वस्व दिया है—अपनी आत्मा दी है।"

'यह सब मुँह देखे की बातें हैं। समय के बीतते आदमी को बदल जाने में कोई देर नहीं लगती। मैंने बहुत-सी बातें सुनी हैं और कई देखी हैं अपनी आँखों से। मेरी इतनी उमर होने को आई। संसार की बहुत-सी खट्टी-मीठी मेरे सिर पर से होकर बीती हैं मेरी आँखों से होकर गुजरी हैं। आदमी कोई खराब नहीं है, सभी अच्छे हैं लेकिन वक्त उनकी नाक पकड़कर उन्हें घुमा देता है और वे कुछ-के-कुछ बन जाते हैं। —वासो की माँ के मुख पर मनुष्य की जाति के ऊपर घोर अविश्वास प्रकट हुआ।

'तब कैसे विश्वास दिलाऊँ मैं तुम्हें? भैरव ने कुछ सोचकर कहा—'यह सोने की रिस्टवाच है मेरी आठ सौ रुपए की इसे तुम्हारे पास अमानत के रूप में रख देता हूँ। लेकिन तुम्हारा ऐसा ख्याल करना ही गलत है।"

"देखूँ कैसी घड़ी है? बिना चाबी दिए चलनेवाली जो थी?

भैरव जब कलाई पर से घड़ी खोल रहा था उसी समय वासो आ पहुँची। भैरव ने घड़ी खोलनी छोड़ दी। वासो की माँ ने पूछा—'कितने बज गए?"

वासो रूमाल के सिरे पर बँधा हुआ चाबी का गुच्छा घुमाती हुई आ रही थी। उसकी माँ ने दूर ही से उसकी आहट पहचान ली। वह उठकर बाहर को चल दी।

वासो उसे बाहर के ही कमरे में मिली। वहीं उनकी रसोई बनती थी। माँ चूल्हे की ओर बढ़ती हुई पूछने लगी—"बड़ी देर लगाई?"

"हाँ माँ राम बाबू का छोटा लड़का अकेले ही बाजार चला गया। भीड़ में रास्ता भूल गया। हम सब उसे ही ढूँढ़ने में रह गए। छोटे बच्चे की बात थी मैं मना कैसे करती?"

"मिला कहाँ?"

"मगन आप आ गया घर। पार्क में चला गया था। उसके मामा मिल गए उसे वह पहुँचा गए, और हम लोग सारे शहर की परिक्रमा कर जब घर गए तो वह खिलखिलाकर हँस रहा था।"—कहती हुई वासो भीतर के कमरे में चली गई।

"इतनी रात तक तुम्हें घर पहुँच आने की फुरसत नहीं?"

हँसकर वासो बोली—"मैं तभी नौकरी छोड़ देने को तैयार थी। तुम्हीं ने मना कर दिया था।"

"वासो द्वार बंद कर दो।

वासो ने दबी हुई आवाज से कहा—"माँ बैठी है वहाँ। जरा देर ठहर जाओ।"

भैरव ने खुद उठकर द्वार बन्द कर दिया और धीरे-धीरे बोला—"वासो मेरे माता-पिता मेरी शादी के लिए जोर दे रहे हैं। बताओ मैं क्या करूँ?"

"मैं क्या बताऊँ जो ठीक समझो करो।"

"तुम्हें नहीं छोड़ सकता। माता-पिता को छोड़ सकता हूँ, तुम्हें नहीं।"

"मैं भी दुनिया को छोड़ दूँगी पर तुम्हें नहीं।"

"इस बात पर क़ायम रहोगी?"

"भगवान् साक्षी है।

मैंने एक बात सोची है। यहाँ रहना मेरे लिये असम्भव हो गया है। रहता हूँ तो वे जबर्दस्ती मेरी शादी कर देंगे।"

"उससे पहले "

बीच ही में भैरव ने कहा—"नहीं उससे पहले मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता। तुम्हें खूब मालूम है तुम्हें देने के लिये मेरे पास अनंत प्रेम है पर पैसा कुछ भी नहीं।"

"मुझे तुम्हारा प्रेम ही चाहिए।"

"पैसा भी उतना ही जरूरी है। पैसे के होने पर ही

सकता है। लेकिन बाप के पैसे पर नजर रखना बेटे की सबसे बड़ी मूर्खता है। मैं अपने भाग्य के बंद द्वार खटखटाऊँगा। तुम साथ दोगी? तभी सब कुछ संभव है।

"इसका पूछना ही क्या है? मैं लहराते सागर और धधकते ज्वाला मुखी में भी तुम्हारे साथ कूद सकती हूँ।

"हाथ दो।"

बासो ने अपना और कोमल हाथ भैरव के हाथ में दिया। उसकी चूड़ियाँ खनक उठीं।

तब मैं तमाम बाधाओं को कुचलकर अपना सितारा चमका लूँगा। सच्चा प्रेम सबसे बड़ी ताकत है। जिन्दगी की सारी कमी उससे पूरी हो जाती है। बासो चलो हम चलें।

कुछ भावुक और कुछ उत्साहित होकर बासो ने पूछा— 'कहाँ को चलें?"

'चलें इतनी बड़ी धरती है। पौरुष के लिये ही उसका इतना बड़ा विस्तार है। संसार के अनेक करोड़पति अपने प्रारम्भिक जीवन में कौड़ियों के लिए मोहताज थे। लेकिन उन्होंने संघर्ष किया सच्ची लगन से सच्चा प्रेम पाकर और अंत में वे सफल हो गए। केवल तुम्हारे प्रेम की पूँजी चाहता हूँ।"

'तुम्हारा क्या मतलब है?

'हम दोनों यहाँ से भाग चलें।

"कहाँ?"

"दूर देश को कहीं।"

"कितनी दूर?"

'बहुत दूर, जहाँ ये लोग कोई न ढूँढ सकें हमें।"

नाम भी तो होगा उसका।

"बंबई।"

"बंबई? वहाँ क्या करोगे?"

"भाग्य को ढूँढ निकालेंगे।"

"माँ का क्या होगा भाई ?

"अपनी हालत सुधर जाने पर माँ को वहीं बुला लेंगे।"

"देश जाति और संबंधी सबको ही छोड़ जाना पड़ेगा ?

"हाँ बासो प्रेम के लिये। प्रेम में कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं भी तो सब कुछ छोड़कर ही जा रहा हूँ। माता-पिता धन-दौलत इत्यादि सब कुछ। बासो ! कहो तुम राजी हो मेरे साथ चलने को ?

हाँ राजी हूँ।

"बस यही पूछने आया था।

"कब चलेंगे ?

"यह सब निश्चय कर लेने पर बताऊँगा तुम्हें बहुत शीघ्र। इस बात का एक शब्द भी तुम्हें किसी पर प्रकट नहीं करना होगा। नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जायगी।"

बासो की आँखों में अश्रु छलकने लगे थे। उसने गद्गद् कंठ होकर पूछा—"क्या माँ से भी नहीं ?"

"नहीं माँ से भी नहीं।"

"वह हमें न पाकर रोना-पीटना शुरू कर देगी।"

"कुछ दिन रोने-पीटने के बाद जब उन्हें हमारी राजी-खुशी की चिट्ठी मिल जायगी तो उन्हें उतनी ही बड़ी खुशी पहुँच जायगी। बस सब बराबर हो जायगा।"

"नहीं" बासो ने भैरव का एक हाथ पकड़ लिया और अपना दूसरा हाथ उसके कन्धे पर रखकर बोली—"नहीं माँ को साथ ले जाना होगा नहीं तो यहाँ सब उसकी हँसी उड़ायेंगे।"

"जल्दी से कोई काम नहीं।

बासो ने मचलकर कहा—"मैं किसके साथ भागी हूँ और तुम किस के साथ ? इस बात को समझने में किसी को भी ज्यादे देर न ल[illegible] मगर तुम्हारे पिता ने पुलिस की सहायता से मेरी म

शुरू किया तो ?"

"किसी की मजाल नहीं है। हम दोनों बालिग हैं और एक-दूसरे की राजी से ही परदेस को जा रहे हैं। बासो तुमसे कुछ छिपाना नहीं है मुझे। मेरे पास कोई बड़ी पूँजी नहीं है। मुश्किल से दो व्यक्तियों के लिये राह-खर्च और एक-दो महीने की गुजर-बसर से अधिक नहीं है मेरे पास।"

"तुम्हारी दी हुई ये दोनों सोने की चूड़ियाँ तो हैं मेरे पास। एक बेचकर माँ का टिकट खरीद लेंगे।" बासो ने बड़ी आशा में भरकर भैरव की ओर देखा। उसकी आँखों में माता के लिये किए गए त्याग की तेजस्विता थी।

"मेरी भोली भाली पगली !" भैरव ने उसका चिबुक पकड़कर कहा—"इन चूड़ियों को पहले ही मैंने अपने हिसाब में शामिल कर खर्च का जोड़ लगाया है।"

"तब क्या होगा ?"—बासो चिल्ला उठी।

"इतनी जोर से न चिल्लाओ, माँ सुन लेगी।"

"फिर उसे बताकर जाने में क्या नुकसान है ?"

"वह कभी तुम्हें न जाने देगी।"

"मैं उसे राजी कर लूँगी।"

"उसको पता न चले बासो, शुरू की गलत चाल से फिर सारा खेल ही चौपट हो जायगा। जिसके माने हैं सारा जीवन बरबाद हो जायगा। मेरा और तुम्हारा दोनों का।"

"फिर कोई ऐसी तरकीब सोचो न, जिससे बाघ भी भूखा न जाय और बकरी की भी जान रहे।"

"अच्छा, मैं अकेले ही जाता हूँ। जब वहाँ कुछ ठौर-ठिकाना हो जायगा तो फिर तुम दोनों को लेने यहाँ आ पहुँचूँगा।"

बासो गहरे सोच-विचार में पड़ गई। उसके मन में चोर था। वह सोचने लगी—अगर भैरव वापस न आया। बम्बई से और कहीं को

चल दिया या वहाँ किसी और के साथ उसने प्रीति बढ़ा ली तो क्या होगा ?

उसे चुप देखकर भैरव ने पूछा— क्यो इसमें क्या सोचने की बात है ? भगवान जानता है। मेरे और तुम्हारे बीच में कोई कपट नहीं है। बोलो शीघ्र उत्तर दो। जल्दी ही मुझे इस बात का फैसला कर लेना है दो तीन दिन के ही भीतर।"

'माँ से पूछकर इसका जवाब देती हूँ। —वासो द्वार की ओर बढ़ी और उसने सांकल पर हाथ रखा उसे खोलने को।

नही" भैरव ने उसकी कमर पकड़कर खींच ली— 'माँ को इस बात का एक शब्द भी बताना नहीं है। किसी को भी नहीं। मेरे माता पिता नहीं हैं क्या ? क्या मेरी माँ मेरे लिये आँसू न बहाएगी ? तुम्हारी माँ के लिये तो मैं जल्दी ही अपनी और तुम्हारी कुशल लिख भेजूँगा लेकिन मेरी माँ को मेरा पता कब मिलेगा—इसका कोई ठीक नहीं है।"

"तो ऐसा क्यों करते हो ?

'विधाता का लेख ऐसा ही है।

"कब चलोगे ?

'जल्दी ही आकर बता जाऊँगा। लेकिन याद रखना इसका जरा भी सूत्र किसी को न मिले। द्वार खोल दो।"

"नहीं।" वासो ने द्वार खोल दिया।

वासो की माँ चाय बनाती हुई बोली—"चाय तो पी जाइए।"

"जल्दी ही आऊँगा कल-परसों को। आज देर हो गई है"—भैरव चला गया।

'यहाँ शादी कैसे हो सकती है ?

"क्यों नहीं हो सकती ? मुझे सब मालूम है। किताब में दस्तखत करने से सब-कुछ हो सकता है। तूने और दस्तखत करने सीखे ही किस लिये हैं ?"

'लेकिन यहाँ उन्हें शहरवालों का डर है। उनके पिता के सब बड़े बड़े लोग जान-पहचान के हैं। वे सब रोड़े अटका देंगे।"

हूँ ! माँ ने एक ठंडी साँस छोड़ी— "मैं तभी तुझ से कहती थी बाशो समझ-बूझकर कदम रखना।

'एक बात हो सकती है।"

"क्या हो सकती है ?"

'बाहर कहीं और जगह जाकर शादी कर सकते हैं।

'बाहर कहाँ ?"

'कहीं हम दोनों चले जायेंगे और शादी कर फिर यहाँ आ जायेंगे।

"तो इस बुढ़िया को यहीं छोड़ जाओगे क्या ?

"जल्दी ही लौट आयेंगे। अगर तुम इस पर राजी हो तो मैं उन्हें भी राजी कर लूं।"—बाशो ने कहा।

"नहीं मैं इस पर तो राजी नहीं हूं।"

'क्यों ? क्या हर्ज है इसमें ?"

"सब हर्ज ही हर्ज है ! तुम दोनों की पागल जवानी कौन जाने क्या कर दो कहाँ चले जाओ। इस बुढ़ापे में मैं असहाय होकर कहाँ तुम्हें टटोलती फिरूँगी ?"

"नहीं माँ तुम्हें सपने में भी ऐसा ख्याल नहीं करना चाहिए। मैं क्या ऐसा पत्थर का कलेजा रखती हूँ कि तुम्हें छोड़कर चल दूं ?"

"फिर तुमने खुसुर-पुसुर खुसुर-पुसुर कर क्या बातें की मुझसे छिपाकर ?" माँ रोने लगी— देखो बेटी बुढ़ापे की थैली न फूट जाय लाठी न टूट जाय। तुम ना-समझ नहीं हो अब। माता-पिता और किस लिये तमाम तकलीफें उठाकर सन्तान का पालन करते हैं ?"

माता के स्वर को सुनकर बाली का हृदय विद्रोह करने लगा अपने प्रेमी के विरुद्ध। वह चाहकर उसके जी में आता कि सारी सच्चाई माता पर खोल दूँ। लेकिन फिर उसने सोचा—"माता को धोखा देने की तो कोई बात ही नहीं है। कुछ देर के लिये उसे अँधेरे में रखकर फिर तो बिजली के उजाले में उसे खींच लिया जायगा।

'बेटी जब माँ बनोगी तभी पता चलेगा माता सन्तान के लिये कितना कष्ट उठाती है।

'बेटी होकर क्या मैंने तुम्हारी तपस्या नहीं देखी है ?"

'क्या याद है तुम्हें ? क्या देखा है तुमने ?"

"अपना याद नहीं है दूसरों को तो देखा है। शाम का समय है माँ दिया जला रखा है तुम्हारा रोना अच्छा नहीं जान पड़ता।"

'बता दो फिर तुमने क्या तय किया है ?

'क्या तय किया है ? अपने सुख के पहले तुम्हारा सुख। माँ यही तय किया है।"

माता को कुछ भरोसा हुआ लेकिन उसका संशय गया नहीं। उसने पूछा—"चाय पियोगी ?"

बाली ने अपने प्रेमी की बात खुलने न दी। अपनी इस दृढ़ता पर वह भीतर-ही भीतर प्रसन्न हो उठी। वह बोली— हाँ पिऊँगी क्यों नहीं ?"

दोनों माँ-बेटी चाय पीने लगीं।

भैरव वहाँ से सीधा अपने नाटक-क्लब में जा पहुँचा। सभी मेम्बर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। नाटक-क्लब का प्राण-विधाता भैरव ही था। वह उसका प्रधान नायक-अभिनेता तो था ही क्लब का आर्थिक आधार भी वही था।

क्लब यद्यपि टिकट लगाकर ही अपने खेल करता था और टिकटों में उसे अच्छी आयदनी भी होती थी लेकिन उसके खर्च भी काफी होते थे। बाढ़ भूकम्प महामारी अकाल-पीड़ितों की सहायता को वे

पहले आगे बढ़ जाते थे।

नाटक-क्लब की जो मखमल की यवनिका अभी हाल ही में बनकर आई है जो चार स्थानों पर से बल खाकर परियों के पंख-सी सिमटकर पक्षपाइयों में छिप जाती है उसे भैरव बाबू ने अपने ही खर्च से बनवाया है और जो क्लब का चार सप्ताह का खीरजन है वह भी उन्होंने ही खरीदा है।

उनके क्लब में पहुँचते ही सबने उन्हें घेर लिया। मंत्री कहने लगा— कहाँ रह गए आप ? हम सब आप ही की राह देख रहे हैं।"

"मेरी राह क्यों देखी ?"

"आप सभापति बिना आपकी अनुमति के ही पार्ट कैसे बाँट दिए जाते ?"

"उप-सभापति तो थे ही।"

उपसभापति पीछे को खिसकते हुए बोले— आपके सामने मैं ? मेरी क्या हस्ती ?

भैरव बोला— 'यह जनता का काम है। एक पर इसे नहीं टिकना चाहिए, हमें बहुजनात्मकता की चेतना बढ़ानी है। आज जो अगर मैं मर गया होता तो क्या ?"

मंत्री बोला— 'हे ! हे ! यह आप क्या कह रहे हैं ?'

"मरा न सही लेकिन मुझे कहीं बाहर जाना है।"

सेक्रेटरी ने पूछा— 'कितने दिन में लौटेंगे ?

भैरव के होंठ छलकी हँसी को रुक न रख सके वह बोला— 'बहुत दिन लग जायेंगे।

सेक्रेटरी भैरव का अंतरंग मित्र था। उसने उसके कान में कहा— "क्या हनीमून की यात्रा है ?"

भैरव ने उसका हाथ पकड़कर जोर से दबा दिया—"क्या हर्ज है ?"

"कितने दिन में लौटोगे ? हम तब तक ड्रामा नहीं खेलेंगे तुम्हारे बिना खेल भी नहीं सकते हैं।"

"नहीं ऐसा नहीं होगा किसी एक पर सबका काम नहीं अटकना चाहिए। मेरे लौटने की कोई ठीक नहीं। अगर जहाज डूब गया तो ?" भैरव उठने लगा।

सेक्रेटरी ने उन्हें बैठाते हुए कहा—"अभी तो आए हो।

"भाईया जरूरी काम है, तुम लोग धोखे में न रह जाओ इसीलिए आया हूँ।"

"कब जाने का विचार है ?"—सेक्रेटरी ने पूछा।

"अभी तारीख का निश्चय नहीं है।

"तो हम लोग कल को आपकी प्रतीक्षा करेंगे फिर।"

"शायद ही आ सकूँ।"—भैरव उठकर जाने लगा। क्लब के सभी मेंबर उसे बाहर तक पहुँचाने गए।

घर पहुँचते ही उसे फाटक पर पिता जी मिले। और दिन वे सदा से भैरव पर अपनी दृष्टि किए बैठे थे लेकिन आज उन्होंने बड़ी प्रीति से उसे देखकर कहा—"भैरव!"

"हाँ पिता जी।"—भैरव ने मोटर को खड़े हुए पिता का अनुसरण किया।

"छोटी आयु में एक चपलता और एक लापरवाही होती ही है उसे माफ कर देना अभिभावकों को चाहिए ही। लेकिन वय प्राप्त हो जाने के जीवन पर गम्भीर दृष्टि जरूरी हो जाती है। मनुष्य को अपने माता-पिता तथा देश और समाज के प्रति कर्तव्य देखने पड़ते हैं। तुम स्कूल की परीक्षा पास न कर सके यह कोई बात नहीं है। स्कूल या कालेज का सर्टिफिकेट मनुष्य की योग्यता का सबूत नहीं है। वह नौकरी के लिए सहायक हो सकता है। तुम्हें किसी की नौकरी करनी नहीं है। तुम चाहो तो कई नौकर रख सकते हो।"—पिता ने कहा और चुप हो गए।

दोनों-पिता पुत्र बैठक में आ गए थे। पिता को मौन देखकर भैरव बोला—"हाँ पिता जी।"

"तुम अब वयस्कता में आ गए हो। मनुष्य के जीवन

है ? मेरी यह कमर का दर्द कोई डॉक्टर अभी तक इसके कारण को नहीं समझ सका है। इलाज जो भी किए गए सभी बेकार साबित हुए हैं। यह श्वास का प्रकोप न जाने किस समय जिगर को पकड़ जाए कोई ठीक नहीं है —पिता ने बड़ी करुणा के स्वर में कहा।

उतनी ही वर्धमान भारती से बेटे ने टुक मिलाई— और पिताजी, ज्ञान के यहाँ कोई अंतर नहीं माना जाता। यह बात जितनी एक प्रौढ़ के लिए सच है, उतनी ही एक नवयुवक के लिए भी—और क्या यह जानने में से कमियों को उठाकर नहीं मसल देता ?"

पिता ने कहा— 'हाँ बेटा जब तुम्हारे इतनी वास्तविकता जाग उठी है तो अवश्य यह तुम्हारी समझ का अंकुरित हो जाना है। पिता पुत्र को लेकर भीतर चले गए पत्नी के पास। पत्नी के तर्क से अपने वाक्यों का बल बढ़ाने के लिए।

पत्नी भूमि पर बैठी हुई थी अकरबर में। मीठे तेल के दीपक के क्षीण प्रकाश में रामायण के पाठ का नियम पूरा कर रही थी। पिता पुत्र को इस प्रकार भावों के साम्य में आता हुआ कभी नहीं देखा था उसने कई वर्षों से। उसने मन में समझा आज भगवान् उस पर दयालु हुए हैं। उसने जल्दी से उन दोनों के बैठने के लिए एक गलीचा बिछा दिया और स्वयं भी उनकी ओर मुख कर बैठ गई।

पिता बोले— 'तुम्हारे विवाह के योग्य अवस्था हो गई है। पहले यह नियम था माता-पिता अपनी छाँट और पसंद को संतान के कल्याण के लिए सर्वोपरि समझते थे। लेकिन अब समय बदल गया है। विवाह की अवस्थाएँ बढ़ गई हैं। इसलिए अभिभावकों को संतान की सम्मति लेने की आवश्यकता पड़ गई।"

'बहुत पिता जी पहले के युग अंधकार और एकाधिपत्य के थे। घर के भीतर गृहस्वामी मनमानी करता था और घर के बाहर राजा और उसका परिषद्-वर्ग। लेकिन अब बहुमत और समानता का युग आ गया। मनुष्य को अपने अधिकारों का बोध हो गया। इस बदले हुए

युग में अब वे पुराने सिक्के नहीं चल सकते।"

लेकिन मेरी समझ में एकदम नवीनता भी उचित नहीं ऐसे ही बिलकुल पुरानी लकीरों की फ़कीरी भी ठीक नहीं। —पिता ने कहा।

माता ने पिता के स्वरों में दुहरा रंग चढ़ाया—"हाँ बेटा धर्म का आश्रय ही सबसे बड़ा सहारा है। बाप-दादाओं से चली आती हुई रीत को तोड़ना बड़ी भारी नादानी है। बाद को पछताने से अच्छा है पहले ही ठीक रास्ता पकड़ा जाय।

"तुम्हारा मतलब क्या है?

पिता बोले— 'मतलब है, तुम्हारी माता तुम्हारे लिए उपयुक्त बहू ढूंढ लेंगी। तुम चाहो उसकी फोटो देख लो चाहे उसको खुद ही देख आओ।"

'पिता जी पहले समय में भी बराबर स्वयंवर होते थे। उनमें माता पिता के स्वार्थ और उनकी इच्छा का कोई मूल्य न होता था।

"अच्छी बात है, तुम अपने मन से ही बहू ढूंढ लो।"

"आपको प्रसन्नता होनी चाहिए, मैंने ढूंढ ली है।

माता-पिता दोनों हकबकाकर बोल उठे एक साथ— 'तुमने ढूंढ ली है।"

'हाँ पिता जी।

"कौन है वह?"

'पिता जी यह गरीबों का युग है। मैं भावना का मोल जानता हूँ। बढ़िया कपड़े ऊँचे महल और कीमती जेवरात—ये सब झूठे दिखावे हैं। इनके संसर्ग में हमें मनुष्यता के दर्शन नहीं होते।

"इस भूमिका की क्या ज़रूरत है, हम तुमसे उसका परिचय पूछते हैं।"

"है वह भी एक मजदूर की लड़की।

"मजदूर की लड़की! पिता उठकर खड़े हो गए— 'उससे हमारी बात नहीं मिलती।"

"लेकिन मेरा दिल तो मिलता है। विवाह हृदय का सौदा है या धन-संपत्ति की प्रतियोगिता ? मैंने धन-संपत्ति के चारों ओर बड़े भयानक गिद्धों को मँडराते देखा है जिनके भीतर केवल अपने स्वार्थ की जलती हुई आकांक्षा हर समय दूसरे को लूट लेने का कौशल ही सांस में चलता रहता है। गरीबों के लिये जिनकी दृष्टि में घृणा हृदय में पाषाण और जबान में अभिशाप जीवित है। उन संपत्तिवालों को याद कर मेरे भयानक ज्वर चढ़ जाता है।"

'तुम स्वयं एक धनी पिता के पुत्र हो तुम्हें ऐसे शब्द जरा सोच समझकर ही मुँह से निकालने चाहियें।

पिता जी इसीलिए तो मेरी बात में सच्चाई है और इसीलिए मेरा मन गरीब की तरफ झुक गया। मैंने निर्धन में कोई बनावट कोई पाखंड नहीं पाया। उसकी वाणी का संबंध हृदय से रहता है। साफ सीधा और सच्चा। धनी कुछ होता है उसके अन्दर उसके मस्तिष्क की कुटिलता में रँगे होते हैं।"

"तुम्हारे इतने बड़े व्याख्यान का मतलब क्या हुआ ?"—पिता ने पूछा।

'मेरा हर वाक्य आपके प्रश्न का उत्तर है।

"तुम्हारी जिद के लिए सारे शहर में हमें लज्जित होना पड़ेगा। समाज में तो तुमने हमारी नाक ही कटा दी। कहाँ तुम ? कहाँ एक मजदूर की लड़की ? धन-संपत्ति की बात जाने दो, जात तो देखनी ही पड़ेगी।

'जात और कुल—यह भी तो धन-संपत्ति का ही दूसरा नाम है। मैं धरती पर मनुष्य की एक ही जात मानता हूँ। वह मानवी भावों की प्रधानता है। उन मानवी भावों से गरीब ही ओत प्रोत है।"

"बेटा यह क्या कह रहे हो तुम ? माता ने जल्दी-जल्दी रामायण का नियमित पाठ पूरा कर पुस्तक रख दी और बेटे के निकट आकर कहने लगी—'यह नीच जाति की लड़की हमारे रीति-रिवाज हमारा

बमन हमारी कोठी—सभी चीजों से अनजान वह कैसे हमारे घर के भीतर बहू बनकर आ जायगी ?

"अब मुझे याद पड़ता है कुछ लोगों ने मेरे कानों में इस बात का इशारा किया था। मैंने नहीं समझा था वह इतना भयानक आकार रख लेगी। गैरव मुझे स्वप्न में भी तुमसे यह आशा नहीं थी। तुमने अपने पिता को बड़ा धोखा दिया।"

'पिता जी इसमें धोखे की कौनसी बात है ? धोखा तो तब होता जब मैं आपको किसी की कन्या के लिए वचन-बद्ध करा अपनी मनमानी कर लेता।"—गैरव ने कहा।

'नहीं गैरव ऐसा नहीं होगा। तुम्हें उस मजदूर की लड़की का ध्यान छोड़ना पड़ेगा। —पिता ने बड़ी दृढ़ता से कहा।

'नहीं पिता जी यह कदापि नहीं हो सकता। मैंने उसे वचन दिया है और मैं उस वचन को पूरा करूँगा।

'यह कोई वचन नहीं कहा जाता। तुम उसकी तरफ जाओ ही नहीं। मैं देख लूँगा कैसे वह मेरी कोठी में घुस सकती है ?"

कितना बड़ा स्वार्थी मानव आपके भीतर से बोल रहा है। उसका भी एक समाज है। ऐसा कर देने से वह अपने समाज में कितनी तिरस्कृत और लाञ्छित हो जायगी। आप उसकी क्षति का अंदाज ही नहीं लगा सकते।"

"हम पर्याप्त रुपया देकर उसकी क्षति-पूर्ति कर देंगे।

'उसकी भाव-बकरी या खेत-खलिहान की क्षति है क्या यह जो आप अपने धन के बल से उसे पूरा कर देंगे ? पिता जी किसी के शारीरिक भाव की क्षति भी आप नहीं भर सकते। यह किसी के मन की हत्या ? कौन इसका नुकसान भर सकता है ?"—गैरव भी तन गया।

"विवाह को यह गौरव छोटे समाज में नहीं दिया जाता इतना जितना तुम समझ रहे हो ?

'क्यों नहीं दिया जाता ? यह आप अपने दृष्टिकोण से कह रहे हैं।

ग़रीब के कोई मान-इज्जत नहीं है ? कैसी भयानक यह आपकी धारणा है ?

"वाद-विवाद से कुछ फल नहीं निकलेगा। एक बात है तुम मेरी संपत्ति के उत्तराधिकारी उसी हालत में हो सकोगे जब कि तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। अगर तुम्हें छोकरी का मोह छोड़ना स्वीकार नहीं है तो भैरव " कुछ सोचने लगे पिता।

माता एकदम विह्वल होकर पति के निकट खड़ी हो गई कि उनके मुँह से कोई कठोर वचन न निकले कहा कुछ भी नहीं उसने।

"नहीं मैं इस बारे में किसी की बात नहीं सुनना चाहता। रोष से पिता का स्वर बहुत ऊँचा हो गया था—"यह सारी जायदाद मेरे अपने हाथों का उद्यम है। बाप-दादाओं से उत्तराधिकार में मैंने इसकी कोई कौड़ी नहीं पाई।

"दो-चार दिन का समय देना चाहिए।" पति से इतना कहकर माँ बेटे के अभिमुख हुई— "भैरव तुम सोच लो इस बात को। अपने मित्रों की भी सलाह लो और अपने सम्बन्धियों से भी जाकर पूछ आओ।"

"मैं अपना मित्र और सम्बंधी खुद ही हूँ।"

"मैं ऐसे कपूत के साथ तब तक कोई बात नहीं करूँगा जब तक यह अपने मन के भीतर से इस गंदी भावना को निकाल नहीं देता। —कहते हुए पिता बड़ी तेजी से चले गए।

उसी उत्तेजना में भरकर भैरव भी दूसरी ओर को जाने लगा था। माता ने उसके पैरों में अपना सिर रख दिया— "भैरव हमारी लाज रखो बेटा तुम जो कहोगे वही करेंगे हम। सिर्फ अपनी हठ को छोड़ दो। एक कुल और जाति से हीन छोकरी को हम कैसे अपनी बहू बना लें ? क्या लोग कहेंगे क्या भगवान् ?"

"ये कुल और जातियाँ सब मनुष्य की अपनी रचना है। इसमें भगवान् का कोई हाथ नहीं है। मैं उसको किसी हालत में नहीं छोड़ सकता। मुझे आत्मघात स्वीकार है, विश्वासघात नहीं।"—भैरव अपने

कमरे में चला गया।

माता उसके पीछे-पीछे चली। बड़ी देर तक वह उसे समझाती रही पर उस पाषाण के भीतर उसका कोई आँसू न समा सका।

उस रात भैरव ने घर में खाना भी नहीं खाया। उसकी सारी रात भविष्य के नक्शे बनाने में बीती उसके पिता की चिंता करने में और माता की रोने में।

दूसरे दिन सुबह होते ही भैरव उठ गया। रात भर में सोचकर उस ने यही निश्चय किया कि वह अपनी जन्मभूमि का त्याग कर दूर भाग जाय। वह घर से चला सीधे बासो के घर जाकर, रात-भर की चिंता के फलस्वरूप जो कार्यक्रम उसने बनाया था वह सब उसे बता आना निश्चित किया। लेकिन वह कुछ दूर जाकर रुक गया— बासो की माँ के मन में इस असमय भेंट से शायद कुछ शक पैदा हो जायगा।

वह मार्ग में दुविधा में पड़ गया। फिर उसे याद आई—बासो सुबह-शाम राम बाबू के यहाँ काम पर जाती है। वह उनके मकान की ओर लपका और सौभाग्य से उसकी भेंट बासो से हो गई।

"बासो!" उसने उसे आवाज दी। सड़क पर अभी अधिक लोग नहीं चलने लगे थे।

बासो इधर-उधर देखकर भैरव के पास दौड़ी आई। भैरव ने बहुत धीमी आवाज में कहा— 'बासो आज शाम को ही जाना पड़ गया हमें।"

"आज ही?'

"हाँ साहस रखो भगवान् सब ठीक ही करेंगे।"

"एक-दो दिन ठहर नहीं सकते?"

"नहीं सिनेमा देखने के बहाने से मैं तुम्हें बुला ले जाऊँगा और सीधे स्टेशन ही पहुँचेंगे। अधिक बातों के लिए समय नहीं तैयार रहना।"—कहकर भैरव चल दिया।

बासो के विचारों में एक प्रलय फूट पड़ा। नौकरी में गई वह, किसी से कुछ कहने की आज्ञा भी नहीं उसे। वह जानती थी आज उसकी

नौकरी का अंतिम दिन है। कुछ बुझी-बुझी और खोई-खोई-सी वह काम कर रही थी। मालकिन ने एक-दो बार जो उसे फटकारा तो उस फटकार को भी चुपचाप फूल की तरह उसने माथे पर रख लिया। *मालकिन समझी किसी दुविधा में पड़ी हुई है।* सुबह का काम समाप्त कर वह घर को चली। उसने मन में सोचा अंतिम बार ! अब शायद यह झाड़ू यहाँ कोई दूसरा लगाएगा। वह शाम का काम भी दिन ही में कर छुट्टी माँग ले गई।

बासो घर आई बड़े उखड़े हुए पगों से। माता को अब वह कैसे देखेगी ? इतना बड़ा विद्रोह उसके खिलाफ़ मन में छिपाकर माता से क्या बात करेगी वह। रह रहकर डर रही थी वह कहीं बातों ही बातों में मन का भेद न निकल पड़े उसके सामने।

किसी प्रकार दिन काट लिया उसने। एक-एक क्षण की गिनती करते-करते कैसा भारी हो गया वह दिन ? हर आहट पर वह भैरव की कल्पना करती। अंत में भैरव आया। उसने उससे कहा—"बासो चलो। सोने की चूड़ियाँ रख ली ?"

बासो ने बड़ी चिंता में पड़कर कहा—"नहीं चूड़ियाँ तो माँ के संदूक में हैं।

"अब तक माँग क्यों नहीं ली थी ?"

"कैसे माँगती ?"

"अब जाकर जल्दी करो।"

"कपड़े बदल लूँ ?"

"ज़रूर।"

बासो माता के पास जाकर बोली—"माँ मैं सिनेमा देखने जा रही ।

"जाती क्यों नहीं ?"

"सोने की चूड़ियाँ दे दो पहनकर जाऊँ।"

"सिनेमा देखने जाओगी या अपनी चूड़ियाँ दिखाने ?"

"शायद उनके कोई दोस्त लोग भी आ रहे हैं। ऐसे [illegible] गंदे हाथों से उनका अपमान होगा।"

माता की कुछ समझ में नहीं आई। वह बोली—"यह नई साड़ी पहन लो ब्लाउज भी अच्छा थी। जेवर कौन पहनता है अब ?"

"मेरा जी डर रहा है माँ !

"लेकिन चूड़ियाँ तो मैंने अपनी बहन को दे रखी हैं। उसकी बहू अपने भाई की शादी में उन्हें पहनकर गई है।"

"तो फिर मैं कहीं नहीं जाती।"—रुककर बालो बोली।

"नहीं तुम्हें जरूर जाना चाहिए। वे तुम्हें अपने साथ ले जा रहे हैं क्या ?"

"हाँ अपने साथ।"

"जरूर जाओ बेटी। इसमें दस-बीस आदमी तुम्हारे सम्बंध को जानेंगे तो हमारी बात पक्की होगी और वे फिर एकाएक कुछ न कर सकेंगे। अरी जब उनका साथ तुम्हें लोगों को दिखाने को मिला है तो चूड़ी दिखा कर क्या करोगी ? यह ओछापन है। तुम्हारे आभूषण भैरव बाबू हैं। भगवान् उनकी मति कायम रखें और उनकी तंदुरुस्ती ठीक रहे उनकी लंबी उम्र हो। —माता भगवान् को हाथ जोड़ती हुई बोली।

बालो बड़ी कठिनाई में पड़ गई माता के इस उत्तर से। क्या करती ? उसे कोई बात ही नहीं सूझी। कुछ देर के लिये तो उसकी चेतना सूनी और उसके मुंह को मानो लकवा मार गया। कठिनाई से उसने बड़ी कातरता से माता की ओर देखकर कहा—"माँ !"

इतने ही में भैरव ने भीतर के कमरे से धीरे-धीरे आवाज दी—"बालो ! बालो ! उसकी आवाज में आकुलता प्रतिध्वनित थी।

बालो तुरंत ही वहाँ आ पहुँची। भैरव बोला—"जल्दी करो देर हो जायगी तो फिर कहीं गाड़ी न छूट जाय।"

"लेकिन"—बालो आगे कुछ न कह सकी।

"लेकिन क्या ?"

"चूड़ियाँ तो माँ ने मौसी को दे रखी हैं।"

"जाकर माँग लाओ।"

"मौसी की बहू उन्हें पहनकर गाँव गई है अपने भाई की शादी में।"

भैरव ने आकाश की ओर देखा बड़ी निराशा में और फिर तुरंत ही उसने कलाई की अपनी घड़ी पर नजर डाली।

बड़ी चिंता से बाछो बोली—"तो अब क्या होगा?

भैरव ने बड़े प्रेम से बाछो की पीठ पर हाथ रखकर कहा—"कुछ नहीं ये सब बाधाएँ मामूली हैं। लेकिन अपने निश्चय से दृढ़ मनुष्य एक इंच भी नहीं इधर-उधर खिसक सकता। हम इसी गाड़ी से चलेंगे इसमें कोई संशय नहीं। तुम फौरन कपड़े पहन कर तैयार हो जाओ। मैं अभी आता हूँ।"

भैरव चला गया और बाछो भैरव के दिए हुए उन कपड़ों को पहनने लगी जिन्हें पहनकर वह आज तक कभी बाहर नहीं गई थी। उसकी माँ बहुत प्रसन्न हो उठी। बाछो की इस साज सज्जा को देखकर अपने भाग्य को सराहने लगी। अब उसका यह डर जाता रहा कि भैरव किसी दिन उसे धोखा दे जायगा।

वह बेटी के पास जाकर बोली—"बेटी मुँह ढककर न जाना। सारी दुनिया को मालूम होना चाहिए कि इन कीमती कपड़ों में तू बाछो है। मेरा मतलब है शहर में सब पर यह बात खुल जाय। इस मुहल्ले वालों को तो यह बात मालूम ही है रामू बाबू के घर के रास्ते मत जाना। समझ गई?"

बाछो ने अचंभे में आकर पूछा—"क्यों उधर से जाने में कौन-सा खतरा है? मैं आज का उनका तमाम काम करके रख आई हूँ पूरा-का पूरा।"

'यह नहीं कहती। अगर उधर से यह सतरंगी साड़ी पहनकर जाओगी तो कल को उनके यहाँ मैली ओढ़नी ओढ़कर कैसे जाओगी?"

बाछो अपने मन में सोच रही थी—"और जब आज रात को यह

मेरे माने का इन्तजार करते-करते थक जायगी तब कहीं इस पर सारी सच्चाई खुल जायगी।" उसने जाहिर में कहा—"नहीं माँ न जाऊँगी जरूर है।"

भैरव लाचार होकर फिर घर आ पहुँचा। वह वहाँ से मूक अंतिम विदा ले चुका था पर बदनसीब फिर उसे वहीं आना पड़ा। वह अपने कमरे में जाकर अपने बक्सों को खोलकर कुछ ढूँढ़ने लगा।

पिता उसकी तरफ से बिलकुल उदासीन हो चुके थे। वह बेटे से अन्तिम शब्द कह चुके थे और जब तक भैरव उनकी आज्ञा पर अपने को निछावर न कर दे तब तक उससे किसी प्रकार का व्यवहार करने की उनकी जरा भी इच्छा न थी।

बेटे को आया जान माता फिर उसके पास पहुँचा। कहने लगी—"बेटा समझ में नहीं आई तुम्हारे कोई बात?

"बिलकुल आ गई माँ।"

माँ उसकी बोली से उसकी बात का अर्थ समझ गई। उसने भावना को दूसरा मोड़ देते हुए कहा—"क्या ढूँढ़ रहे हो?"

"कुछ नहीं।"

"मैं कहती हूँ दो चार सौ रुपए की जो भी जरूरत हो तुम्हें मैं अभी ला देती हूँ। लेकिन पिता की आज्ञा माननी ही पड़ेगी।"

भैरव ने कोई जवाब नहीं दिया और कमरे के बाहर हो गया। सीधे एक ज्वेलर के यहाँ घड़ी बेच दी और बासो के यहाँ जा पहुँचा बासो तैयार बैठी थी। उसे लेकर चला। जाते समय उसकी माँ से बोला—"सिनेमा देखने जाते हैं।"

उसकी माँ ने पूछा—"कितने बजे तक लौटोगे?"

भैरव ने जवाब दिया—"हाँ मैं जल्द ही पहुँच जाऊँगा।"

माँ संशय में पड़ गई इस जवाब से।



बंबई से बि

खुशी ठेसी से कदम बढ़ाते हुए वे दोनों गली पार करने लगे। सा
का समय था सड़कों पर भीड़ बढ़ गई थी। अधिकांश लोग ना
पहचान सके नीची नजर कर जाती हुई उस बालो को। कपड़ों के बद
जाने से बल्कि उसकी शक्ल में भी कुछ परिवर्तन प्रकट हो गया था
लेकिन कुछ लोग जिन्हें भैरव का वह प्रेम का कथानक ज्ञात था उन्हों
सहज ही बालो को पहचान लिया। वह घूंघट में भी होती तो उसकी आँ
से नहीं छिप सकती थी। गली की नोक में बैठनेवाला वह रामू पनवाड़ि
बाला की उसको नजर थी। वह पत्ते की हरियाली पर पत्थर की सफ़े
में लकड़ी का कत्था मिलाकर एक नया रंग उपजानेवाला—सबसे पह
उसी ने इस भेद का पता लगाया।

तम्बाकू के लिये हथेली फैलाते हुए उसका एक ग्राहक बोला—
“शायद बहू को अपने माता-पिता को दिखाने के लिये अपनी कोठी प
ले जा रहे हैं।”

दूसरा बोला—“जब पसंद आ जाय तब न।”

पनवाड़ी ने फैसला किया—“पसंद न आने की क्या बात है? कस
सिर्फ कपड़ों की थी। देखा नहीं तुमने? जिस ठसके से चली जा र
है। मैं रोज इसे आते-जाते देखता हूँ मैं ही भोला बन गया था।”

बालो ने जाते-जाते पूछा—“हुआ कुछ इंतजाम?”

“हाँ काम चला ही देते हैं भगवान्। आदमी को सिर्फ अपनी अक्ल
में बने रहने की जरूरत है।”

गली से बाहर आकर ज्योंही वे तांगे के स्टैंड की ओर बढ़े ए

तांगेवाला दौड़ा आया। दोनों उसमें बैठ गए। भैरव ने उससे कहा—"पिक्चर हाउस।"

स्टेशन की सड़क पर ही था पिक्चर हाउस। तांगेवाले ने उन दोनों को वहीं उतार दिया। जरा-सी दूर पर रेल का स्टेशन था। दोनों पैदल आ पहुँचे वहाँ। रेल के छूटने में अभी पूरा घंटा भर था। भैरव ने बासो को वेटिंग रूम में बैठाकर कहा—"तुम बैठो यहीं मैं थोड़ी देर में आता हूँ।"

"क्या रह गया?"

"अभी कुछ बासो। पर्दे पर का सिनेमा देखने के लिए जाकर हमें किसी चीज की जरूरत नहीं थी। लेकिन हम तो बड़ा ठोस जिंदगी का सिनेमा देखने जा रहे हैं। उसके लिये सभी चीजों की जरूरत पड़ेगी। इस तरह बिना सामान के जाने में अपन तो रास्ते भर और परदेस में तकलीफ उठायेंगे ही लोग भी तो तरह-तरह की बातें सोचने लगेंगे।"

बासो ने कहा—"जल्दी आना।"

हँसकर भैरव ने जवाब दिया—"हाँ बासो घड़ी खोकर मैं अब अच्छी तरह समय के साथ घुल-मिल गया। पल मेरे हृदय में धड़कने लगे।"

"तुम्हारे हाथ की घड़ी कहाँ गई?"—बड़ी चिंता से वह बोली।

"फिर बताऊँगा।"

"खो गई?"

"नहीं खोई नहीं।"—कहते हुए भैरव चला गया।

तांगा कर वह फिर बाजार आया। एक दुकान पर उसका एक बिस्तर रखा हुआ था उसे लेकर वह फिर दूसरी जगह गया। वहाँ उसके दो बक्से रखे हुए थे उनको भी उसी तांगे में रख वह सीधे स्टेशन पहुँचा। दूसरे दर्जे के टिकट-घर पर वह उतर गया कुलियों ने उसका सामान उठा लिया। वह दो टिकट खरीद कर स्टेशन के भीतर चला।

वेटिंग-रूम में बासो बड़ी व्याकुल होकर उसकी प्रतीक्षा कर

थी। भैरव ने पुरानी आदत की लाचारी से समय देखने को फिर कलाई में नजर डाली। हाथ खाली था।

'अभी घड़ी कहाँ गई ?'

भैरव ने स्टेशन की घड़ी में समय देखकर कहा— अभी दस मिनट बाकी है।

कुलियों ने सामान जगह पर रख दिया। दोनों गाड़ी की प्रतीक्षा वेटिंग-रूम के भीतर ही कर रहे थे। भैरव ने सिगरेट जलाकर उस अवकाश की पूर्ति करनी प्रारंभ की।

बाळो ने पूछा— 'घड़ी दे आए क्या किसी को ?

'नहीं ! राह-खर्च की जरूरत थी। फिर वहाँ पहुँचने पर भी तो जब तक कहीं कुछ काम न मिल जाय। गुजर-बसर के लिये कुछ नकद पैसा चाहिए न !

'तो क्या बेच दी घड़ी ?"

"बेची तो नहीं एक मित्र के पास गिरवी रख आया हूँ। देखो अगर भाग्य चमक उठा बंबई में तो छुड़ा लूँगा घड़ी को। नहीं तो माता पिता का प्रेम छोड़ आ रहा हूँ। जमीन-जायदाद पर लात मार दी ! सखा और मित्रों से विदा ले ली—एक तुच्छ घड़ी में ऐसी कौन-सी बात है !"—भैरव ने बड़ी लापरवाही के साथ कहा।

बाळो ने एक ठंडी साँस ली— 'और यह सब मेरे लिये ?

'नहीं बाळो तुम्हारे लिये नहीं सब अपने लिये। तुम्हारी इस मूर्ति में मेरा ही प्रेम साकार हुआ है। और मैंने अपनी ही घृणा से इस सुख और संपत्ति के आडंबर को इस प्रभुता के पाखंड को तोड़ दिया।"

'अगर बंबई जाकर कुछ न हुआ तो ?

'ऐसी बुरी बातें यात्रा के इस शुभ अवसर पर न बोलो। बंबई में उचित आकांक्षा के अनुकूल सबको मिल जाता है। हम कुछ अधिक की आकांक्षा न करेंगे।

एक लम्बी सीटी हुआ आया। प्लेटफॉर्म पर चहल-पहल चरम सीमा

को कूके लगने थी। कुली बोला— "हुजूर गाड़ी आ रही है।"

दोनों बाहर को चले। भैरव बोला— "वासो मन में उत्साह जमा करो। हम एक नए ही विश्व की देहरी पर पैर रख रहे हैं।"

वासो के कोमल अधर किंचित मुसकान पर खिंचे। यौवन की आल्हादता से भरी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें प्रदीप्त हो उठीं। दूर क्षितिज पर धड़धड़ाती हुई गाड़ी आ रही थी।

दोनों गाड़ी में बैठ गए, माल असबाब भी रख लिया गया। गाड़ी चल पड़ी। अब तक जो बंबई जाने का उत्साह था वह सहसा गाड़ी के चलने पर टूटने लगा। धीरे-धीरे नगर के प्रिय और परिचित सब हाट-बाट सब छूट गए, भवन-मंदिर आँखों से तिरोहित हो गए और गाड़ी शून्य निर्जन और खेतों पर से होकर जाने लगी तो वासो का मुख उदास हो गया।

भैरव ने पूछा— "क्यों वासो ? भूख लग गई ? मैं टिफिन कैरियर में खाना रखकर लाया हूँ।"

"नहीं भूख नहीं लगी है। अभी समय ही कहाँ हुआ है ?

"फिर क्या चिंता व्याप गई तुम्हें ? यह सब मेरी जिम्मेदारी है। हम कहाँ रहेंगे क्या करेंगे क्या खाएँगे ? बंबई के लिये मैं बिलकुल परदेसी नहीं हूँ। मैं वहाँ कई बार आया-गया हूँ। वहाँ की सड़कों और लोगों से कुछ परिचय है मेरा। तुम्हारी उदासी मेरा दिल तोड़ देगी।"

"नहीं भैरव मैं तुम्हारे लिए अपना सब-कुछ निछावर कर दूँगी।"

"लेकिन तुमने अपने मुख की वह प्रसन्नता वह हँसी-खुशी कहाँ छिपाकर रख दी है ? तुम्हें बराबर उससे मुझे जीवित और उत्साहित रखना होगा नहीं तो इस अनजान परदेस में बिना पैसे के हम क्या खाएँगे।

"कुछ घर की याद आ गई थी।"

"तुम्हारा किराए का घर है वासो मैं अपने घर में रहता था, और जिसका अकेला उत्तराधिकारी मैं ही था।"

बासो ने मुसकान के साथ कहा—"अब न होगी भूख।"

उधर घर पर बासो की माँ शाम ही वक्त से बासो के लौट आने की बाट देखने लगी। शाम बजे आठ का घंटा टनका, नौ और दस! अब तो वह घबरा उठी। पास-पड़ोसियों के पास जा पहुँची।

एक ने पूछा—"कितने बजे गए थे?"

बासो की माँ ने जवाब दिया—"शाम पाँच बजे।"

"छः बजे के शो में या तो देर हो गई होगी या टिकट नहीं मिला होगा। आठ बजे वाले में गए होंगे। अभी दस ही तो बजा है, शो खतम हो रहा होगा। फिर सवारी किसी का नहीं, इधर गली में वह आ भी नहीं सकता। आते ही होंगे।"—एक ने जवाब दिया।

दूसरी ने जान-बूझकर भी अनजान होकर पूछा—"किसके साथ गई है?"

"और किसके साथ जायेगी? अपने बाप के साथ।" बासो की माँ अपनी सफाई देती हुई बोली, "मैं क्या करती? मेरा कहना माना ही नहीं!"

और एक तीसरी बोली—"रामू पनवाड़ी कहता था, भैरव बाबू के साथ चल दी आज बासो।"

बासो की माँ ने माथा पीट लिया—"हे! चल दी! कहाँ को चल दी! वे तो सिनेमा देखने गए हैं।"

"अब कौन है क्या सिनेमा? दस कब के बज गए। ग्यारह बजेंगे अब।"

बासो की माँ ने उसके हाथ पकड़ लिए। गिड़गिड़ा उठी—"बीबी, कुछ बता दो वे दोनों कहाँ गए फिर?"

"मैं क्या जानूँ कहाँ गए? एक बात कही थी जो सुनी। तुम तो लड़ने झगड़ने को तैयार हो गई।"

बासो की माँ दौड़ी-दौड़ी बजरिया की तरफ गई। रामू पनवाड़ी अपनी दूकान बढ़ा रहा था। बासो की माँ को उधर आते देखकर उसने

कुछ ही पूछा—"क्यों बासो की माँ क्या बात है? बासो कहाँ गई?

"यही मैं तुमसे पूछने आ रही हूँ।"—उसकी आँखों में आँसू भर गए थे।

"अरे वह तुमसे पूछकर नहीं गई?

"पूछा तो था सिनेमा जाने के लिये।"

"अब तो ग्यारह बजेंगे। सिनेमा देखने कहीं नहीं गए हैं। एक बाबू अमरूदे वाले घर के उन्होंने उन्हें ताँगे में बैठकर स्टेशन को जाते देखा था।

"हाई री! सिर पीटकर बैठ गई बुढ़िया पनवाड़ी की दुकान के सामने—अब क्या करूँ मैं स्टेशन जाऊँ?

"अरे जाओ स्टेशन में क्या बैठे होंगे वे? छः घंटे में वे पहुँच गए हों दो सौ-तीन सौ मील की दूरी पर।

कहाँ धोखा दिया इसने? अपनी सतान होकर ऐसा जुल्म कर गई। मैरव बाबू के घर से पता लगेगा कहाँ जाऊँ?

"क्या बात करती हो बासो की माँ! जब तुम्हारी बेटी तुम्हें कोई खबर नहीं दे गई तो मैरव बाबू क्यों कह गए होंगे? वहाँ कौन तुम्हारी बात सुनेगा और आफत में फँस जाओगी। जाओ घर जाओ देखा जायगा। दुनिया ऐसी ही है।

अरे राम दुनिया ऐसी ही है। बासो की माँ ने कहा—"जो उस दिन ऐसा जानती तो

"चुपो चुपो माँ बकबक मत बको उधर से पुलिसवाला आ रहा है।"—कहते हुए रामू पनवाड़ी ने दुकान बंद कर ली।

माता उदास और निराश होकर घर लौट आई। पास-पड़ोसवाले हार थककर कुछ वाप इस ताक में थे बासो लौटकर आई या नहीं जब उसकी माँ अकेली ही लौटकर आई तो एक बढ़िया ने उसके यहाँ जाकर पूछा—"क्यों नहीं आई बासो?

"नहीं।—रोते हुए बासो की माँ ने जवाब दिया।

"अब बारह बजेंगे कहाँ गई ?

कहाँ बताऊँ ? भैरव बाबू ऐसे आदमी तो नहीं थे।

"मैं तो समझती हूँ वह अपने घर ही ले गए होंगे उसे। कल को मालूम हो जायगा। सो रहो कोई फिकर की बात नहीं है। —इस तरह उसे ढाढ़स बँधाकर बुढ़िया चली गई।

लेकिन माता का हृदय उसका तर्क उससे कहता था— वे दोनों मुझे छोड़कर चले गए। ममता कहती थी—"नहीं कहीं नहीं गए। देर हो गई किसी कारणवश रात में नहीं आयेंगे तो कल सुबह तो जरूर ही आ पहुँचेंगे। इस प्रकार बुढ़िया इन दो पाटों में पिसती रही वह। द्वार बन्द कर लिए उसने उन पर साँकल नहीं चढ़ाई। आँखें बंद कर लीं उसने नींद नहीं आई उन पर।

बम्बई पहुँचकर भैरव ने फिर एक बार अपनी नकद सम्पत्ति को जोड़ा और बासो से कहा— "अब क्या होगा ?"

बासो ने जवाब दिया— "मैं क्या बताऊँ ?"

"बुद्धि से काम लेना होगा बासो। जब तक कहीं पर कोई आधार नहीं बँधती तब तक पैसे को बहुत सोच-समझकर खर्च करना होगी। इस स्वप्न-नगरी में मनुष्य को ऊँची अट्टालिकाओं में सुशोभित होते भी देर नहीं लगती और फुटपाथों पर बिलखते भी विलम्ब नहीं लगता'— भैरव बोला।

स्टेशन के बाहर एक फुटपाथ में कुलियों ने उनका सामान रख दिया था और व दोनों वहीं पर अपना मार्ग टटोल रहे थे।

भैरव ने फिर कुछ सोचकर कहा—"बासो अभी किसी होटल के स्वप्न देखना उचित नहीं है। मेरी समझ में किसी धर्मशाला में चलें।"

यही किया गया। व दोनों एक विक्टोरिया में सामान लादकर चले और हाथ-पैर जोड़कर किसी प्रकार उन्हें एक धर्मशाला में जगह मिल गई। एक छोटे-से कमरे में दोनों ने अपने हाथ से सामान उठाकर रख लिया।

भैरव बोला—"बासो भगवान् की यह असीम कृपा ही समझनी चाहिए कि हमें यहाँ जगह मिल गई। बिना पैसे की सराय दिखाए यहाँ कौन किसे पूछता है ?

दोनों ने नहा-धोकर चाय पी कुछ नाश्ता किया अब क्या हो ? दोनों निश्चय करने बैठे। बासो बोली—"बम्बई समुद्र के किनारे है मैं तो कहीं भी समुद्र नहीं देख रही हूँ।"

हँसकर भैरव ने उत्तर दिया — "वह सब धीरे-धीरे देख लोगी। सब से पहले हमें पैर रखने के लिये एक आधार को ढूंढ लेना जरूरी है। मैं शहर में जाता हूँ एक-दो जगह कुछ जान-पहचान है उनकी मदद से कहीं किसी नौकरी का सिलसिला जमाता हूँ।

"मुझे भी साथ ले चलो। मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी ?

"डर कैसा ? हमारा हर समय साथ कैसे हो सकेगा ?

"हम माँ को साथ क्यों न ले आए ?

"आगे की देखो अब क्या करना चाहिए। पीछे को देखना नादानी है। भीतर से द्वार बन्द कर लो। मैं ज्यादा देर नहीं लगाऊँगा। तुम्हें विश्राम की जरूरत है आँखें कह रही हैं। तुम सो जाओ। मेरे एक बात और समझ में आती है। मैं नीचे दुकान से एक ताला खरीद लाता हूँ। उसे बाहर से लगा दूँगा। जब लौटकर आऊँगा तो बिना तुम्हें कोई कष्ट दिए और तुम्हारी नींद को बाधा पहुँचाए ताला खोल लूँगा।

अन्त में यही निश्चय हुआ। भैरव धर्मशाला की इमारत में ही स्थित बाहर की ओर की एक दुकान में से एक ताला खरीद लाया। उनका कमरा दूसरी मंजिल पर था। ताला लेकर जब उसने अपने कमरे में प्रवेश किया तो एक मनुष्य बासो से पूछ रहा था— "कब होगा यह कमरा खाली ?

भैरव ने कहा— "आज ही तो यह कमरा मिला है हमें अभी कहाँ खाली होगा ?

"कहाँ से आए हो ?

'उत्तर प्रदेश में।"

"नौकरी ढूंढने ?

हाँ।"—कहकर भैरव ने उसकी ओर पीठ फेर ली। वह न-जाने किस तरफ चला गया।

कुछ देर बाद भैरव चला। बासो ने कहा—'जल्दी आना।

कोशिश तो यही रहेगी। लेकिन तुम्हें जानना चाहिए, इतने बड़े विस्तार का यह नगर है। एक आदमी इस सिरे पर रहता है तो दूसरा बिलकुल दूसरे सिरे पर। बीच में बीसों मीलों का अन्तर। काम अपना शीघ्र-से-शीघ्र कर लेना है। तुम्हें साहस रखना चाहिए अगर मेरे आने में कुछ देर भी हो गई तो। देखो शायद कोई शुभसमाचार लेकर शीघ्र ही आ पहुँचें—यह भी कोई असम्भव बात नहीं है। तुम तो जाओ तुम्हारी आँखें नींद से भारी हो उठीं।

भैरव ने द्वार बन्द किया और उसमें ताला लगाकर चला गया। जब वह बस में बहुत दूर निकल गया तो सोचने लगा—"लेकिन बाहर से ताला लगाने की ऐसी क्या सूझी मुझे। यह बासो की नींद को न तोड़ने का बहाना था उसके एक पार्श्व पर उसके प्रति अविश्वास नहीं है ?"

भैरव ने माथा हिलाकर उस विचार को सिगरेट के धुएं के साथ उड़ा दिया वायुमंडल में और बस से उतर गया वह शावर की चौड़ी सड़क पर। कुछ दूर पैदल चलकर उसने एक भवन का फाटक पार किया। ग्राउण्ड फ्लोर पर के एक मकान के बरामदे में चढ़कर घंटी दबाई।

द्वार खुला एक परिचारिका ने आकर पूछा—"कौन है ?"

भैरव ने पूछा—"सरकार बाबू को बुला दो।

"यहाँ कोई सरकार बाबू नहीं है। यहाँ आनन्द राय रहते हैं।

भैरव बाहर चला आया और मन में सोचने लगा—'कई कोठियाँ तो बिलकुल एक ही सी हैं। उनको पहचानना कठिन है।" बहुत घूमा फिर वह। कहीं सरकार बाबू का कुछ पता न चला।

अपने पिता के किसी परिचित के पास जाना उसके लिए घोर अपमान की बात थी। उसे अपने ही बल और पौरुष का अभिमान था। उसने फिर याद किया। उसका एक मित्र सांताक्रुज में रहता था। दादर के रेल स्टेशन पर इस बार उसने रेल का सहारा लिया।

रेल से उतरकर वह ज्यों ही मित्र के घर गया तो ज्ञात पड़ा मित्र ने मकान बदल लिया है और माटुंगा की तरफ कहीं रहते हैं। ठीक-ठीक पता कोई नहीं बता सका।

फिर भैरव ने कमर कसी। उसे भूख लग गई थी। दोपहर बीत चुकी थी। उसने एक जलपान-गृह में प्रवेश कर हल्का भोजन किया। उसे मामी की याद आई—वह सोचने लगा— उसे ताले में बन्द कर कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया मैंने। जाकर खोल आऊँ? आखिर वह भी तो मेरी ही भाँति एक जीव है। उसे भूख-प्यास लगी होगी?

इसी समय कोई दूसरा उसके मन में बोल उठा— 'ऐसे भी क्या कमजोर मिट्टी के मानव हो तुम! भूख लगी होगी तो टिफिन कैरियर में बहुत खाने-पीने को पकवान मेवे और मिठाइयाँ रखी हैं। डंडी में संतरे और केले हैं। चाय की आदतों को अधिक आदत नहीं सुराही पानी से भरी रखी है।"

होटल में खाते-पीते समय उसकी एक मनुष्य से जान-पहचान हो गई। उसका सुख-दुख सुनकर उस मनुष्य ने उससे कहा— 'आप अपनी तकदीर रजत पट पर क्यों नहीं आजमाते? आप का लिबास कद और गठन मुझे तो अच्छा जान पड़ता है। बहुत सम्भव है तुम्हारी आवाज भी मादक खूबसूरती से उठाते। जाकर क्यों नहीं किसी सिनेमा के डायरेक्टर से मिलते। बहुत सम्भव है कोई आपको ढूँढता हो। अगर आपने कहीं उसे ढूँढ लिया तो फिर एक ही रात में आपका सितारा चमक जायगा।"

भैरव के भीतर-ही-भीतर एक बड़ी मधुर पुलक पैदा हो गई। ऐसा तो चाहता ही था। इसी विश्वास पर वह बम्बई आया

वह खूब अच्छी तरह समझता था—बालों के कम्प की एक-एक दिशा उसके गति-विधि का एक-एक कोण उसकी भावनाओं की एक-एक रेखा उसकी बोली की एक-एक स्वर भंगिमा उसकी दृष्टि की एक-एक बंकिमता और उसके भौंहों की एक-एक ग्रंथि—रागी और वैरागी दोनों को प्रभावित कर सकती है।

लेकिन भैरव ने बालों को आगे बढ़ाकर किसी सिनेमा कंपनी के द्वार खटखटाने अपमानजनक समझे। उस नए मित्र की बात ने उसके भीतर एक नया उत्साह लहरा दिया। वह सोचने लगा—"क्यों किसी मित्र की खोज करूँ? झूठी खुशामद! अपने ही आधार पर स्थिर हो जाऊँगा मैं।"

उसने उस नए मित्र से पूछा—तो क्या करना चाहिए मुझे?

महालक्ष्मी चले जाओ। थोड़ी दूर चलकर वह बड़ी इमारत दिखाई देगी तुम्हें।"

"वह मुझे मालूम है।

"बस वहीं जाओ और देखो तकदीर कौन-सा स्वर बजाती है।

चाय पीने के अनंतर भैरव ने उस मित्र को सिगरेट पिलाई और ठीक समय पर एक बढ़िया बात सुझा देने के लिये धन्यवाद दिया।

मित्र बोला—"मैं ट्राम की लाइन में इन्सपेक्टर हूँ। चार बजे से मेरी ड्यूटी है। नहीं तो मैं तुम्हारे साथ आता।"

भैरव फिर महालक्ष्मी के लिये रवाना हो गया। वहाँ पहुँचकर इधर-उधर डायरेक्टरों को टटोलने लगा।

एक ऑफिस पर पहुँचा तो वॉच ने कहा—"जरा देर ठहरो। अभी डॉयरेक्टर साहब बहुत जरूरी काम में हैं।"

दूसरी जगह मालूम हुआ—"डायरेक्टर साहब छः बजे से पहले नहीं मिल सकते।"

तीसरी जगह कहा गया—"एक कागज में अपना नाम-पता उमर और मतलब लिखकर रख जाओ। साथ ही अगर अभिनय करना चाहते हो तो एक फोटो भी। तीन-चार दिन में जवाब मिल जायेगा।

तमाम ग्रॉफिसों में घूमता रहा भैरव उसने निश्चय कर लिया था कि अपने को ढूंढनेवाले को ढूंढ ही लूंगा । ढूंढते-ढूंढते उसे शाम हो गई लेकिन उसका उत्साह कम नहीं हुआ । बहुतों ने उससे वादे किए कई लोगों ने उसे मीठी-मीठी आशाएं दिलाईं ।

उसका आशय था तुरन्त ही काम सिद्ध हो जाय । एक ने कहा—"भाई तुरन्त ही कुछ नहीं होता । मिट्टी में दाना बोओ तो वह भी कई कई दिन से लेता है जमीन की सतह पर आने के लिये ही । उस पर भी ठीक-ठीक पानी और धूप उसे मिले तो । ऐसे बाजीगर यहां कोई नहीं हैं जो चुटकी बजा हथेली पर पेड़ उगवाकर रख दें ।"

शाम ढलकर रात हो गई । निमिमा—विश्वास की उपज का खेत नहीं जो दिन में ही अँधेरा कर रात उपजा ली जाती है । दीपक जल उठते हैं । भैरव जब अनेक ग्रॉफिसों की परिक्रमा कर आशाओं के कई बण्डल बांधे धर्मशाला को जाने के लिये बाहर आया तो चारों ओर बिजली के दीप जगमगा उठे थे ।

उसकी मति में उमंग थी । "अवश्य कहीं-न-कहीं वह धर्मशाला की अवधि पूरी होने से पहले काम ठौर ढूंढ ही लेगा । उसे काम मिल जाने पर फिर वासो को काम नहीं ढूंढना पड़ेगा । काम उसे ढूंढता हुआ चला आएगा । फिर हमें कोई कष्ट न रहेगा ।"—वह सोचता चला ।

शाम हुई अँधेरा हो गया । वासो तब तक भी सोई ही रही । अचानक किसी ने बाहर से द्वार खटखटाया— "उठो द्वार खोलो ।

आवाज जानी-पहचानी न थी । पहले वासो द्वार खोलते हिचकिचाई । दूसरी बार फिर किसी ने झिड़ककर कहा—"अभी तक सो रही हो क्या ? द्वार खोलो ।"

वासो ने द्वार खोले । वह जाने कौन था । साधारण वेश था बड़े परिचित की भांति वह वासो के कमरे में घुस गया और बिजली की बत्ती जलाकर फौरन ही बिस्तर बांधने लगा ।

वासो ने पूछा— "भैरव बाबू कहां हैं ?

"भैरव बाबू ही ने भेजा है मुझे बाहर मोटर खड़ी है। चलो फौरन ही बुलाया है उन्होंने। उनके दोस्त मिल गए हैं। चलो देर न करो।"—आगन्तुक ने कहा। दो कुलियों को भी बुला लाया था वह।

थोड़ी ही देर में सब सामान बाँधकर बाहर मोटर में रख दिया गया। आगन्तुक बासो को लेकर मोटर की ओर चला।

बासो का ख्याल था शायद भैरव मोटर में बैठे होंगे वहाँ उन्हें न पाकर वह कुछ हिचकिचाने लगी।

आगंतुक बोला—"आज पहली ही मर्तबा बम्बई आई हो? किसी गाँव से क्या? मोटर भी पहले कभी नहीं देखी?

बासो बड़ी लज्जित हो गई। पूछा उसने—"वह कहाँ हैं?

"कौन भैरव बाबू?

"मोटर में बैठो तो सही। उन्हीं के पास ले जा रहा हूँ मैं तुम्हें।

बासो मोटर में बैठ गई। लेकिन उसका हृदय धड़क रहा था। मोटर तेजी से न जाने कहाँ जा रही थी नर-नारियों की अपार भीड़ से होकर। एक क्षण बासो का हृदय प्रसन्न हो जाता और दूसरे ही क्षण वह उदास होकर सोचने लगती—"कहाँ जा रही है यह मोटर? भैरव के निकट या भैरव से दूर! कहाँ जा रही हूँ मैं? बिना उनकी आज्ञा या पत्र के? यह मेरी बुद्धिमानी है या मूर्खता?"

कई सड़कों पर मोड़ खाती हुई मोटर न-जाने कहाँ-कहाँ होती चली बासो को क्या पता? अंत में वह एक कई मंजिल की गगनचुंबी अट्टालिका के पास जाकर रुक गई। मोटर का द्वार उस मनुष्य ने खोला और बासो से कहा—"यहीं उतरना है।"

बासो ने उतरकर उस अट्टालिका को देखा और वह विस्मय-स्तब्ध हो गई। वह मनुष्य बोला—"सामान अभी आ जायगा। आप आइए मेरे साथ।"

बासो उसके पीछे-पीछे चली। थोड़ी दूर भीतर जाकर उस मनुष्य ने लिफ्ट का प्रवेश दिखलाया और बासो से कहा—"चलिए इसके

भीतर।"

वासो फिर हिचकिचाई। उसकी समझ में नहीं आया वह क्या करती। मनुष्य हँसा—"तभी तो कहा मैंने आप किसी गाँव से आई हैं।"

वासो ने उसकी आज्ञा मानी। उसने स्वयं भी लिफ्ट में दाखिल होकर उसका द्वार बंद किया और लिफ्ट का बटन दबाया। लिफ्ट ऊपर को खिसक चला। चौथी मंजिल पर जाकर रुक गया। दोनों उसमें से बाहर निकले। लिफ्ट का द्वार बंद कर दिया गया।

उस मनुष्य का अनुसरण करती हुई वासो एक के बाद एक दूसरे कमरे में जा पहुँची। खूब सजा हुआ था कमरा। चारों ओर परदे लगे हुए थे। बिजली की बत्तियाँ प्रकाशित थीं। मेज पर सुगंधित धूप जल रही थी। एक तश्तरी में कुछ फल और मेवे रखे हुए थे।

"बैठिए।"

वासो ने पूछा—"भैरव बाबू कहाँ हैं?

"बैठिए तो सही आप वह भी आ जायेंगे। उनको ढूँढकर लाता हूँ।"—कहकर वह मनुष्य चल दिया बाहर को।

वासो काँपते हुए हृदय को लेकर बैठ गई। एक-एक क्षण कई-कई युगों-सा बढ़ गया। वह कभी बैठती सोफे पर कभी फिर कुछ अन्यथा विचार आने पर उठ जाती। एक मिनट बीता दो मिनट—दस मिनट! भैरव बाबू का पता नहीं!

भैरव बाबू रजत पट की अनेक सुवर्ण आशाओं को हृदय में लिए धर्मशाला को चले। सोच रहे थे—"वासो बहुत खुश हो जायगी। चार डायरेक्टरों ने तो उसे पूरी-पूरी आशा दिलाई है अपने-अपने चित्रों में काम देने की। एक ने कहा है अगर मैं कहीं से कुछ आर्थिक सहायता जुटा सकूँ तो वह मुझे अपने आगामी चित्र में हीरो का काम भी दे देंगे। और अगर उन्हें वासो की योग्यता का पता लग जाय तो ? खुद वासो भी नहीं जानती उसके भीतर सिनेमा जगत की एक प्रख्यात नटी छिपी

हुई है। उसी दिन मैं बताऊँगा पिता जी को जिस दिन बाबो के चित्र भारत के घर घर टँग जायेंगे। वही दिन इस बात का सबूत होगा कि विद्या और कला पर कुलीनता का ही अधिकार नहीं है।"

भैरव बाबू इन्हीं विचारों में लहराते हुए ट्राम में चले जा रहे थे। ऐसी कोई जल्दी नहीं थी उन्हें और जो भी पैसा बच जाय जब तक उसके कमाने की सूरत नहीं बनती—वह लाभ-ही-लाभ था।

वह ट्राम के स्टेशन पर उतर पड़े और धर्मशाला की ओर पैदल चल पड़े। एकाएक उनके बड़ी चिन्ता का उदय होने लगा—"बिचारी को दिन भर एक कैदखाने में बंद कर गया। क्या वह सोचती होगी और क्या सोच? दम घुट गया होगा उसका। मानवी अधिकारों के इस विमुक्त वायुमंडल में उसके घूँघट के ऊपर यह कारागार का ताला—अवश्य मेरी बर्बरता है। अब भूलकर भी ऐसा नहीं करूँगा।"

भैरव धर्मशाला का फाटक पार कर भीतर को चला। कुछ लोग उसे देख रहे थे। उनका जो भी मतलब हो पर भैरव को ऐसा जान पड़ा मानो वे उसी की बाबत कुछ बातचीत कर रहे थे। उनकी यह दृष्टि उसके हृदय में गहरी चुभने लगी। वह काँप उठा।

वह धर्मशाला की सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर को जाने लगा। उसके ऐसा जान पड़ा—वह कहाँ जा रहा है यहाँ? कौन है यहाँ उसका? वह दौड़कर तीन नंबर के कमरे में गया। मन में वह अपने लगाए हुए ताले को देख रहा था। पर क्या देखा उसने?

कुछ समझ ही में नहीं आया उसके। चारों ओर अंधकार देखने लगा वह। माथा पकड़कर बरामदे की सीढ़ी की रेलिंग का सहारा लिया उसने। सामने तीन नंबर का कमरा खुला था। उसमें किसी और का बिस्तर सजा और सामान खुला पड़ा था। कोई दूसरी ही महिला वहाँ विराजमान थी—उसके दो बच्चे खेल रहे थे उसके निकट।

अपने नवीन जगत का जो नक्शा दृश्य रच रहा था भैरव वह सब बालू के भवन-सा भूमि पर बिखर गया! साहस बटोरकर उसने बरामदे

में चमकनेवाली बिजली की ज्योति में फिर अपने कमरे के नंबर को पढ़ा— तीन !

वह और इधर-उधर कई कमरों तक हो आया और किसी कमरे में उसका ताला नहीं था। उसकी तमाम सुध-बुध जाती रही। वह क्या करे, उसकी समझ उसका साथ देने से इनकार करने लगी।

वह तीन नंबर के कमरे के द्वार पर खड़ा हुआ। उसने उस कमरे को पहचाना। भीतर से महिला ने पूछा—"किसे ढूंढते हो ?

महिला के दोनों बालक अपनी क्रीड़ा छोड़कर उसके कंधों पर लटक गए, ज्योंही उन्होंने एक अपरिचित को कमरे के भीतर अपनी गर्दन डालते देखा।

भैरव ने पूछा—"इस कमरे में हमारा सामान था वह कहाँ गया ?

'प्रबंधक से पूछिए, हमें तो यह खाली ही मिला।

'और मेरी श्रीमती जी भी वह किस कमरे में चली गईं ?"

'हमें यह कुछ नहीं मालूम वह सामने दफ्तर है वहाँ जाकर पूछिए शायद कमरा बदल दिया हो।"—महिला ने जवाब दिया।

आशा में भरकर भैरव मैनेजर के पास गया। बोला— तीन नंबर के कमरे में मेरा ताला लगा था किसने खोला ?"

मैनेजर का एक सहकारी बोला—"हम नहीं जानते। जिसका ताला होगा उसी ने खोला होगा।

"मैं तो यह खड़ा हूँ आपके सामने। और मैंने नहीं खोला। —अब तो भैरव का मुँह पीला पड़ गया।

"हम क्या जानें हमने नहीं खोला। क्या था तुम्हारे कमरे में ?"

"क्या था ? मेरा सामान था और मेरी श्रीमती थीं।

कुछ लोग जो वहाँ मौजूद थे सब हँस पड़े। भैरव के घाव में और भी नमक-मिर्च पड़ गया। वह कुछ रोष में आकर बोला—"क्यों इसमें हँसने की क्या बात है ?"

"क्यों हँसने की बात कैसे नहीं ? आपकी श्रीमती क्या कोई सामान

थी या होटल डोल जो आप उन्हें ताला लगाकर चले गये ? बड़े अजीब आदमी हैं आप !

भैरव अपने दुख में डूब गया था। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

मैनेजर का सहकारी बोला—"अभी मैनेजर साहब आते हैं उन्हें शायद कुछ मालूम हो।"

भैरव एक कटे हुए वृक्ष की भाँति ऑफिस की एक कुरसी पर बैठ गया।

पास ही बैठे हुए एक आदमी ने दैनिक पत्र हटाकर पूछा—"क्या कहीं बाहर से आए हो ?"

"हाँ भाई।

"क्या काम करते हो ?

"काम तलाश करने आया हूँ।

उसने फिर अपना अखबार उठा लिया और उसे पढ़ने लगा। थोड़ी देर में मैनेजर आ पहुँचे।

भैरव ने ऑफिस के बाहर ही उन्हें पकड़कर कहा—"मैनेजर साहब मेरा कमरा किसने खोला ?"

"कौन-सा ?

"वही नंबर तीन।

"तुम्हारा ही कोई आदमी आया होगा।"

"मेरा कोई आदमी नहीं है यहाँ।"

"हम क्या जानें फिर ?"

"तुम क्यों नहीं जानते ? तुम मैनेजर किस बात के हो ?"

"मैनेजर इंतजाम के लिये हैं। इंतजाम करते ही हैं। किसी के चेहरे पर तो कुछ लिखा है नहीं। उसकी जब में क्या है उसको ही कौन जान सकता फिर किसी के दिल में क्या है कौन बता सकता है ? क्या माल था आपका ?"

"माल की ऐसी-तैसी ? बिस्तर-ट्रंक की परवा किसे है ? मेरी

श्रीमती जी कहाँ गई थे ?"—भरव ने बड़ी विह्वलता से तीन नंबर के कमरे की तरफ संकेत कर मैनेजर की ओर दृष्टि की। उसकी दृष्टि में एक विक्षिप्तता झाँक रही थी।

मैनेजर ने सिर से पैर तक भैरव को देखा और मन में यह निर्णय करने लगा यह आदमी पागल तो नहीं है।

भैरव उसकी यह मुद्रा देखकर चिढ़ गया बोला—"क्या देखते हो ? तुम अपनी ड्यूटी में हाजिर नहीं रहते ? क्यों नहीं रहते ?"

"चुप रहो ! मेरी ड्यूटी की देखभाल करनेवाले तुम कौन हो ?"

"मेरा सर्वस्व चला गया और तुम्हें पता ही नहीं !"

"तो क्या मैं तुम्हारी औरत का चौकीदार था ? ट्रंक-बिस्तर बेजुबान चीजें हैं कोई भी ले जा सकता है। लेकिन जैसा कि तुम कहते हो तुम्हारी औरत को गई। कैसे को गई ?

बहुत-से लोग आस-पास के वहाँ आकर जमा हो गए थे। सब तमाशा देख रहे थे।

"यही तो मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि वह कहाँ गई ?"—भैरव ने पूछा।

"अजीब आदमी हो ? मैं कहता हूँ अगर कोई उसे बलपूर्वक ले जाता तो वह रोती चिल्लाती नहीं ? यहीं पर मेरा ऑफिस है और वह चौबीसों घंटे खुला रहता है। यहाँ कोई-न-कोई हर वक्त धर्मशाला की आवाजों और टेलीफोन की घंटी पर कान दिए रहता है। मैं कहता हूँ तुम्हारी औरत को कोई नहीं चुरा ले गया।"

"फिर क्या कमरे में से उड़ गई हवा में ?"

"हवा में उड़ गई या किसी के साथ उड़ गई ? मैं ठेकेदार हूँ क्या तुम्हारी औरत का ?"

मैनेजर की रुखाई को अब तक भैरव जहर की घूँट-सा पीता जा रहा था अब सहन न हो सका उससे। बरामदे के कोने में एक कूड़ादान रखा था टीन का। उसने उसे उठा लिया और मैनेजर के सिर पर जो दे मारने को दौड़ा—"बेईमान ! बैठे-बैठे तमाशा बताता है और तमाम

चोर-उचक्कों का अड्डा बनाकर रख दिया है यहाँ !

लोगों ने बीच-बचाव कर दिया। मैनेजर चिल्लाया—"पकड़ो इसे ! क्या नशा पीकर आया है यह कोई ?"

क्रोध के आवेग में कुछ दिखाई-सुनाई न दिया भैरव को। वह सीढ़ियों से नीचे उतरता हुआ कहता जा रहा था—"यह धर्मशाला है या बेईमानों और बदमाशों की गुफा ?

नीचे उतरकर उसे धर्मशाला के प्रांगण में फुहारे के पास एक संगमरमर की मूर्ति दिखाई दी। शायद वह धर्मशाला के किसी दाता या संस्थापक की थी। उसे लक्ष्य कर भैरव अपने कलपते हुए क्रोध में बोला—"यह है इस धर्मशाला के संस्थापक ! यह न होते तो यह धर्मशाला भी न होती न मैं यहाँ आता न मेरी बासो जाती।

फुहारे की दीवार के पास लैम्प के खम्भे की एक टूटी लोहे की छड़ पड़ी थी। भैरव उसे घुमाने लगा।

ऊपर से मैनेजर चिल्ला रहा था— पकड़ लो !"

"किसकी ताकत है ? मैं सिर फोड़ दूँगा।

किसी का साहस न हुआ उसके निकट जाने का। अंत में उसने अपना सारा गुस्सा निकाल दिया उस स्टैच्यू के ऊपर। उसने वह लोहे की छड़ दे मारी उस पर। मूर्ति की नाक टूट गई। ऊपर से मैनेजर चिल्लाया—"जाने न पाए ! पकड़ो ! पकड़ो ! मैं टेलीफोन कर पुलिस को बुलाता हूँ।" मैनेजर ऑफिस को भागा।

कुछ लोग भैरव को पकड़ने दौड़े। वह भाग गया सबकी आँखों में धूल झोंककर। एक गली में होकर कुछ ही देर में कहाँ का कहाँ हो गया ? जाते-जाते चौपाटी पर निकल गया वहाँ एक लोहे की बेंच में बैठकर विचार-मग्न हो गया।

"क्या करूँ ? अब कहाँ जाऊँ ? बासो को कोई धोखा देकर उड़ा ले गया या वह मुझे धोखा देकर चली गई ? कुछ समझ में नहीं आता। लाखों मनुष्यों की आबादी का यह नगर ! मैं कहाँ खोजूँ उसे ?"

समुद्र की ठंडी-ठंडी हवा उसे असह्य हो उठी। अपने मन में सोचा उसने— 'बड़ा भयानक यह जगत है। अपने जीवन की कठिनाइयों को खत्म करने आया था। यहाँ तो मैं चरम सीमा को पहुँच गया! अब क्या करना चाहिए मुझे?" उसने जेब में हाथ डालकर टटोला। दस-दस के दो नोट, कुछ रेजगी के सिवा और सब रुपया उसके संदूक में ही था। कपड़े जो कुछ उसके बदन में थे वही उसके अपने रहे।

एकाएक उसे धर्मशाला का उपद्रव याद आ गया—"वह मैनेजर जरूर मेरे पीछे पड़ा होगा। उसने जरूर पुलिस में मेरा हुलिया लिखा दिया होगा। यहाँ मेरे पास दूसरा कपड़ा भी नहीं कि अपने तन पर का वेश बदल डालता। अगर पुलिस के हाथों में पड़ गया तो फिर बड़ी मुश्किल हो जायगी।"

भैरव ने अपना कोट खोलकर हाथ में ले लिया। रात के समय उसकी यह हरकत भी कोई मतलब नहीं रखती थी। समय का कोई अनुमान न हो सका उसे। सामने से एक बस आ रही थी। वह उसमें चढ़ गया और विक्टोरिया टर्मिनस चला गया।

बड़ी भूख लगी थी उसे। सबसे पहले उसने कुछ सस्ता भोजन किया फिर सोचने लगा—"कहाँ जाऊँ? आशो के चले जाने पर अब तो जीवन का कोई लक्ष्य ही नहीं रहा। फिर जो भी जहाँ की भी गाड़ी तैयार है उसी में बैठकर चला जाना है। टिकट? नहीं पैसा कहाँ है? उदर-पूर्ति जरूरी है।"

भैरव ने अपने दिल को याद किया—"जिसको लेकर झगड़ा था वह आशो तो गायब हो गई! अब क्या करूँ? घर हो जो चल दूँ और माता-पिता का अनुचर होकर उनकी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनूँ। नहीं! संपत्तिवानों के इस अत्याचार का विरोध करना है मुझे। संपत्तिवान होकर खुद एक अत्याचारी बन जाऊँ? धिक्कार है ऐसे जीवन को! आशो की माँ को यहाँ क्या जवाब दूँगा? आशो किसी तरह मुझे छोड़कर गई ही। उसकी माँ के समक्ष विद्रोह करानेवाला तो मैं ही हूँ।"

"बासो चली गई तो जाने दो। उसका पाप-पुण्य उसके साथ है और मेरा मेरे। जाने दो बासो को वह मेरे मन की दुर्बलता को लेकर चली गई। और भी महान् ध्येय मेरे जीवन का बन सकता है। मुझे इन संपत्तिवालों के पाप का किला तोड़ना है और इन धर्म के ठेकेदारों की पोल खोलनी है। भोली और गरीब जनता इन दोनों के पापों से पिस रही है। मैं उसके त्रास को मिटाऊँगा। मेरे जीवन का यही अर्थ है।"

भैरव को जीवन में एक नया ध्येय और नया मोड़ मिल गया। वह उस पर अग्रसर होने लगा—"बासो! बासो! उसके कारण मुझे धनी पिता के पाखंड का पता चला और बासो! उसी की वजह से मुझे इन धर्म-संस्थानों की पोल ज्ञात हुई। बासो अब इस जीवन में कहीं न मिलेगी यह मेरे दिल की आवाज है। उसको ढूँढने की कोशिश बालू में से तेल निकालना है। चलूँ अब मेरे हृदय में चलने का उत्साह है तो चारों तरफ रास्ते ही रास्ते हैं।"

भैरव ने फाटक पर नजर डाली और प्लेटफॉर्म में घुस गया। गाड़ी लग गई थी अभी उसके चलने में कुछ देर थी। उसके पास कोई सामान तो था नहीं। गाड़ी के चलने पर किसी भी डिब्बे में वह घुस पड़ेगा ऐसा उसे विश्वास था।

एक चायवाले से लेकर उसने एक प्याला चाय का पिया। यात्रियों के दल इधर-से-उधर आ-जा रहे थे। फिर उसके भीतर से उसकी कमजोरी जाग उठी—'क्या यह संभव नहीं हो सकता इस भीड़ में कहीं पर बासो भी मुझे ढूँढ रही हो? तब तो फिर एक बार मेरे जीवन का लक्ष्य बदल सकता है। नहीं! नहीं!"—चकित निगाह से उसने चारों ओर देखा।

'बासो को ताले में बंद कर मैं गया था कैसा अविश्वास किया मैंने उसका इसीलिये वह मुझे छोड़कर चली गई!—उसने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला वह खाली था। उसने एक सस्ती सिगरेट की

और उसे सुलगाकर पीने लगा। वह उसके गले में लगने लगी।

गार्ड ने सीटी दी। वह दौड़कर एक डिब्बे में जा घुसा। बड़ी निराशा-भरी दृष्टि से छूटते हुए बंबई को देखकर मन-ही-मन कहने लगा—"विदा! बम्बई से विदा! आशा और उमंगों की समाधि से विदा! यादों से विदा! जिसके लिये सबको छोड़कर आया था—उसे भी छोड़ देना पड़ेगा। ऐसा जो परदे के पीछे छिपकर हमारे अभिमान को चूर-चूर कर देता है कौन है वह! कोई नहीं! सिर्फ एक संयोग—एक ख्याल!"

कुछ लोगों ने उसके बैठने को जगह कर दी। वह बैठ गया।

ल्हासा में

ल्हे रावा के गाँव से ल्हासा डढ़ दिन के पड़ाव पर था। कमलम उस दूरी को एक ही दिन में तय कर लेने की दृढ़ता से चला। मार्ग में न कहीं पर क्षण भर के लिये बैठकर उसने विश्राम किया न किसी परिचित के मिल जाने पर कोई बातें ही की।

प्रकृति उसके पक्ष में थी। साफ़-स्वच्छ आकाश। बादल का कहीं पर कोई टुकड़ा न था। वायु में न वेग था न ही ठंडक। मार्ग में बर्फ भी नहीं थी कहीं पर पहले दिन की। या तो इस तरफ गिरी ही नहीं थी या वर्षा अथवा और किसी कारण से टिकी नहीं थी।

इतनी चेष्टा करने पर भी कमलम ल्हासा से दो कोस की दूरी पर ही था जब सूर्य अस्त हो गए। जाड़ों की संध्या विस्तार में बहुत छोटी, शीघ्र ही अँधेरा हो गया। ठंडी हवा बहने लगी और पाला पड़ने लगा।

दिन-भर का हारा-थका कमलम अपने लक्ष्य में जरा भी परास्त नहीं हुआ। वह अंधकार शीत और श्रम सबके साथ युद्ध करता हुआ हर कदम पर आगे को बढ़ता ही जा रहा था।

जाड़ों के छोटे दिन घर पहुँचते-पहुँचते मानो आधीरात बीत गई। आस-पड़ोसवाले द्वार बन्द कर दीप बुझा संध्या से ही गुम-सुम हो गए थे इससे और भी निशा गम्भीर हो गई थी।

घर के पास आते ही कमलम को ऐसा जान पड़ा मानो उस घर का सारा प्रकाश बुझ गया और वह एक प्राणहीन जीव की भाँति पड़ा है—केवल पिंजर ही पिंजर! उसमें चहल-पहल और जीवन फैलानेवाला पंछी न-जाने कहाँ को उड़ गया है?

इतनी दूर से जिस घर की प्रीति से खिंचा हुआ दौड़ता चला आ रहा था अब उसके पास आते ही सहसा वह रुक गया। उसके पैरों में मानो सीसा भर गया। वह मन में सोचने लगा—"अकेले कैसे पहुँचा अब इस वेश में भीतर? एक साथी तो अब किसी प्रकार नहीं लौट सकता और दूसरा जगाने पर भी न आयगा।

उसने काँपते हुए हाथों से ताला खोला। अँधेरे में टटोलता हुआ किसी प्रकार दीवट के पास गया। उससे जरा और आगे हाथ बढ़ाकर उसने बुद्धदेव की प्रतिमा के चरणों का स्पर्श कर अपने पापों के लिये क्षमा ढूंढ़ने की चेष्टा की "यह क्या?" उसने और आगे को हाथ बढ़ाया! चारों तरफ दोनों हाथ बढ़ाए! वह चीख उठा—हे देव! इस दुर्दिन में रूठकर क्या तुम भी चले गए? अब संदेह नहीं रहा पापी मैं ही हूँ। थोड़ी देर के लिये वह संज्ञाशून्य-सा होकर भूमि पर बैठ गया।

फिर उठा—"इतने वर्षों से जिस ताँबे की प्रतिमा को पूजता रहा वह निस्संदेह नहीं है अपनी जगह पर। फिर कहाँ गई?"

उसने इधर-उधर टटोलकर भूमि पर से एक मिट्टी का दीपक ढूंढा। उसके मन में संदेह जाग उठा उस घर की गृहिणी ही नहीं उस घर का देवता ही नहीं उसका साथी चीनी भाई ही नहीं और भी शायद सब-कुछ यहाँ से चला गया।

वह उस दीपक को लेकर पास ही एक पड़ोसी के यहाँ गया और उसके यहाँ से उसने कुछ घी माँगकर उस दीपक में प्रकाश की लौ उठाई। पड़ोसी ने बड़ी अन्यमनस्कता से उसकी सेवा की। लेकिन जब उसने अपनी पत्नी के निधन की बात कही तो फिर वह मानो बड़ी गहरी नींद से जाग उठा और तन-मन-धन से अम्बलम की सहायता को तैयार होकर कहने लगा—"मेरे लायक काम बताओ भाई। यह तो बड़ी बुरी खबर तुमने सुनाई।"

"सब भगवान की इच्छा है। तुम्हें समय है तो मेरे साथ चलो मेरे

घर तक।"

"क्यों ?"—कुछ डरता हुआ पड़ोसी बोला।

"मुझे बड़ी डर लग रही है वहाँ जाते हुए।"

"मेरी समझ में इस समय तुम वहाँ ताला लगाकर यहीं आ जाओ। अब कैसे वहाँ भोजन का प्रबन्ध करोगे ? कुछ थोड़ा-सा यहीं खा-पीकर आराम कर लो।"

"तुम क्यों मेरा परिहास कर रहे हो। दस पीढ़ियों से पूजित पूर्वजों की धरोहर वह बोधिसत्व की प्रतिमा चली गई !

"कौन ले गया ?"

"क्या मालूम ?"

"जो जाने दो। बाहर की प्रतिमा के जाने से क्या होता है ? पूजा की जो भावना है उसी से तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। उसे कौन ले जा सकता है ? लो यहीं हकीम जी भीतर आ जाओ मैं द्वार बंद कर लूँ। ओह ! कैसी ठंडी हवा बह रही है।

"वह बड़ी प्रकृष्ट मूर्ति थी खास भारतवर्ष से आई थी।

"सारी धरती बोधिसत्व के जन्मों का विस्तार है, फिर केवल भारत ही का तुम्हें क्या मोह हो गया ? और तो कुछ नहीं गया ?"

"जब सत्य और अहिंसा चली गई तो फिर शेष ही क्या रहा ? लेकिन बर्तन-भांडे कपड़े-लत्ता और वह सामान-भास पोथी-पत्रा खत-दाक भी जो-कुछ था सबका सफाया हो गया जान पड़ता है।"

पड़ोसी ने कल्याण का हाथ भीतर खींचकर दरवाजा बंद कर लिया और बोला—'तब क्या फिकर है अब भी ताला लगाने का बखेड़ा ही चला गया। आँख फूटी पीड़ा गई !

कल्याण लौटने लगा—'तुम अभी नादान हो। जीवन के साथ परिहास करने के लिये अभी तुम समझते हो तुम्हारे पास काफी उमर है। मैं मृत्यु का भयानक ताण्डव देखकर आ रहा हूँ। मैं गंभीर हूँ।" उसके एक हाथ में जलता हुआ दीपक था। उसने दूसरे हाथ से द्वार की सांकल

कोस भी और सावधानी से दीपक की हवा से रक्षा करता हुआ बाहर को जाने लगा।

पड़ौसी ने अपने ओंठों की तरफ हाथ बढ़ाते हुए कहा—'हकीम जी रहूँ मैं आ जाता हूँ।

कमजन ने बड़ी उदासीनता से जवाब दिया—'नहीं मित्र तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं। मैंने भय को जीत लिया है।'

कैसे ?

"मृत्यु एक अटल सत्य है। उस यात्रा में हम सबको अकेले ही जाना है, फिर अकेले का कैसा भय।"—कहते हुए कमजन बाहर को चला गया।

पड़ौसी ने भी उसका अनुसरण किया। काँपते हुए कमजन ने अपने घर के भीतर प्रवेश किया। जो चित्र उसने अपनी कल्पना में बना रखा था उससे भी कहीं गया-बीता दृश्य उसके देखने में आया।

पड़ौसी ने पूछा—'हकीम जी क्या-क्या गया ?"

सारे मकान में कूड़ा-कचरा ही खप पड़ा था—चीथड़े ठीकरे और राख-कोयले का गोदाम-सा प्रतीत हो रहा था वह। चोर एक भी चीज नहीं छोड़ गए थे। काठ-कबाड़ जो नहीं ले जा सके थे वह सब वहीं जलाकर सेंक गए थे और खाना-पीना पकाकर खा-पी गए थे।

कमजन ने पड़ौसी को जवाब दिया—'जो रह गया है उसी से जाने का अनुमान कर सकते हो।

"नहीं मेरा मतलब है रुपया-पैसा और सोना चाँदी-जवाहरात ?"

"मैं तो जनम का भिखारी। मेरे पास क्या रखा था ?"

'तुम्हारा वह बीबी आई ? वह तो मालदार भी था और उसे सब कुछ संग्रह करने का शौक भी था।

"वह अपना सब-कुछ ले गया।"

"पत्नी की संपत्ति तो तुम दोनों के सामने की चीज थी।"

'पत्नी का संदूक उसके मैके में है और उसके अंग के आभूषण मेरे

पास हैं ।

"तब तो फिर कुछ नहीं गया भगवान् का धन्यवाद है ।"

"वाह ! यह खूब कहा तुमने ?" कमलन ने कुछ नाराज होकर कहा—"गया कैसे नहीं ? मैं तो कहीं का न रहा । मेरे पास कितनी ही बड़े परिश्रम से तैयार की हुई दवाएँ थीं । वे चोर सब फेंक गए हैं यहीं । अब कैसे मैं इन दीन-दुखियों का इलाज करूँगा जो बड़े भरोसे से मेरे पास आते हैं । इस बात को भी जाने दिया जाय तो वह बोधिसत्व की प्रतिमा वह तो एक अमूल्य निधि थी ।

ताँबे के उतने बर्तन थे तुम्हारे हकीमजी उनका कुछ भी मोह नहीं रहा तुम्हें फिर यह प्रतिमा वह भी तो धातु का ही एक भार था । उसकी बहुमूल्यता कुछ समझ में नहीं आई मेरे । क्या कभी कुछ बातें करती थी वह तुम्हारे साथ ? —पड़ोसी ने पूछा ।

"क्यों नहीं ? हमेशा ही तो जब मुझे किसी मुश्किल बीमार का सामना पड़ जाता तो उसी के इशारे पर अच्छे दवाओं का पता लगता और जब मेरे भाग पर कोई कठिनाई आ पड़ती उसी की कृपा से वह सुलझती ।"

"अच्छा ? पड़ोसी ने बड़े अचरज से पूछा—"आज तक तो तुमने यह बात कभी हमसे नहीं कही । बिना खाए-पीए कैसे बोलती थी वह मूर्ति ?

"स्वप्न में बोलती थी ।"

"आज वह मूर्ति चोरी न होती तो क्या वह तुम्हें चोर का पता बता देती ?"

कमलन उस कूड़े के ढेर में कुरेद-कुरेदकर ढूँढ रहा था कहीं कोई काम की चीज मिल जाय । कुछ भी नहीं मिला ।

पड़ोसी ने फिर उसका ध्यान आकर्षित किया अपने प्रश्न पर ।

कमलन कहने लगा—"हाँ भाई कुछ पता तो जरूर मिल जाता ।"

"तुम्हारा शक किस पर है ?"

"कभी सोचता हूँ यह कोई आस-पड़ोस का ही भेदिया है, क्योंकि जो चीज वह ले नहीं गया है उसे फेंक गया है। जैसे मेरी ये दवाएँ।" कलजन बड़ी व्याकुल दृष्टि से दवाओं के उस कूड़े की तरफ देखने लगा जो चोरों ने कई पुड़ियाँ खोलकर एक ही साथ मिला दिया था।

पड़ोसी कहने लगा—"चलो फिर हमारे ही यहाँ चलो अब यहाँ क्या रखा है? न खाने को सत्तू न ओढ़ने को कंबल।"

"जरूर मैंने कोई बड़े पाप किए हैं। इसी कारण इतने बरसों से मेरे पूज्य बोधिसत्व अवलोकितेश्वर मुझसे नाराज होकर इस तरह बदल लिए हैं।

हकीमजी धीमी भाई से तुम्हारा कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?"

कलजन ने कुछ सोच-विचार कर कहा—"नहीं तो वह अनजान नहीं है और मेरी आदत तुम्हें मालूम ही है।

"लोग कई तरह की बातें करते हैं।

"उन्हें करने दो भाई!"—कलजन फिर कूड़े के ढेर में टटोल रहा था न जाने क्या?

"चलो हमारे यहाँ जो होना था सो हो गया अब इस कबाड़ में समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं।"

कलजन बोला—"ताला न-जाने कहाँ रख दिया?"

"ताला टूटा नहीं था?"

"नहीं जैसा लगाकर रख गया था वैसा ही मिला।

"जाने दो नहीं मिलता तो है ही क्या यहाँ जिसे बंद करोगे।"—कहकर पड़ोसी उसको अपने यहाँ ले गया। वह दिन भर का भूखा था। कुछ खिला-पिलाकर उसने उसके सोने का प्रबंध किया। आज दो दिन के हारे-थके और जागे कलजन को बड़ी गहरी नींद आ गई।

दूसरे दिन सुबह उठकर वह अपने घर गया। उस कबाड़ के ढेर में फिर अपने भाग्य को ढूँढने लगा। पास-पड़ोसी स्त्री-पुरुष जिसने भी सुना सब वहाँ आ-आकर जमा हो गए और अपनी-अपनी भाषा बोलने

लगे ।

एक पड़ोसिन बोली—"दुनिया भलाई को नहीं देखती । हकीमजी तुम बिना किसी लालच के अमीर-गरीब सबकी सेवा करते थे । क्या चोर को तुम्हारे ही घर पर हाथ साफ करना था ?'

एक दूसरी बुढ़िया कहने लगी—"हे भगवान् न काम की कैंची छोड़ी न पानी का घड़ा न ओढ़ने का सुरमा रहने दिया न बिछाने को दन । खाने-पीने की चीजें तो सब बर्तनों के ही उड़ा दीं । मैं कहती हूँ यह किसी एक चोर का काम नहीं है । पूरे गिरोह का गिरोह जान पड़ता है ।

एक और पड़ोसी ने कहा—"हकीमजी मेरी समझ में तुम्हें फौरन् ही पुलिस में खबर देनी चाहिए । अभी कोई देर नहीं हुई है । शीघ्र ही माल बरामद हो जायगा ।"

बड़ी उदासीनता से उसने जवाब दिया—"उसका भला हो जिसने यह सब किया । पुलिस को खबर देकर क्या करना है मुझे ? मेरे भाग्य में होगा तो फिर सब-कुछ जोड़ लूँगा । लेकिन जोड़ना ही किसके लिए है ?

और एक तीसरी महिला कहने लगी—"क्या हुआ तुम्हारी घरवाली को ? हमने तो उसकी बीमारी के भी कोई समाचार नहीं सुने । बिचारी बड़ी भली थी । उसी के दम से तुम्हारे घर में धन-धान्य और सुख-समृद्धि थी । वह देवी थी । मैं तो समझती हूँ जिस दिन उसकी मृत्यु हुई उसी दिन तुम्हारे यहाँ भी यह चोरी हुई । वह घर भर सारा चमत्कार समेटकर अपने साथ ले गई ।"

कलमन आवेश में आ गया और उसके मुँह से निकल पड़ा—"तुम्हें क्या मालूम वह क्या थी ? वह तो चीन का आम रही थी न ?"

सहसा वह रुक गया ।

उसके भर की धूएँ की ज्वालाओं को बाहर निकलते देख सब पड़ोसी उसमें अपने हाथ और हृदय सेंकने को उत्साहित हो उठे ।

बुढ़िया ने सबसे पहले पूछा—"असली तुम्हारी ही थी जो तुमने उस चीनी को भाई बनाकर अपनी बहू का भी मालिक बना दिया।

कलजन अब अपने को सँभालने लगा—"लेकिन वह चीनी भाई वह चीनी भाई "

बुढ़िया फिर बोली—"हाँ वह चीनी भाई जब बीमार होकर तुम्हारे पास आया था तब बड़ा अच्छा था और जब तुमने उसके लिए दूकान खोल दी वह खूब पैसा कमाकर मोटा हो गया और पैसे के नाम पर कभी उसने एक कानी कौड़ी भी तुम्हें नहीं दिखाई।

"मैंने उस छोटे भाई के परिश्रम से पैदा हुए पैसे को लेने से हमेशा ही इनकार किया। घर के खर्च के लिए वह सब-कुछ लाता ही था।

एक पड़ोसी ने कहा—"ऐसा त्यागी और नेक बड़ा भाई पाने पर फिर क्यों वह तुम्हारी स्त्री को लेकर चोम चाप भागने को तैयार हो गया?"

"ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो जीव अनेक कमजोरियों का पुतला है, हमें उसकी कमजोरी को ढक देना चाहिए, उसे खोलकर बता देना पाप है। संसार बड़ा क्षणभंगुर है।"

बुढ़िया ने तत्काल कलजन की बाँह पकड़कर कहा—"अभी तुम्हीं ने कहा था कि चीनी उसे भगा ले जा रहा था।"

"कह दिया होगा मैं भी तो उसी कमजोर इंसान का एक नमूना हूँ। चीनी कहाँ को भगा के जाता उसे? उसे तो वह महाकाल भगा ले गया जो हम सबके पीछे पड़ा है।

महाकाल का नाम सुनते ही बुढ़िया ने रंग बदल दिया। आँखों में आँसू भरकर वह गद्गद् कंठ से बोली—"वह बड़ी अच्छी लड़की थी। पारसाल जब मैं गठिया से बीमार थी दिनभर दौड़ आकर मुझे दवा दे जाती थी। दवा ही नहीं चार चार बार चाय पिला जाती थी। मैं उसके गुण नहीं भूल सकती। देवता करें वह स्वर्ग में पु

एक और पड़ोसी कहने लगा—"हकीम जी इस बूढ़

कुछ मिलनेवाला नहीं है। नाहक में तुम्हारे कपड़े मैले हो रहे हैं और समय बरबाद।

लेकिन कलजन को कोई दूसरा काम ही उस समय नहीं सूझ रहा था। वह और करता भी तो क्या? सब लोग अपने-अपने घर से कुछ-न-कुछ खा-पीकर आए थे। कलजन को भी भूख लग रही थी। कई बार चाय बनाने के लिए उसके इच्छा पैदा हुई। लेकिन जब हाथ अँगीठी की तरफ बढ़े तब न उसको केतली दिखाई दी न चाय का और सामान। उस ने अपने कुर्ता के भीतर से सुंघनी का डिब्बा निकाला और सुंघनी सूंघ-सूंघ कर अपनी सारी कमी पूरी कर ली।

फिर और एक पड़ोसी को कलजन पर दया आई, वह बोला—"छोड़ दो यह सब चलो कुछ खा-पी लो हमारे यहाँ चलो।

लेकिन न-जाने क्या एक सनक-सी सवार हो गई थी उसके दिमाग में। वह उस कूड़े-कचरे को कुरेदता ही जा रहा था।

पड़ोसी ने फिर उसका हाथ पकड़कर बड़े आग्रह से कहा—"चलो।"

"नहीं भाई बहुत जरूरी काम है मेरा।

"चाय पी लो तब और भी मन लगाकर इस कूड़े में ढूंढ सकोगे।"

"नहीं पहले ढूंढ लेता हूं।

क्या ढूंढ रहे हो?

हां ढूंढ रहा हूं। क्या ढूंढ रहा हूं? अपने इस दुर्भाग्य के कारण को। मैंने कभी किसी को नहीं सताया फिर मैं क्यों सताया गया? मैंने कभी देवता की पूजा में आलस्य या प्रमाद नहीं किया फिर क्यों मदनमोहिकेश्वर की मूर्ति मुझे छोड़कर चली गई? मैंने कभी किसी स्त्री की तरफ लालसा की दृष्टि नहीं बढ़ाई फिर क्या मेरी स्त्री मुझसे छीन ली गई?"

पड़ोसी रुककर बोला—"देवता शायद तुम्हारे धीरज की परीक्षा कर रहे हैं। मन के-आवेग को कम करो। ऐसी नासमझी से काम नहीं चलेगा।"

"क्या नासमझी है इसमें? मैं किसी से क्या कुछ कह रहा हूं?

किसी दूसरे पर शक नहीं कर रहा हूँ मैं अपने इस सर्वनाश के लिए, फिर क्यों तुम मुझे दोष दे रहे हो ? तुम सब चले जाओ यहाँ से। मुझे भारी चोट लगी है। रो नहीं सकता हूँ जो-कुछ यह कर रहा हूँ यह सब उसी रोने का एक रूप है। —कुछ झिड़ककर और कुछ गिड़गिड़ाकर कलजन ने कहा।

कुछ पड़ोसी पहले ही चले गए थे कुछ को अब जाना पड़ा लेकिन एक पड़ोसी जो कलजन से कुछ खा-पी लेने का आग्रह कर रहा था उसकी परवशता में द्रवीभूत हो उठा। कहने लगा—'तुम्हारी यह हठ ठीक नहीं जान पड़ती इससे तुम्हारे दिमाग में असर पड़ जायगा।

"जो-कुछ भी भगवान् को मंजूर है मैं क्या कर सकता हूँ ?

'तुम चाहो तो फिर सब-कुछ कर सकते हो। चोर चुराकर तुम्हारे भाग्य को नहीं ले जा सके।"

"अब कुछ नहीं कर सकता मैं। अब तो केवल एक ही इच्छा है सिर के तमाम बाल कटवाकर सारी इच्छाओं को समाप्त कर किसी मठ में जाकर प्रव्रज्या ले लेने की।"

'सिर के बाल घुटाकर क्या कामना समाप्त हो जाती है हकीम जी ?

'तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ तुम मेरे साथ व्यर्थ बहस न करो। बहस करने से हम किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकेंगे। कुछ देर के लिए मुझे यहाँ अकेले ही छोड़ दो। मैं कुछ सोच रहा हूँ। यह भूमि पर पड़ा हुआ जो कूड़ा है यह सब मेरे जीवन के टुकड़े हैं। मैं उसे उलट-पुलटकर कुछ पकड़ ढूँढ़ लूँगा। तुम थोड़ी देर के लिए जाओ भाई।"—कलजन ने बड़ी दीनता से कहा।

पड़ोसी चला गया। कलजन ने हाथ टेक लिए और फिर उसी तरह उस कूड़े को उलट-पुलट करता हुआ सोचने लगा। कुछ बचखुची दवाओं की पुड़ियें पड़ी थीं। बड़ी सावधानी से वह उन्हें सँभाल कर अलग रखने लगा।

"कब की बात है ? तुम कहाँ थे ?

"ससुराल।

"चीनी भाई कहाँ है ?"

"मैं नहीं जानता।

"उसी ने तो नहीं लिया ?

"तुम ज्योतिषी हो, बता सकते हो ठीक-ठीक ?

"विचार कर ही बता सकूँगा। इसी से कहता हूँ चलो मेरे घर चलो।"

"और यहाँ ?"

"अब यहाँ क्या रखा है ? घर घरनी को लेकर होता है, घरनी तुम्हारी चल बसी। फिर घर माल-असबाब को लेकर होता है, उसका ही अब कौन निशान बाकी है तुम्हारे ? चलो मैं तुम्हारी चोरी का पता लगाऊँगा और तुम मेरी स्त्री का इलाज करोगे।

कलजन को मित्र की आज्ञा-पालन करने के सिवा दूसरा और कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया। उसने मकान में ताला लगाया और उसके साथ चला।

रिबुधी ने कलजन को ले जाकर अपनी बीमार स्त्री के सामने खड़ा कर दिया। कलजन ने देखा वह हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गई थी। बीमार की अच्छी तरह परीक्षा कर उसने उसे उत्साहित करने को कहा—"कोई घबराने की बात नहीं है। बुखार तुम्हारे बहुत भीतर घुस गया है। खून खा-खाकर वह हड्डी के पास तक पहुँच गया है। लेकिन वह अभी उसे छेदकर उसके पार नहीं घुस सका है। मैं पूरी कोशिश करूँगा। भगवान चाहेंगे तो दवा शुरू करते ही तुम ठीक होने लग जाओगी।"

बीमार ने आँखों में आँसू भरकर हकीम की तरफ देखा और आकाश की ओर हाथ उठाकर न जाने क्या सोचा। क्षीण और मंद स्वर में कुछ कहा जो सुननेवालों पर स्पष्ट न हो सका।

कलजन रिबुधी का हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले गया। कुछ देर

वह सोचता ही रहा।

रिकूभी ने घबराकर पूछा—"क्या हाल है ?"

उदासी के साथ कमलम ने जवाब दिया—"क्या बताऊँ ?

'बचनेवाली तो नहीं है यह।"

"भगवान् की माया अतीव है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि यह बच नहीं सकती।"

"फिर ?"

"कोशिश करेंगे मित्र। मैंने एक बढ़िया के इकलौते बेटे को बचाया था। उसके तो हड्डी के भीतर घुस गया था बुखार।"

'मेरे ऊपर भी कृपा करो भाई।"

'सोच रहा हूँ कैसे ? बताएँ कहाँ से लाऊँ "

'नई बना दो बाजार से मैं सामान ले आता हूँ।

"बहुत कीमती दवा बनाई जायगी। कुछ पूँजी है क्या तुम्हारे पास ?"

'पूँजी जो कुछ थी सब खर्च कर चुका हूँ। कुछ उधार और मिल जायगा। तुम बताओ भी तो कैसी दवा बनाई जायगी ?

कमलम हँसा। उसने अपने छप्पर के भीतर से एक कपड़े की पोटली बाहर निकालकर खोलनी शुरू की।

"ये किसके आभूषण हैं ?"—रिकूभी ने पूछा।

"मेरी स्त्री के। वह मर गई। मैं इन आभूषणों को पहन नहीं सकता मित्र। इनका क्या करूँ। इन्हें कहाँ रखूँ ? यह मेरी एक समस्या थी। मैं इन्हें फूँककर तुम्हारी स्त्री के लिये दवा बनाता हूँ। इससे अच्छा उपयोग और क्या हो सकेगा इनका ?

रिकूभी ने कमलम की उदारता पर द्रुत आते हुए पूछा—"लेकिन मित्र तुमने कुछ खाया भी ?

"कहाँ से ? चूल्हे और घर की हालत तो तुम देख ही आए हो।"

"कमलम मेरी खुदगरजी को धिक्कार है ! सबसे पहले मुझे तुम्हारे

भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए थी।

"भोजन होता ही रहेगा। इससे पहले अगर तुम चोर का पता बता देते! मेरे तो विश्वासों की जड़ पर ही कुल्हाड़ी चल गई है। उसने मेरा धन ही चौपट नहीं किया है, मेरे संस्कार और स्वर्ग दोनों को समाप्त कर दिया है।"

रिचुकी बोला— "बताऊँगा मित्र, तुम जरा मुझे इस बरसाती की बीमारी से बाहर निकालो। मैं चोर का पता ही नहीं, कुछ ऐसा मन्त्र पढ़ूँगा कि चोर तमाम चीजों को लिए हुए तुम्हें ढूँढता हुआ चला आएगा। लेकिन इस समय तो मुझे सभी गवाह सुन्दर तुम्हारे भोजन की चिन्ता है। तुम कुछ देर बीमार के पास बैठो, मैं खाना तैयार करता हूँ।"

रिचुकी कम्मजन को लेकर फिर बीमार के कमरे में जा पहुँचा। उसने कम्मजन को उसके पास बिठा दिया। आहट पाकर बीमार ने आँखें खोलकर दोनों की तरफ देखा। क्षीण स्वर में उसने पूछा— "क्या कहते हैं ये?"

"कहते हैं, तुम जरूर अच्छी हो जाओगी।" —रिचुकी ने जवाब दिया।

"कितने दिन में?" —बीमार ने फिर पूछा।

रिचुकी ने कम्मजन की ओर इशारा कर कहा— "इन्होंने सुबह से अभी तक कुछ नहीं खाया-पिया है। मैं इनके भोजन का इन्तजाम करता हूँ। तुम्हारे प्रश्न का यही जवाब देंगे।" रिचुकी वहाँ से चला गया।

बीमार ने अपनी आतुर दृष्टि कम्मजन पर गड़ाई। उसने फिर अपना प्रश्न दुहराया— "कितने दिन में?"

"सबसे पहले मुझे तुम्हारे इस बुखार को तोड़ना है। अगर यह टूट गया तो फिर तुम्हारी भूख और नींद दोनों जाग उठेंगी। यही वे दोनों बातें हैं कि फिर क्या देर लगेगी तुम्हारे अच्छे होने में?"

"हाँ हकीम जी, खाने की बिल्कुल इच्छा नहीं है और रात भर करवट बदलते बीतता है।

"भिसकन्म नई दवा बनाऊँगा तुम्हारे लिए।" वह जेवरों की पोटली फिर खोलते हुए कनजन ने कहा— "मैं मूँगे और मोती फूँककर इनका भस्म बनाऊँगा।

बीमार जबरो की चमक पर उठकर बैठने की कोशिश करने लगी। कनजन ने उस हाथ का सहारा दिया। जबरो को टटोलते हुए कहने लगी—"ये मूँगे और मोती की मालाएँ हैं ये कान की बालियाँ सोने की हैं। इनको फूँककर तुम कैसी दवा बनाओगे?"

"तुम्हारी बीमारी दूर करने के लिये।"

"नहीं हकीम जी ऐसा भी कहीं कोई करता है? इनकी राख से भला क्या बीमारी दूर हो सकेगी?

"हूँ हैं! ऐसा क्या कहती हो तुम? इनकी राख बड़ी ताकतवर होती है एक ही खुराक में पता चल जायगा।

बीमार ने मालाएँ उठा लीं उनको अपने गले में पहन लिया और वो देवता का खड़ँ था उस दिखाकर बोली—"इसे भी भस्म कर दोगे? बड़े अजीब आदमी हो! कहाँ से ले आए तुम इन जेवरों को?"

"मेरी स्त्री के हैं।

"उनसे पूछकर नहीं लाए तुम इन्हें?

"वह मर गई।"

"किसी की मौत से खिलवाड़ करना बड़ा आसान है। तुम्हारे ज्योतिषी मित्र ने मरे हुए शेर की खाल बिछा रखी है वह उस पर बैठ कर बहुत दिन तक बड़ा गर्व करते थे। मैं कहती हूँ क्या कभी जिंदा शेर की पीठ पर बैठ सकने की उनकी हिम्मत हुई थी?"—बीमार ने अपने गले में धारण की हुई उन मालाओं को दूसरों की दृष्टि से देखा।

कनजन बीमार की अटपटी बातों को चुप होकर सुन रहा था। वह फिर कहने लगी—"हकीम जी एक बात नहीं मान सकते तुम?"

"क्या?"

"कुछ दिन तक इन मालाओं को मैं पहने रहती हूँ। इनकी राख

के बदले इनकी चमक का असर क्यों नहीं देख लेते तुम मेरी बीमारी पर ! हकीम जी ! हकीम जी ! मैं जनम भर इसी के लिये तरसती रह गई। तुम्हारे ज्योतिषी जी ने कभी मेरी एक भी बात नहीं सुनी। यदि वह सुनते तो मैं हरगिज बीमार ही नहीं पड़ती। और बस सही।"—वह बैठी न रह सकी फिर लेट गई।

हकीम जी ने उसे फिर अपने हाथ का सहारा देकर सुला दिया।

"क्या हुआ तुम्हारी बहू को हकीम जी ?

"उसका समय पूरा हो गया उसे महाकाल ने बुला लिया।

"उनके जेवरों को फूंककर तुमने उनकी रक्षा करने की कोशिश क्यों नहीं की हकीम जी ?

कसमन कहने लगा—"अधिक बोलने से तुम्हारी कमजोरी बढ़ जायगी चुप रहो।"

एक-दो सवालों का जवाब और दे दो। मारता कौन है हकीम जी महाकाल और जिलानेवाला ? ज्योतिषी है या वैद्य ? कौन है ?

"जिलानेवाला भी भगवान ही है।

रिखुवी दो कुल्हड़ों में चाय बनाकर ले आया। उसने एक कुल्हड़ कसमन को दिया और दूसरा कुल्हड़ लेकर अपनी स्त्री के सामने खड़ा होकर बोला— लो।

क्या है यह ?

"चाय एक घूंट पी लो।

"हूं हूं।"

"अभी कुछ देर हुई तुमने चाय पीने को कहा था।"

"तुम बहुत भस्म फांक लाए होगे। सोचा हो एक साथ ही सब भस्म खिला देने से मैं शीघ्र ही चंगी हो जाऊंगी और तुम्हारे घर का सारा काम सिर पर उठा लूंगी। देखो तुम्हारे मित्र मेरी रक्षा के लिये यह कैसे आभूषण लाए हैं।" उसने अपनी छाती पर लटकती हुई मालाओं को दिखाकर कहा— तुम्हें कभी ऐसी सूझ पैदा ही नहीं हुई।"

'लो पी लो जरा सिर उठा लो।"—रिकूची ने कहा।

'ऐसे ही पिला दो।" रिकूची की स्त्री कहने लगी—"कोई और दवा नहीं है हकीम जी तुम्हारे पास ? औरतों के आभूषणों को फूंक कर दवा बना लेना किसने सिखा दिया तुम्हें ?

एक-दो घूंट पीने के बाद बीमार ने फिर मुंह नहीं खोला दवा के लिये।

वह दिन वैसा ही चला गया। कलवन और रिकूची ने कई तरह के मनसूबे किए। अन्त में निश्चय यही मोती और मूंगा को भस्म कर दवा बनाने का हुआ। उसके लिये कुछ कंडों की जरूरत पड़ी रिकूची ने दूसरे दिन उनका प्रबन्ध कर लिया। अब समस्या हुई बीमार के गले से माला निकालने की।

हां वह एक विकट समस्या हो गई थी। आभूषणों के लिये उसके मन में बड़ी उत्कट लालसा जान पड़ती थी जो बीमारी और दुर्बलता के कारण उसके एक प्रभाव-सा हो गया था। रिकूची ने जब-जब उससे मालाएं मांगीं वह देने को किसी तरह तैयार नहीं हुई।

रात में कई बार रिकूची ने बीमार की आंख लगने पर उसके गले से माला निकाल लेने की चेष्टा की पर बार-बार वह असफल ही रहा।

कलवन ने उससे कहा— 'इस समय रहने दो कल को मैं किसी तरह मांग लूंगा। अभी कौन ऐसी आवश्यकता है ?"

"यह बड़े जिद्दी स्वभाव की है। तुम नहीं जानते।"

"वैसा आयगा कल को। कंडे तो आ जाने दो। काफी कंडों की जरूरत पड़ेगी।"

"पास ही एक चरवाहा रहता है। उसके यहां कई गोठ कंडों के भरे पड़े हैं। तुम चाहोगे तो वह यहां कंडों के पहाड़ लगा सकता है।"

"कंडों की तो बफिक्री हुई लेकिन दवा कहां फूंकी जायगी ?

"घर के भीतर नहीं फूंक सकते ? कीमती दवा ठहरी

बहुत तेज आंच चाहिए, घर के भीतर

'तो शहर से बाहर किसी मैदान में चले चलेंगे मौसम तो आजकल ठीक है।

घर से इतनी दूर ? आग लगाकर घर नहीं आ सकते बराबर दवा की चौकसी करनी होगी।

कितने दिन तक ?

कम से कम तीन दिन तक तो करनी ही पड़ेगी। तुम बीमार को अकेले छोड़कर जा नहीं सकोगे।

उसी चरवाहे को कुछ और दाम देकर चौकीदारी का काम भी करा लेंगे।

"इतनी दूर कौन जाए खाने-पीने का झंझट ! जाड़ा ! अगर पानी बरस गया तो ? फिर कीमती चीज। तुम्हारे आँगन में जगह तो है।

'हो जायगा यहाँ ?

'क्यों नहीं।

रिपुंजो बड़ी चिन्ता के साथ कहने लगा — 'जगह तो हो गई लेकिन इसमें मालाएँ कैसे ली जाएँगी ? कहीं से काट लेने पर आसानी से निकल जायेंगी।

'इस समय तो रहो मित्र कल को देखा जायगा।

'कल को क्या देखा जायगा ? बीमारी निकालने के लिये यह माला लाए। यह माला ही इसके शरीर में बीमारी से अधिक गहराई में घुस गई है। एक खुराक अफीम की होती तो इसे दे देते। जब गहरी नींद आ जाती सहज ही मालाएँ हटाई जा सकतीं। क्यों मित्र ?

'यह एक तरह का धोखा देकर किसी को लूट लेना है। माला ले लेना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारा मतलब है बीमार को अच्छा करना। और नशे में माला लेकर जब यह होश में आयेगी तो तुम क्या समझते हो इसे कोई गहरी ठेस न लगेगी ?

फिर कैसे ? कैसे हम अपना काम साधेंगे ?"

धीरज रखो, उतावली न करो। बीच में एक रात को बीत जाने

दो। कल को कोई-न-कोई तरकीब सूझ ही जायगी। लेकिन न धन प्रयोग ही करना है न कोई धोखा देना। इससे बीमारी दुसाध्य से असाध्य हो जायगी।" कलजन ने कहा।

दूसरे दिन सुबह होने पर रिचुकी बीमार के पास चाय लेकर पहुँचा। कलजन भी साथ हो लिया था।

बीमार के चेहरे पर एक क्षीण मुसकान थी। उसने कहा—"हकीम जी तुम्हारी ये दोनों मात्राएँ सचमुच में मुझे बड़ा फायदा पहुँचा रही हैं। मुझे रात भर बड़ी अच्छी नींद आई।

कलजन ने पूछा— कुछ खाने को भी जी कर रहा है?

'हाँ चाय पी लूँगी।

रिचुकी ने उसकी ओर चाय का प्याला बढ़ाया कलजन ने सहारा देकर उसे उठाया। वह धीरे-धीरे चाय पीने लगी।

कलजन बोला—"इसमें कोई सन्देह नहीं ये मात्राएँ तुम्हें बड़ी सुन्दर बना रही हैं।"

बहुत खुश होकर वह बोली— और भी तो कुछ लेकर थे?

'हाँ कुछ अँगूठियाँ।"

'उन्हें भी मुझे पहना दो न। तुम्हारे मित्र ने मुझे सुन्दर बनाने की कभी परवा ही नहीं की। मैं अपनी जवानी में बड़ी सुन्दर थी। जवानी अपना रूप आप ही है उस समय किसी आभूषण की जरूरत ही नहीं है, लेकिन उसके बाद आभूषण आवश्यक थे। तुम्हारे ये मित्र कभी धन नहीं कमा सके इसीलिये सदा वैराग्य और संपत्ति की क्षण-भंगुरता का उपदेश देते रहे मुझे।"

कलजन बोला—"चाय पी लो बोलते-बोलते तुम्हारा गला सूख जाता है और चाय भी ठंडी होती जा रही है।"

बीमार ने फिर चाय की एक-दो घूँट पीकर कहा—"तुमने अवश्य ही अपनी स्त्री की भावना को समझा और उसके लिए सोचकर रख लिये।"

रिपुनी ने फिर उसके होंठों पर चाय का प्याला लगा दिया। फिर चाय पीकर वह बोली—"अँगूठी कहाँ है वे ?"

"मेरे पास है।"—कलमन ने जवाब दिया।

"मेरी अँगुलियों में पहना दो न।

"लेकिन तुम्हारी अँगुलियों में खून की कमी है। वे कितनी पतली हो गई हैं। अँगूठियाँ गिर-गिर पड़ेंगी।"

"इनमें खून बढ़ा दो न।

"हाँ उसी के लिये आया हूँ मैं।"

कैसे बढ़ाओगे ?

"जिन मालाओं ने तुम्हें बाहर से पहनने पर ऐसा रूप दिया है उन्हें अगर तुम भीतर से पहन लोगी तो तुम्हारी तन्दुरुस्ती ही नहीं तुम्हारी जवानी भी लौट आएगी।

"मैं नहीं समझी माला भीतर से कैसे पहनी जाएगी ?"

"वह मूँगे का रंग और मोती की आभा तुम्हारे रक्त में मिला दी जायगी।

कैसे ?"

"इन्हें घोलकर तुम्हें पिला दिया जायगा।

"अब मैं इन्हें अपने गले में पहन चुकी हूँ तुम इन्हें मेरे गले से निकाल ले जाओगे तो मेरा गला सूना न हो जायगा ?

"नहीं हम ऐसा न होने देंगे।" कलमन ने अपने चुगा के भीतर से फिर वह बघनखे की गोटमी निकाली और उसे खोलकर उसके भीतर से एक यन्त्र बाहर निकालकर बीमार को दिखाते हुए कहा—"लो इसे तुम्हें पहना दिया जायगा।"

"यह किसका यन्त्र है ? इसमें किसकी मूर्ति बनी है ?"

"यह लक्ष्मी की मूर्ति है। यह तुम्हारे गले में दोहरा पराक्रम प्राप्त करेगी। तुम्हारे गले का सूनापन दूर कर उसकी सुन्दरता बढ़ाएगी इसके सिवा इसमें से दिन रात शक्ति की लहरें निकलती रहेंगी और अब

की तरह तुम्हारी रक्षा करेंगी।"

इसी समय वहां उस चरवाहे ने प्रवेश कर कहा—"ज्योतिषी जी कंडे कहां पर रखूं ?"

रिबूनी ने कलजम की ओर देखा। कलजम बोला—"आंगन में ही तो ठीक है।"

रिबूनी ने चरवाहे से कहा—"वहीं आंगन में डाल दो एक कोने में।"

"कितने बोझ ?"—चरवाहे ने पूछा।

कलजम बोला—"एक बोझ देख लेने पर बता देंगे अभी। तुम जाकर दूसरा ले आओ।

चरवाहा चला गया।

बीमार बोली—"कंडों का क्या होगा ? इतने कंडे ?"

"तुम्हारे लिये दवा बनाई जायगी।"

मुख में बड़ी विरूपता पैदा कर बीमार कहने लगी—"छी ! बड़ी अजीब बातें कर रहे हो तुम ? हकीम जी से समझती थी तुम एक ही ढंग के होगे। कभी कहते हो मूंगे और मोती की दवा बनाई जायगी और कभी कहते हो गोबर याने कि गोबर की ?"

"दवा तो मूंगे और मोती की ही बनाई जायगी कंडों से उनको दवा में बदलने में सहायता ली जायगी।"—कलजम ने सौम्यता के साथ कहा।

"क्या सहायता लोगे ?"

"उनको जलाकर मूंगा और मोती का भस्म तैयार किया जायगा।"

"कंडों को जलाकर फिर मूंगा और मोती की राख बनाओगे। ऐसे धूम के रास्ते से आना क्यों पसंद है तुम्हें ? बिना मतलब ही मेरी छाती गंधी कर दे रहे हो तुम।"

कलजम बोला—"तुम ऐसा कहकर मेरी जिंदगी भर की विद्या का उपहास करती हो।"

बीमार हँसती हुई बोली—'हड्डियाँ सब एक ही सी हैं राजा की हों चाहे प्रजा की। ऐसे ही राख भी तो वह कहो की राख हो चाहे मूँगा मोती की। फिर तुम चुटकी भर राख पुड़िया में बाँधकर क्यों नहीं मुझे दिखा देते? अगर मेरा जीवन बाकी होगा तो मैं उसी से चंगी हो जाऊँगी। ये ज्योतिषी जी क्या कहते हैं, मुझे अभी कुछ दिन जीना है या नहीं?"

रिबूची बोला—'हाँ तुम्हें जीना है।

बीमार बोली—तब अगर तुम्हारी विद्या झूठी नहीं है तो मेरे जीने को क्यों तुम एक कीमती चीज की मिट्टी करने को तैयार हो?

रिबूची बोला—जैन ऐसा ही है और हम में से किसी को इसके खिलाफ बोलने का कोई अधिकार नहीं। लाओ मालाएँ दे दो।

रिबूची ने कुछ रूखा और कुछ रोष भरी वाणी से अपना हाथ उन मालाओं की तरफ बढ़ाया। उसकी स्त्री फिर कोई विरोध न कर सकी। उसने दोनों मालाएँ निकाल दीं।

कलमन ने उस निराश बीमार को सहारा देते हुए कहा—'लो तुम्हें यह गंडा पहना देता हूँ। यह तावीज करने वाली जोत्स्ना है—हर अमावस और पूर्णिमा को इसकी पूजा करना। अभी तुम कमजोर हो जब कुछ ताकत आ जायगी तो व्रत भी करना पड़ेगा।" कलमन ने वह मूर्ति उसको दिखाई और फिर उसके गले में पहना दी।

रिबूची दोनों मालाओं को लेकर उस कमरे से चला गया। उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था मानो बड़ी दुर्लभ वस्तु उसके हाथ लग गई।

८

मोती-भस्म

चरवाहे ने आँगन में कंडों का ढेर जमा कर दिया। जब उसने आखिरी खेप डाल दी तो वह चुपचाप खड़ा हो गया रिखी के पास। रिखूजी ललजन से कुछ बातचीत कर रहा था। चरवाहे को आता देख कर रिखी के मन में कुछ कठिनाई-सी पैदा हो गई। ललजन बोला—"कोई बात नहीं घबराओ मत।

चरवाहा पूछने लगा—"लेकिन इतने कंडों का क्या करोगे तुम ?"

रिखी ने कुछ संकोच से जवाब दिया—'बता तो दिया तुम्हें कि दवा बनाई जायगी।

"कैसी दवा बनाई जायगी ? दवा बनाने वाले तो यहां और भी हैं। मैंने तो उन्हें इतने कंडे जमा करते नहीं देखा।

ललजन कहने लगा—"बड़ी कीमती दवा बनाई जा रही है। न देखा हो तो आज देख लो।"

"कीमती कैसी ?" चरवाहे ने कौतूहलपूर्वक पूछा—"ये जो मेरे बाल सफेद हो गए हैं उनको काला कर सकेगी यह दवा ?"

रिखूजी ने जवाब दिया—"कर क्यों नहीं सकेगी ? दाम दे भी सकोगे दवा के ?"

"ऐसे क्या हीरा-मोती जोड़े पड़े होंगे इसमें !

"हीरा-मोती ही पड़े हैं चरवाहा जी !" ललजन ने जवाब दिया।

रिखूजी अपने मन में सोचने लगा—"ललजन बड़ा सीधा आदमी है। शायद जल्दी में बिना सोचे-समझे इसके मुँह से यह शब्द निकल गया। उसने चरवाहे को बहका देने के लिए कहा—'हीरा-मोती कुछ

नहीं है, तुमसे ऐसे ही हँसी में कह दिया।"

इतने कंडों का पहाड़ जो यहाँ पर लाकर रख दिया है मैंने। मेरे छः महीने की कमाई है यह। इसका नगद पैसा न सूँघा। क्या ही तरीब सूँघा लेकिन कुछ कहो भी तो। —चरवाहा बोला।

कलवम ने कहा—"क्या कहूँ ?"

'यही कि सफेद बाल काले हो जायेंगे न सब ? और जो दो न दांत टूट गए हैं तीन टूटने को तैयार हैं उनका भी कुछ जिम्मा लोगे या नहीं ?"

'क्या जिम्मा लेने को कहते हो ? जो दांत टूट गए हैं उनमें फिर तीसरी बार दांत निकल आएँ ? ऐसा भी कहीं होता है ? मरे हुए भी क्या कहीं बोलने लगते हैं ? सूखे हुए पेड़ में भी कहीं फल लगते हैं ?

चरवाहा ठहाका मारकर हँसा—"वाह ! हमारे गाँव में एक बुढ़िया थी अभी चार-पाँच ही साल तो उसे मरे हुए हैं। उसके दांत दो बार टूटकर तीसरी बार निकल आए। तमाम गाँववालों को मालूम है। और उसने बिना किसी की दवा खाए ही यह सब पाया।

रिपूची ने जवाब दिया—"सब विश्वास की बात है। मगर तुम्हारे भी विश्वास है तो तुम भी जो चाहो कर सकते हो।

"फिर तुम्हारी दवा के दाम देने को क्या मुझे पागल कुत्ते ने काट खाया है ?"

"भाई, विश्वास को जमाने के लिए भी तो कोई चीज चाहिए ? वह हवा में थोड़े ठहर सकता है ?"—कलवम ने कहा।

कलवम के हाथों में एक डमरू के आकार की कोई चीज थी। उस पर वह गीली मिट्टी और कपड़ा लपेट रहा था।

चरवाहे ने पूछा—"यह क्या है ?

रिपूची उसे डाँटकर बोला—"जाओ तुम्हें कोई मतलब नहीं अपना काम करो !"

"क्या काम करूँ अब ? एक कोठ खाली कर सब कण्डे यहाँ जमाकर

लिए हैं दिन भर में ! चराई और कण्डों के दाम देने का वक्त आया तो तुम ऐसे डींग रहे हो ?"—कुछ असन्तुष्ट होकर चरवाहा बोला।

बात बिगड़ती देख कलावन बोला—"नाराज मत होओ। ये दो हाँड़ियाँ हैं जिनके मुँह मैंने इस कपड़-मिट्टी की मदद से जोड़ दिए हैं।

कुछ सहारा पाकर चरवाहे के मुख पर की तीखी रेखाएँ टूट पड़ीं। उसने पूछा—"इन हाँड़ियों के भीतर क्या है ?"

"उसमें दवा है।"—कलावन ने जवाब दिया।

"क्या दवा है ?"—उसने फिर पूछा।

"अब क्या क्या बताऊँ भाई !"—बड़ी उलझन से सिर खुजाते हुए कलावन ने उत्तर दिया।

रिखूजी कुछ हुआ अभी तक चुप था फिर आवेश में आकर कहने लगा—"तुम जितने जिद्दी हो उतने ही मूरख भी। यह दिया तुम्हारे समझने की दवा नहीं है। सौ बात की एक बात ! जाओ अपना रास्ता नापो।"

चरवाहा मन-ही-मन जल उठा। उसने निश्चय किया जरूर कोई भेद की बात है इस हाँडी में और वह उसका भण्डाफोड़ करने के लिए कटिबद्ध हो गया। उसने जवाब दिया—"मेरे दाम दो तभी तो रास्ता नापूँगा।"

रिखूजी ने भी अपने स्वर में तेजी भरी—"दाम अभी तय कहाँ हुए हैं ?"

"तो क्या कुछ देने की मंशा नहीं है ?"

"देंगे क्यों नहीं ? चार आदमियों से पूछकर देंगे।"

"मेरे घर में खाने को कुछ नहीं है। मैं क्या खिलाऊँ बच्चों को ?"

रिखूजी ने तुरन्त ही उसे उत्तर लौटाया—"अगर हम तुम्हारे कण्डे नहीं खरीदते तो ?"

"तब भी तब ही देखी जाती।"

"अच्छा जाओ उठा ले जाओ अपने कण्डे।"—रिखूजी ने बहुत

बोला—"अब सूर्य अस्ताचल में चले गए, भीतर चलो बीमार बड़ी देर से अकेली ही है।"

कलजन ने होशियारी से हाँडी उठा ली और दोनों भीतर को चले आँगन में आए। आँगन में तीन ओर ऊँची ऊँची दीवारें थीं। चौथी ओर मकान का मध्य प्रवेश था। दोमंजिला मकान आँगन को छोड़कर मकान की तीनों दीवारों में और कोई आने जाने का द्वार नहीं था। धुएँ के निष्कासन प्रकाश और धूप के प्रवेश के लिए खिड़कियाँ थीं।

मकान के सामने आँगन की दीवार में एक दरवाजा था रिचूनी ने आँगन में पहुँचकर उसमें साँकल चढ़ा दी। दोनों भीतर आ पहुँचे।

बीमार रो-चिल्ला रही थी। रिचूनी उस ध्वनि का आदी ही था। उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कलजन दौड़कर उसके पास जा पहुँचा। उसने पूछा—"क्यों तबीयत कैसी है?"

"जीवन के लिए कोई आसरा नहीं मरने के लिए भी कोई सहारा नहीं मिलता।—कराहती हुई वह बोली।

"क्या बात हो गई?—कलजन ने पूछा।

"कब से प्यास लगी है पानी माँग रही हूँ।

"पानी रखा तो है।—रिचूनी ने कुछ चिढ़कर कहा।

"सब पी चुकी हूँ।"—कहकर वह रोने लगी सिसकियाँ भरती हुई।

रिचूनी पानी भरकर ले आया और उसके सिरहाने रखते हुए बोला—"लो पानी न आया। किसी दिन तुम पानी को छूती भी नहीं हो और किसी दिन रखते ही बर्तन रीता कर देती हो।

"मैं क्या करूँ फिर? प्राण जिस दिन जैसा माँगते हैं। पानी भी नहीं रोग क्या?

कलजन उन हाँडियों का दिखाता हुआ बोला—"देखो यह तुम्हारे लिए हम दवा बना रहे हैं। भगवान् चाहेंगे तो तुम शीघ्र ही रोग से मुक्त होकर घर के काम काज में लग जाओगी। तुम्हारी तकलीफ़ के

भव अधिक दिन नहीं है।

रिवूची प्याले में पानी भरकर उसके पास ले गया बोला— "लो पानी पी लो।"

"नहीं!" बीमार ने अपने निश्चय में बदलकर कहा— "नहीं पानी नहीं पिऊँगी। दवा पिऊँगी।"

रिवूची ने पूछा—"कौन-सी दवा पियोगी?

वह नाराज हो गई मुँह फिराकर सो गई।

कमलन बोला— अभी दवा तैयार नहीं हुई। कल आँच पर रखेंगे। तीन चार दिन में भस्म बनेगी। फिर कुछ और दवाओं के साथ घोटकर इसमें मेल किए जाएँगे। अगले सप्ताह तक पहली खुराक दे सकेंगे तुम्हें जरूर।"

"इस बीच में यदि मर गई तो?"

रिवूची धीरे-धीरे बोला— भगवान् की कृपा होगी पाप कट जायगा।

कमलन ने कहा— "नहीं कुछ नहीं होगा घबराओ नहीं।"

बीमार ने छाती पर के उस तावीज को उठाया। उसमें बनी हुई छोम्मा की मूर्ति को सिर-माथे से लगाया और उसके पैरों का चुंबन किया।

कमलन और रिवूची ने बीमार के पास से कुछ दूर पर जाकर गोष्ठी की। उन दोनों के मुखों पर चिन्ता की छाया थी और वाणी में कंपन और मंद्रता।

कमलन बोला— "दवा बनाने में शीघ्रता करनी चाहिए। कैसे हो?

"अभी कच्चे सुलगा दें। उनके बीच में हाँडी रख दीजिए। सूख भी जाएगी और फुँक भी जाएगी साथ-ही-साथ।"

"ऐसा विधान तो नहीं है।

"आवश्यकता और सुभीते के अनुसार विधान में बदलाव किया जा

'एक असम्भव बात है यह।'

'संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है।

"कई सौ वर्षों में यह छूट सकेगा।"

'सच्ची लगन होने पर समय मनुष्य की दासता स्वीकार करने लगता है और देवता उसकी सहायता को दौड़ चले आते हैं।"

कमलनयन मित्र बड़ी देर में तुमने मुझे यह बात बताई।"

चरवाहा धीरे-धीरे आँगन खोदकर बाहर मिट्टी का ढेर लगाता जा रहा था। उसके मन में से उन हँड़िया के भीतर की दवा के बारे में किया गया निश्चय अभी तक जमा ही हुआ था। उस अपमान को तब तक भूल जाने की वह कसम खा चुका था जब तक उसके भीतर की वस्तु की उसे पूरी पूरी जानकारी न हो जाय। बीच-बीच में धूप में सूखती हुई उस हाँडी की ओर वह देखता जा रहा था।

कमलनयन ने रिखबी से कहा—'हर बात संयोग से होती है तुम ज्योतिषी हो ग्रहों के योग को जानते हो। उसको जो टाल देने की चेष्टा है वह किसी ग्रह को उसकी राह से हटा देने की कोशिश के समान कठिन नहीं है क्या?"

रिखबी कुछ घबराकर बोला— जरूर ऐसी ही बात है। लेकिन इस समय तुम्हारा यह कहने से क्या मतलब है?

"मेरा मतलब है रिखबी तुम्हारी औरत को बचना होगा तभी तो ये मूंगा-मोती कितनी आसानी से उपलब्ध हो गए और इनको फूंककर दवा बनाने का भी योग आ गया। और अगर उसे बचना नहीं होगा तो इस दवा का अमृत बनाकर भी हम उसे जीवित नहीं रख सकते।

"तुम न जाने क्यों बड़ी बेसुरी बातें करने लगे?"

साधारणतः हमारे भीतर से ध्वनि बनकर आ जाता है। तुम कैसे ज्योतिषी हो? क्या सूर्य की चाल में भी रात नहीं है और चन्द्रमा के पथ में भी कृष्ण पक्ष नहीं?" कमलनयन ने हाँडी की छाया भरी दिशा को सूर्य के प्रकाश की ओर घुमा दिया।

रिखबी को कमलनयन की यह विचारधारा पसन्द नहीं हुई। वह दोपहर के पास चले जाने का बहाना बनाकर भीतर को दौड़ गया।

१०

चरवाहे की नजर

गुस्सा तो क्षण भर में ही बुझकर तैयार हो गया था। लेकिन जनजन की हाँडी शाम तक भी नहीं सूख सकी थी। वह दूसरे दिन के लिए टालने की बात सोच रहा था।

रिंकूजी बोला— भाई मैंने अभी देखी है। सूर्यास्त के बाद बहुत अच्छी घड़ी है। मेरी समझ में आज ही रख दो इस हाँडी को अग्नि देवता की गोद में।

जनजन राजी हो गया— 'अच्छी बात है जहाँ तक रखा का सम्बन्ध है मैं जो कुछ भी कहूँ लेकिन जब घड़ी और लगन का विषय है तो मुझे तुम्हारी ही बात मान्य है। आज ही सही। हाँडी करीब-करीब सूख तो गई ही है। जो कुछ कसर शेष है अंगारों पर ही निकल जायेगी।

रिंकूजी ने कहा—"बताओ फिर क्या करें ?"

जनजन—"करना ही क्या है ? भट्टी के नीचे कुछ कंडे बिछेंगे बीच में हाँडी रख फिर बाकी ऊपर से रखे जाएँगे। चरवाहे को भुला दिया जाय।"

रिंकूजी—"रहने दो उसे। एक तो कीमती रखा है मालूम नहीं किसके मन में कहाँ पर पाप छिपा है ? बताओ मैं चुन कर देता हूँ।

रिंकूजी कंडों के ढेर में से कंडे उठा उठाकर भट्टी में डालने लगा। जनजन उन्हें भट्टी में सँजो-सँजोकर जमाने लगा। अचानक रिंकूजी को कुछ याद आया और उसने आँगन का दरवाजा बन्द कर उस पर साँकल चढ़ा दी।

बीच में हाँडी रखकर उसको ऊपर तक कंडे चिनकर ढक ^

गया। सूर्य अस्ताचलगामी हो गए थे। दोनों सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।

रिचुकी बोला—"क्या यह जरूरी है कि हम दोनों रात भर यहीं रहें। द्वार बन्द है ही। फिर किसे मालूम है इसमें क्या है? और कोई आग में हाथ क्यों दे?"

"चौकसी के लिए तो नहीं लेकिन रात भर यहाँ पर आगी घुमाई जायगी मन्त्रों के साथ कि पापात्माएँ आकर हमारी रक्षा को खराब न कर दें।"

"ऊपर से पाला गिरेगा। ऊपर मकान की खिड़की पर से भी तो यहीं पर नजर पड़ती रहेगी।"

"नहीं, यहीं नीचे ही ठीक है। कनटोप से सिर और कान तक ढँका ओढ़कर एक कम्बल नीचे बिछा लूँगा। सामने इतनी प्रचण्ड आग! कैसा पाला? कैसा जाड़ा?" कलजम ने आकाश की ओर देखकर पूछा—"अभी और कितनी देर है?"

"देर सूर्यदेव की ही है हमारे तो सब कुछ तैयार है। इधर यह भट्ठी खुद गई है और उधर आग सुलग रही है। जरा यह मकान की छत पर की धूप ओझल हो जाय तब तक मैं तुम्हारी आगी और कम्बल ला देता हूँ। अगर बीमार की उलझन न होती तो तुम्हारे साथ मैं भी यहीं बैठा-बैठा रात-भर मन्त्र घुमाता रहता।"—कहकर रिचुकी घर के भीतर चला गया।

वह दबे पैर कमरे में गया। बहुत धीरे से जब वह एक कम्बल उठा रहा था तभी उसकी स्त्री ने बड़ी करुणा भरी आवाज से पुकारा—"कौन?"

"मैं हूँ रिचुकी!"—उसने उत्तर दिया।

"मेरे पास बैठो।"

"तुम्हारे पास अभी कैसे बैठूँ?"—वह कलजम की आगी उठाकर बाहर को जाने लगा।

"मेरी तबीयत बहुत घबराती है।"

"किसी तरह उस पर काबू करो। तुम्हारे ही लिए तो यह सब उपाय हो रहा है। दवा बनाई जा रही है।"

"आज रात पहले तो दवा कब तक दिया।

"समय ढूँढकर आज वह निकाला है। फल कैसे बनाऊँ ?

"मेरा दम घटा जा रहा है। मेरे पास आकर बैठते क्यों नहीं तुम ?" —फिर उसने कहा।

"तुम तो रोज ही ऐसा कहती हो। मैं कुछ जरूरी काम करने के बाद आऊँगा।"—रिखूजी कंबल और थाली लेकर बाहर को जाने लगा।

बीमार ने फिर गिड़गिड़ाकर कहा— "हकीम जी कहाँ हैं ?

"तुम्हारे लिए ही दवा बना रहे हैं।

"उन्हें बुला दो जरा देर के लिए।

"वह नहीं आ सकते। मैं आता हूँ अभी।"—रिखूजी बाहर चला गया।

उसने भट्ठी के पास कुल्हा ले जाकर बिछा दिया और बोला—"लो अब तुम यहीं पर जमकर बैठ जाओ। जो कुछ करना-धरना होगा सब तौड़-भाग मैं ही करूँगा। यह तुम्हारी थाली है।"

कलवन थाली लेकर घुमाने लगा और अपना मन्त्र जपने लगा।

रिखूजी के मुख में कुछ टूटी हुई भावना को देखकर कलवन ने पूछा—"क्यों कुछ अन्यमनस्कता कैसी हो गई अभी-अभी ?

"कुछ नहीं यह थाली ही मेरी बरबादी का कारण हुई कलवन। इसने कभी मुझे चैन से नहीं रहने दिया।

"क्या बात हो गई ?"

"जिसी के लिए इतनी कठिनाई में यह दवा बनाने की तैयारी कर रहे हैं और वह कुलक्षणी ऐन मौके पर चीख रही है।"

बीमारी के समय उसका दिमाग कमजोर हो गया भाई।"

"वह जब अच्छी थी तब भी ऐसी ही थी।

"सुख भावना ही का खेल है।" जवाहर ने कहा—"भावना मत बिगाड़ो भाई।"

"जवाहर, एक बात समझ में आती है। अभी आग नहीं बी है इसमें अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

"तुम ज्यादा तक पीकर तो नहीं आ गए यार। तुम्हारा मतलब क्या है?

"मैं कहता हूँ हीरियाँ निकाल लो।

"क्यों?

"वह अच्छी होने वाली नहीं। मनुष्य विश्वास से अच्छा होता है उसके पास मैं मैंने कभी किसी प्रकार का विश्वास नहीं पाया। निका लो कहता हूँ हीरो निकालो। अकारण ही इन जवाहरात की राख न क्या फायदा?"

"मेरी स्त्री मर चुकी और मैं फिर किसी स्त्री से प्रेम नहीं का चाहता तब किसके लिए इन जवाहरों को बचाऊँ?

किसी को दान कर दो। लोभ से दान की बहुत बड़ी महिमा है।

बहुत ठीक कहा तुमने। ऐसे हम हाड़ चाम की भूख प्यास मे हमारी आत्मा की कामना बहुत बड़ी है। किसी के शरीर पर आभूषण पहनाकर हम उसके झूठ अभिमान को बढ़ाते हैं और किसी को आत्मा का भोजन देकर हम उसके भीतर प्रकाश की आँखें खोलते हैं। रोग क्या है? वह सूक्ष्म और स्थूल की संधि पर उपजी हुई एक गाँठ है। मन और देह की एक जड़ता है। नहीं आभूषणों के रूप में मैं किसी को न दूँगा ये मोती और मूँगे। अगर किसी को देना ही हुआ तो क्यों तुम्हारी स्त्री के गले से उतार लाता? मैं उसका रोग दूर करने के लिए इनसे दवा बना रहा हूँ।"

"वह न होगी अच्छी।"

"ऐसा क्या या प्रयोग किए तुम ज्योतिष से बता रहे हो क्या? [illegible] भीतर की चोट काम और मन देकर वहाँ पर बैठा था

अचानक चौंककर उठा— 'वही है फिर चिल्लाने लगी।"

कमजम कहने लगा—"रिकूची मैं अपने तमाम कर्त्तव्य कर चुका हूँ। यह भट्टी अब सिर्फ आप की ही प्रतीक्षा में है। तुम ठीक समय पर आग दे जाना इसमें। मुझे अब इस आसन से नहीं उठना होगा।"

रिकूची दौड़कर भीतर चला गया।

"मैं कितना चिल्लाई। तुमने मेरी कोई भी आवाज नहीं सुनी' —उसकी स्त्री बोली।

रिकूची ने देखा उसका मुख बिलकुल पीला पड़ गया था लेकिन आवाज में वही कर्कशता और वही बर्बरता थी। उसने पूछा— 'क्या बात है ?"

अभी मौत के राजा के दो सिपाही आए थे। इस समय में तुम कहाँ चले जाते हो ? अभी अगर वे मुझे पकड़ ले गए होते तो फिर तुम्हारी दवा लाने के लिए कौन बचा रहता ?"

रिकूची ने निश्चय किया—यह जरूर प्रलाप में बक रही है। उसकी दोनों आँखें बिलकुल खुली होश पर भी रिकूची ने उस झकझोरते हुए कहा – 'उठो उठो क्या तुम सपना देख रही हो ?"

"जब वे मुझे घसीट ले जायेंगे तभी करोगे तुम विश्वास। नहीं मैं कहीं न जाने दूँगी अब तुम्हें।" बीमार ने रिकूची के लबादे की ढीली बाँह पकड़ ली बड़ी घृणा से और बोली—"आज की रात अब तुम्हें यहीं मेरे सिरहाने बैठकर बितानी होगी।"

रिकूची कठपुतली की तरह उसके सिरहाने बैठ गया। उसने उसकी जकड़ से अपनी बाँह छुड़ाने की कोई कोशिश नहीं की। कुछ देर बाद जब बीमार की आँख लगने लगी तो उसका हाथ ढीला पड़ गया और रिकूची की बाँह स्वयं ही छूट गई।

उसकी साँस में एक अजीब स्वर पैदा होने लगा था। रिकूची ने घबराकर उसके मस्तक पर हाथ रखकर उसे पुकारा—"तुम्हें नींद आ रही है क्या ?"

कलजम ने रिबूची से पूछा—"दूध है ?"

"होगा थोड़ा-सा ।" —वह एक प्याले में ले आया ।

कलजम ने जबर्दस्ती बीमार के मना करने पर भी उसके गले में थोड़ा-सा दूध डाल दिया । उसके पी चुकने पर उसने पूछा—"क्यों कैसी है तबीयत ?"

बीमार ने कुछ कहा लेकिन वह इतना अस्पष्ट और विकृत था कि किसी की समझ में नहीं आया । हाँ उसके मुख की भाव भंगी से ऐसा जान पड़ा पीड़ा खतम हो गया और अब वह ठीक है ।

रिबूची ने पूछा—"इसकी जबान बिलकुल बन्द हो गई कहीं इस पर लकवा तो नहीं पड़ गया ?"

"कुछ दिन बाद पता चलेगा ।"

दोनों कुछ देर चुप रहकर बीमार को देखते रहे । उसके बाद रिबूची ने पूछा—"कोई दवा तो नहीं दोगे ?"

"क्या बताऊँ ?" —कलजम सिर झुकाकर सोचने लगा ।

"बाजार से लाने की हो तो मैं ले आऊँगा ।"

"बाजार की दवा से क्या होगा ? दवा बन रही है । लेकिन इसने तो अचानक ऐसा रुख ले लिया ।"

"मैं समझता हूँ यह खतरा इसने पार कर लिया ।"

"दूसरे झटके का डर है मुझे ।"

"अब आज रात इसे कुछ न होगा ।"

"कैसे कहते हो ?"

"बीमार की धड़कन और चेष्टाओं से ।"

"अगर दो-तीन दिन इसे कुछ नहीं होता है तो फिर तो हमारी दवा तैयार हो जायगी रिबूची । और हम जी-जान से एक बार फिर इसे बचाने की कोशिश करेंगे । आशा बहुत-कुछ है ।"

"तुम जाओ फिर वही आसन बाँधकर बैठो । आग सुलग गई होगी ?"

"बाकर" कमजन एक बार फिर बीमार की तरफ बढ़ा । उसने उसकी नाड़ी पर हाथ रखकर कहा— 'नाड़ी कमजोर नहीं है ।"

बीमार ने अपना हाथ हटाकर इशारा किया कमजन से बसे बाने था । रिचुकी बोला— "वह तुमसे जाओ कह रही है ।

कमजन ने जाने से पहले बीमार को आश्वासन दिया— "मैं दवा बनाने जा रहा हूँ । अब तुम्हें कष्ट न होगा ।

बीमार ने फिर कुछ उसी अस्पष्ट उच्चारण में पूछा । कमजन ने ने कुछ समझा उसके उत्तर में कहा— "बस अब आएगी दवा दो-तीन न में ।

बीमार के मुख पर बड़ी उलझन प्रकट हुई । उसने फिर अपना मतलब जाहिर करने के लिए कुछ कहा कुछ इशारा किया । कोई नहीं समझा ।

रिचुकी बोला— शायद इसका मतलब नहीं है तुम बाहर जाम दवा में अपना मन लगाओ ।"

कमजन बाहर को चला गया । चरवाहा आँगन में पड़ी हुई एम धूप को पका बनाकर भट्टी में हवा कर रहा था । भट्टी अच्छी प्रकार सुलग उठी थी । कमजन ने यह देखकर उससे कहा— 'शाबाश भाई, तुमने तो पूरा काम कर दिया बस अब रहने दो । तुम जा सकते हो ।

लेकिन चरवाहा आग सेंकते हुए बोला— 'कैसी है उसकी तबीयत ?

"ठीक है । बहुत पुरानी बीमारी हालत नाजुक ही है ।"

"मैं भी देख आऊँ ऊपर जाकर ?"

"नहीं बीमार की बेचैनी बढ़ जाएगी । तुम घर को जाओ ।"

लेकिन चरवाहा अपनी प्रमाणिकता दिखाने के लिए वहीं पर कुछ देर और जमा रहना चाहता था । कहने लगा— जाड़े के दिनों में घाम के पास बैठकर फिर वहाँ से उठने को किसका मन करता है ? बरा हाथ-पैर सेंक लेता हूँ ।" चरवाहा सोच रहा था कुछ और भी

हां खाना तो उसके आने में अधिक आसानी होगी।

कसजन बोला—"क्या सोचते हो ? घर जाते-जाते फिर ठण्डे हो खामोश।"

चरवाहे ने कहा—"ठीक कहते हो हकीम जी खाना खाकर फिर भूख लग जाती है। सब लोग इस बात को जानकर भी तो खाना खाते ही हैं।"

"मैं तो आज खाना भी नहीं खाऊंगा। यहां पर आसन बोलकर मुझे पूजा करनी है। तुम जाओ तो मैं यह दरवाजा बन्द कर दूं।"—कसजन ने कहा।

चरवाहा अपना लबादा झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने आकाश की ओर देखा सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी धरती पर। वह कण्डों के ढेर की तरफ देखता हुआ कसजन से बोला—"कण्डे तो तुम्हारे सब अभी खतम हो गए हैं। और दे जाऊं ?"

"अभी काफी हैं।

"ये तो रात भर में सब जल जाएंगे। सुबह जरूरत पड़ेगी अभी कह दो। अगर सुबह तुम्हारा जवाब देर में आया तो मालूम नहीं मैं घर पर मिलूं या नहीं ?"

कसजन ने कुछ सोच कर जवाब दिया—"सुबह दे जाना।"

चरवाहे ने बाहर को जाते-जाते फिर लौटकर पूछा—"कितने बोझ ?"

"यही एक-दो और कितने ?"

चरवाहा आंगन के बाहर चल दिया। कसजन ने द्वार बन्द कर उस पर सांकल चढ़ा दी।

अन्धकार बहुत घना तो हुआ नहीं था। बाहर निकल कर चरवाहा सोचने लगा—एक चक्कर घर का लगाकर आऊंगा। तब तक अंधेरा अच्छी तरह हो जाएगा। फिर उसके मन में दूसरा विचार लहराया—"कौन देख रहा है मुझे ? देखने दो क्या मैं चोरी कर रहा हूं ? मेरी

हँसी उड़ाई है उसने। इसी लिए मैं देखना चाहता हूँ इस हाँडी में क्या है ? फिर जब कभी दूसरी बार वह मेरी हँसी उड़ाएगा तो मैं बता दूँगा हाँडी में कौन-सी बला थी।

जब उसके मन में चोरी की भावना के स्थान में प्रतिहिंसा का विचार जम गया तो उसके हाथ-पैर अधिक स्थिर हो गए। उसे फिर लोगों का कोई डर नहीं रहा। वह बड़ी लापरवाही के साथ उस विष्णु की मूर्ति की तरफ बढ़ा। परम निर्भयता से उसने छिपी हुई हाँडी को वहाँ से निकाला और अपने कुर्ता के भीतर डालकर घर को चला।

घर पहुँचकर उसने अपनी स्त्री से कहा—'जल्दी से एक दिया तो जलाकर ले आ।"

स्त्री दिया जलाकर ले आई। पति के हाथ में एक अजीब चीज देखकर पूछने लगी—'यह क्या है ?

"खुल जाने पर पता लगेगा। मिल गया मुझे एक जगह।

स्त्री उसके हाथ से उसे छीनती हुई बोली—"हैं ! हैं ! किसी ने कोई जादू कर फेंक रखा होगा। रख आओ इसे जहाँ से लाए हो। नहीं मैं इसे अपने घर के भीतर नहीं खोलने दूँगी।"

'पागल हो गई हो क्या ?" चरवाहे ने उसके हाथ से हाँडी छीन ली—'क्या है इसमें जरा।" उसने हाँडी में लिपटा हुआ कपड़ा खींच लिया। उसका एक पल्ला निकल आया और भी सब। दोनों हाँडियाँ नंगी हो गई। मिट्टी से उनका मुँह जम गया था। चरवाहे ने जोर लगाकर दोनों हाँडियाँ अलग कर दीं। छनक से मूँगे और मोती धरती पर बिखर गए। घी के दीपक के मन्द प्रकाश में वे उनके जवाहर प्रकाश के पुँजों को प्रतिफलित कर उस गरीब चरवाहे के घर में महालक्ष्मी के पताकों की तरह फैल गए।

चरवाहा घबराकर उन्हें बीनता हुआ बोला— अरे ये तो मूँगे और मोती हैं !

"तुम ही कहते थे क्या है।"

"मुझे क्या मालूम ? अन्दाज लगाया था मैंने ।"

"यह जरूर जादू है । किसी ने हमें फँसाने के लिए चाल चली है । फेंक आयो वहीं से लाए हो जहाँ ।" —उसकी स्त्री भी उन दानों को बीनने लगी ।

"मूँगे अलग रखो और मोती अलग ।" —चरवाहे ने अपनी स्त्री को आदेश दिया ।

"ये सच्चे हैं क्या ? मुझे तो ये हल्के लग रहे हैं ।" —स्त्री ने पूछा ।

"हाँ-हाँ सच्चे ही हैं इनके ऊपर चमक कौंध रही है उसे नहीं देख रही है तू ? क्यों री ! तू गोबर इकट्ठा कर कण्डे पाथनेवाली तूने कब मूँगे-मोती का भार सँभाला था जो कह रही है ये हल्के लग रहे हैं ? पहन तो नहीं है देखा भी नहीं है क्या ? पिछले नए साल के मेले में मालपन की स्त्री की मोती की लड़ी टूट पड़ी थी । मैंने उस बीन-बीन कर दिए थे । तब की याद है मुझे वे जरूर भारी थे ।"

चरवाहे का माथा चकराने लगा था । उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उन हाँडियों में उतना कीमती माल भरा होगा उसने अपनी स्त्री से कहा— मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आता है जो इतनी कीमती चीजों को आग में भूनने लगे मानो यह खाने के लिए जौ या गेहूँ थे ।"

स्त्री ने पूछा— "किनकी ?"

चरवाहे के मुख से बात निकल पड़ी थी अब वह उसे छिपाने लगा— कुछ नहीं लाओ तुमने बीन लिए अब एक दाना भी नहीं रहना चाहिए यहाँ । हाँडी को ठीक उसी तरह बन्द कर मैं दे आता हूँ अभी ।"

किसे दे आते हो ?

"मेरा मतलब है वहीं सड़क पर फेंक आता हूँ ।"

"नहीं सड़क पर इतनी कीमती चीज क्यों फेंक आयोगे ? ये जादू के होते तो हमारी नजर के पड़ते ही मिट्टी में मिल जाते । मैं तो इनकी

माथा गूँथ कर पहुँची।"

"हूँ! हूँ! यह क्या कहती है रांड! तू मुझे जेलखाने भिजवाएगी क्या?"

"तब क्या तुम इन्हें कहीं से चुरा कर लाए हो? अपनी औरत से सब बात छिपाते हो तो तुम्हारी मदद कौन करेगा?"

चरवाहे ने बात को विचार की गहराई में डोबा मन ही-मन—"बड़े राजा और मेरी हड्डी में कोई फ़र्क नहीं ऐसे ही मूँगे-मोती की राख और चमरी के गोबर की राख में भी कोई भेद नहीं। इन जवाहरों को फिर हांडी में भरकर नए भट्टी में छोड़ देना जरूर इनके साथ पागल बन जाना है। नहीं मुझे इन जवाहरों को इस दुर्गति से बचाना होगा।"

दोनों हांडिया में अलग अलग मोती और मूँगे भर दिए गए थे। चरवाहे ने अपनी स्त्री से कहा—"अच्छी बात है, मैं इन जवाहरों की रक्षा करता तो हूँ लेकिन तुम पहन नहीं सकती हो इन्हें। इनको हिफ़ाज़त से रख लेंगे कभी काम आवेंगे। तुम एक कपड़े का टुकड़ा ले आओ।"

उसकी औरत एक कपड़ा ले आई, उसमें रुपा कांसो बँधा था उसे खोलकर उसने पति के सामने रख दिया। चरवाहे ने सब मूँगे और मोती एक ही में मिलाकर उसमें बाँध दिए और उन्हें सावधानी से अपने सिरहाने रख लिया।

इसके बाद उसने कुछ राख कपड़े में छानी और दोनों हांडियों में थोड़ी-थोड़ी भरकर बीच में दोनों दियों का ढकना लगाकर उसी कपड़े से बाँध दिया गीली मिट्टी की सहायता से फिर चूल्हे पर आग के सामने रखकर उसे सुखा लिया।

उसकी स्त्री ने पूछा—"इन हांडियों में राख भर देने से क्या फ़ायदा?"

"अरी बेवकूफ़, राख सब बराबर है आदमी की हड्डी की हो चाहे पीर की हड्डी की या चमरी के गोबर की। सब मिट्टी से निकले हैं, सब

मिट्टी में मिल जानेवाले हैं।

'अब क्या करोगे इसका ?

'जहाँ से लाया हूँ वहीं रख आऊँगा।

'जवाहरात के बदले राख पाकर वह क्या कहेगा ?

'उसका मतलब जवाहरों को राख में बदलना ही है तो फिर कहेगा ही क्या ?

'ऐसा अक्लमन्द कौन है वह ?

'बस यह मत पूछो।

दोनों सो गए। चरवाहा रात-भर यह सपना देखता रहा उन जवाहरात का क्या करेगा और उसकी घरवाली यह कि उनको कैसे पहनेगी वह ?

११

मांस की गंध

दूसरे दिन सुबह होते ही चरवाहे को कुछ भी नहीं सूझा। उसने सबसे पहले उठकर टोकरा उठाया और उसमें हांडी को रखा और ऊपर से भर दिए कपड़े।

उसकी स्त्री बोली—"मुंह जूठा किए बिना ही कहां को चल दिए तुम?"

"फिर देर हो जायगी। तुम चाय बनाकर रखो मैं अभी आता हूं।"—चरवाहे ने टोकरे की तरफ इशारा कर पत्नी से कहा—"जरा हाथ लगाकर यह टोकरा मेरे सिर पर रख दो।"

अभी घुपघुप अंधेरा ही था। चरवाहा टोकरी सिर पर रखकर भागा रिठूपी के घर को आधे घण्टे से अधिक का रास्ता नहीं था। आंगन का द्वार भड़भड़ाकर वह बोला—"दरवाजा खोलो।"

कसमन माला घुमाता हुआ ऊंघ रहा था। चरवाहे की आवाज सुनकर जोर-जोर से मंत्र जपता हुआ उठा—"तुमने तो सुबह भी नहीं होने दी भाई।" उसने द्वार खोल दिए।

चरवाहा आंगन में घुसते हुए बोला—"काम मुझे कांटे की तरह चुभने लगता है। जब तक उसे पूरा नहीं कर लेता मुझे चैन नहीं पड़ता।"

"मैं जरा लघुशंका के लिए बाहर हो आता हूं।"—कहता हुआ कसमन खेतों की तरफ चला गया।

चरवाहे को और भी सुभीते से बन आई। उसने टोकरा नीचे ही उलट दिया और हांडी को एक लकड़ी की मदद से भट्टी के दबा दिया।

कल्लन थाम कर बोला—"हूँ! तुमने तो तमाम कच्चे भट्टी में ही डाल दिए।"

"अभी एक रात में कहीं क्या फुकती है? अभी तो कम-से-कम आठ-दस बोझ कण्डों के और पड़ेंगे।

कल्लन मन में सोचने लगा—'बात झूठी नहीं कहता यह। बड़ी बूटी तो है नहीं कोई कि गरम हुई और रात में टूट गई। मुँहा और मोटी है। अभी तो मुश्किल से बाहर की उसकी खाल भी गरम नहीं हुई होगी।

'तुमने तो सब कच्चे खतम कर दिए रात ही में।

'बाबा को भी फुकना था और मुझे भी तो सिकना था। —कल्लन फिर अपने आसन में बैठकर माला घुमाने लगा।

चरवाहे ने बड़े आश्चर्य का नाट्य करते हुए पूछा—'रात-भर ऐसे ही बैठे रहे तुम सब जागते हुए?

"हाँ ऐसे ही।"

मैं तो तुमको एक हकीम ही समझे हुए था तुम तो एक सिद्ध पुरुष भी जान पड़ते हो।

"मिठाई तब जान पड़े जब बिचारे रिमूजी की औरत की जान बच जाय।"

'रात में कैसी रही उसकी तबीयत?"

"रात में तो फिर और कोई दौरा आया नहीं। इस समय तो उसकी आँख लग गई है। रखो भगवान् की इच्छा।"

चरवाहा टोकरा उठाकर बोला—"घर जाकर कुछ खाऊँगा-पिऊँगा। उसके बाद फौरन ही एक टोकरा आग लाऊँगा।"

कल्लन ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छी बात है।

"तुम्हारा दोस्त यह ज्योतिषी बड़ी अच्छी आदतों का है। आज दिन-भर के टोकरों को अच्छी तरह तुम गिनते रहना। मेरे कहे की कोई परतीत न होगी उसको। एक-आध टोकरी भी भूली जाएगी तो

वह गरीब मर जायगा।"—चरवाहा चला गया।

कलजन ने दरवाजा बन्द कर लिया और फिर भजन-पाठ में लग गया। अब खूब अच्छी तरह उजाला हो गया था और आस-पास के ऊँचे पर्वतों पर सूर्य की प्राभातिक सुनहरी किरणें जगमगा उठी थीं।

आँख मलते-मलते रिखुवी आ पहुँचा। भट्टी के पास कुछ देर बैठकर उसने आग सेंकी और तम्बाकू पिया। कलजन तम्बाकू पीता-खाता कुछ नहीं था वह सिर्फ सूँघता था।

कलजन ने पूछा—"कैसी हालत है इस समय?"

"वैसी ही आँख बन्द कर धुर्र-धुर्र कर रही है। नींद तो कहा नहीं जा सकता उसे।

"आवाज खुली या नहीं?

"ऊँहुँक!

भट्टी के कण्डों को ठीक करता हुआ कलजन बोला—"यही एक बहुत बुरा लक्षण जान पड़ता है। हाथ-पैर या मुख की शक्ल में तो कोई टेढ़ापन नहीं है?"

"नहीं और तो सब ठीक है।"

"देखो फिर भगवान की क्या इच्छा है।"

"दवा नहीं फुंकी होगी? कण्डे तो सब फूंक दिए तुमने।"

"अभी एक बोझ और फेंक गया है वह। दूसरा लेने गया है।"

"मेरी समझ में तो फुंक गई होगी दवा।"

"जल्दी क्यों मचाते हो कच्ची दवा देने से तो दवा न देना ही अच्छा है। आज रात भर और जलने दो भट्टी को।"

"उसके बहुत दाम हो जायेंगे और वह यहाँ बुरी तरह से तकाजा करता है।"

"इतने मोती और मूंगे फूंक रहे हैं हम। तुम्हें गोबर के फुंक जाने की इतनी फिकर हो गई। अच्छा आदमी है यह चरवाहा उसके दामों की कोई बात नहीं है। सिर्फ ठीक-ठीक गिनती याद रखना उसके बाद

के बोझों की।"

"तुम जाओ भाई।"—कहकर रिखूजी बाहर जंगल की तरफ शौच के लिए चला गया।

शौच से लौटकर रिखूजी भट्टी में से पानी ले जाते हुए बोला—"कल्लन इस समय तो थोड़ा-सा सत्तू लोगे न चाय के साथ?

कल्लन कुछ सोचने लगा।

रिखूजी बोला—"सत्तू और चाय में क्या हानि है? माल चाहे तो न लेना भाई बिना खाए-पिए भी तो मन खाने ही में लग जाएगा मगर नें कहाँ से टिका रहेगा?"

कल्लन ने हल्की मुसकान से अपनी सम्मति जता दी। रिखूजी ने भीतर जाकर एक बार बीमार की ओर देखा और फिर चूल्हा जला चाय बनाने लगा।

दरवाजे से घर आते ही टीकप्पा भूमि पर रख अपने सिरहाने हाथ मारा लेकिन उसके होश उड़ गए जब उसके हाथों में कुछ भी नहीं लगा। उसने पुन्ने की एक तह उठाई दूसरी—नहीं कहीं कुछ नहीं। सिरहाने से पैताने तक उसने दो-तीन बार हाथ मारे, लेकिन कहीं कोर चुम्मता! उसने सारा बिस्तर उधेड़ डाला उसका एक-एक धागा-धागा छान डाला लेकिन नहीं—कहीं कुछ नहीं!

उसकी स्त्री भी वहीं पर आ गई थी चाय बनाना छोड़कर और बड़ी चिन्ता में भरकर वह भी ढूंढने लगी थी।

"तुम कहती हो तुमने हाथ भी नहीं लगाया तो फिर कहाँ गई वह पोटली?"

"भगवान् जानता है जो मैंने उसे छुआ भी हो।"

"इतनी बड़ी सम्पत्ति तुम्हारे घर के भीतर! मैं कहता हूँ तुम ऐसी मोह-माया से दूर संन्यासिनी हो गया कि तुम्हें अब तक उसकी याद ही नहीं आई?"

"तुम्हें ही क्यों न आई सुबह से?"

"क्यों नहीं आई ? रात-भर मैंने उसी के सपने देखे और सुबह उठकर जब मैं गया था तो उसे टटोलकर ही गया था। उजाला हो गया होता तो मैं उसको कोमल सूर्य की रोशनी में उसके दर्शन कर ही जाता।"

'तुम्हें सँभालकर आना था।"—उसकी औरत ने सारे बिस्तर को टटोलकर बड़ी निराशा के स्वर में कहा।

'सँभालता और कहाँ ? ताला और सन्दूक कोई है मेरे पास ? तकिए के ऊपर सिर रखे हुए तो पड़ी थी तू। मैंने समझा था अभी दौड़कर तेरे उठने तक मैं आ ही जाऊँगा। मुझे उस हाँडी को लौटाने की फिकर थी सबसे बड़ी तुझे क्या था ?

'मुझे भी यही फिकर थी मैं समझी थी कहीं पकड़े जाओगे तो क्या होगा ? अगर किसी बड़े आदमी के घर में डाका डालकर आए होगे तो दोनों की गर्दनों में रस्से बाँधकर लहासा की तमाम सड़कों पर घसीट दिया जायगा। —उसकी औरत रोते-रोते बोली।

"तू बड़े चरित्तर जानती है, जरूर तूने कहीं छिपा दिया है उस पोटली को इस डर से कि कहीं कोई हमारे घर की तलाशी लेने न आया हो।"

'नहीं भगवान की सौगन्ध है।

"फिर कहाँ गई मेरी पोटली ?"

"मैं क्या जानूँ ?"

घरवाले ने पागलों की तरह सारा कमरा छान डाला। कहीं कुछ पता नहीं चला। वह हारकर भूमि पर बैठ गया। उसकी पत्नी भी पास ही बैठी रो रही थी। वह क्या करे कुछ समझ में नहीं आई बात।

उसने स्त्री से पूछा— "कोई आया था यहाँ ?"

स्त्री ने जवाब दिया— "नहीं, कोई नहीं।"

"ऐसा हो नहीं सकता जरूर कोई आया होगा।"

'हाड़-चाम का शरीरधारी तो कोई नहीं आया। हवा के रूप में

कोई भूत प्रेत आया हो तो मैं नहीं कह सकती। वह तो जानेवाला जाने। अगर कोई भूत-प्रेत नहीं था तो वे मूँगे-मोती सचमुच में जादू के बने होंगे जो हमें चोर बनाकर मिट्टी में मिला गए।

"अरी वे मूँगे-मोती मिट्टी में मिल गए तो वह कपड़े का टुकड़ा भी क्या जादू का था वह कहाँ समा गया?"—चरवाहे ने पूछा। वह उठकर फिर एक बार गए फिर से ढूँढ मचाने लगा।

औरत की भी कुछ समझ लौटी बोली—'हाँ वह कपड़े का टुकड़ा तो दिखाई देता।

इस बार चरवाहे का विचार स्त्री से मिल गया। वह फिर उन अवधूतों की याद कर रोने लगी। चरवाहे को विश्वास हो गया किसी दैवी कारण से ही मूँगे-मोती अदृश्य हो गए हैं। ज्योतिषी और हकीम की मूर्तियों में उसे भूत-साधकों की परछाईं दिखाई देने लगी।

स्त्री बोली—'मैंने तभी तुमसे कहा था जहाँ से लाए हो वहीं फेंक आओ उन्हें। तुमने नहीं माना अब क्या करूँ मैं? मुझे बड़ा भय लग रहा है।'

स्त्री के गले में किसी देवता का एक ताँबे का कंठा था। उसने उसे निकालकर हाथ में लिया। उसको माथे से लगाया फिर उसने एक जगह पर जमीन को धोया और वहीं उस कंठे को रखकर उस पर पानी चढ़ाया फिर एक जलते हुए कण्डे पर कुछ मक्खन डालकर देवता को धूप सुँघाई, फिर हाथ जोड़ भूमि टेक उसने माथा नवाकर कहा—"हे देवता मेरे मालिक की रक्षा करना मैं तुम्हें बहुत बड़ी पूजा दूँगी।"

चरवाहे के जो भी संशय थे वे सब उड़ गए। उसने अपनी स्त्री से कहा—"मैं कहता हूँ जो जादू मूँगे-मोती को उड़ा सकता है उसका उस कपड़े के चीथड़े को गायब कर देना क्या मुश्किल बात है?"

उसकी स्त्री की पूजा अभी खतम नहीं हुई थी। पति का यह वाक्य सुनकर उसने अपनी प्रार्थना को नहीं तोड़ा और भी जोर-जोर से बोली— अगर कहीं हमारे मूँगे-मोती सब-के-सब मिल गए तो मैं पाचे

तुम्हारी पूजा में निछावर कर दूँगी।" उसने पूजा समाप्त की और लड्डू को थाले में डालते हुए पति की तरफ देखकर पूछने लगी— क्यों ?

"हाँ जरूर तुम ठीक ही कह रही हो।

"और तुम भी तो जो सूई-मोती जैसी कीमती चीजें गायब कर सकता है, उसके लिए एक पीतल को मिटा देना कौन बड़ी बात है ?

"तब क्या करें फिर ?"

"होने ही से तो चीज जाती है। मैं पूछती हूँ तुम उन्हें लाए कहाँ से थे ?

"यह पीछे बता दूँगा। पहले तुम चाय बनाकर लाओ। मुझे ज्योतिषी जी के यहाँ कच्चे लेकर जाना है।"

"ज्योतिषी जी क्या करेंगे इतने कच्चों का ? लेकिन अब कच्चे हैं कहाँ ?"

"दूसरे कोठे में।"

"वे तो कभी के खतम हो गए।"

"तब क्या होगा ? मैंने उनसे वादा किया है।"

"एक टोकरा झाड़-पोंछकर हो जायगा। सुनो जब तुम ज्योतिषी जी के यहाँ जा ही रहे हो तो क्यों न उन्हीं से पता लगवाओ इस मकान के भेद का ?"

चाय पी एक टोकरा कच्चों का किसी तरह पूरा कर बड़े धीमे पगों से चलता हुआ फिर चला भगजन के पास को।

रिखूजी ने चाय बनाई। पहले बीमार के पास ले गया। उसने बीमार को उठाकर चाय पिलानी चाही। बीमार कुछ नहीं बोली केवल सिर हिलाकर उसने असम्मति प्रकट की और फिर आँखें बन्द कर लीं।

रिखूजी चाय लेकर भगजन के पास पहुँचा। दोनों ने साथ साथ सन्ध्या के साथ चाय पी।

भगजन ने बीमार की कुशल पूछी रिखूजी बोला—"चाय पीने को मना कर रही है।"

स्थिरता को ढूँढना मनुष्य की मूर्खता है। मुझे देखो। मेरे हृदय में पत्नी के वियोग की पीड़ा अभी बिलकुल हरी है। मैंने उस पंच भूतों के निर्माण को अपने हाथ से टुकड़े-टुकड़े कर फिर पंच भूतों को ही सौंप दिया। ऐसे ही तो हमारा अहंकार निर्वापित होता है।"

रिपुषी ने कसमसाते हुए कनकन का कन्धा पकड़ लिया—"क्या होगा फिर ?"

"कुछ नहीं होगा केवल जानेवाला जाता है और सृष्टि उसी तरह चलती रहती है।

"नहीं फिर कैसे मन लगेगा संसार में ? मैं भी चल दूंगा।"

"बिना आज्ञा के कोई नहीं जा सकता। संसार में मन नहीं लगेगा तो चल देना किसी मठ में—हिन्दुस्तान में क्या मठों की कमी है ?' कनकन जाते हुए बोला— "अच्छा मैं देखता हूँ दवा को। भगवान् से प्रार्थना करता हूँ किसी प्रकार दवा में असर पैदा कर दे।"

रिपुषी भी उसके साथ-साथ चला। दोनों जब आँगन में आए तो चरवाहा बाहर दरवाजा खटखटा रहा था।

कनकन ने द्वार खोला। कण्डों का टोकरा सिर पर लिए चरवाहे ने आँगन में प्रवेश करते हुए कहा—'गुरुजी कण्डे तो सब खतम हो गए क्या करूँ बड़ी लाचारी है। उसने टोकरा जमीन पर पटक दिया।

"कोई चिन्ता नहीं भगवान् की दया हो गई होगी तो हमारी दवा बन चुकी होगी। कण्डों की कोई जरूरत नहीं है। —कनकन ने कहा।

'तो इन्हें उठा ले जाऊँ ?"—चरवाहे ने पूछा।

रिपुषी बोला— 'जो आ गए सो आ गए। इन्हें हम घर के काम में ले लेंगे।"

चरवाहे ने रिपुषी की ओर देखा और बड़ी दीनता से हाथ जोड़ते हुए कहा—"मेरे ऊपर दया कीजिए।"

रिपुषी ने कहा— 'एक कौड़ी नहीं मारी जायगी तुम्हारी। हाँ हिसाब चुकाने में जरूर कुछ देर होगी ही।"

"हिसाब के लिए नहीं कह रहा हूँ।

फिर ?"

"मेरे घर से एक चीज गायब हो गई। जरा अपनी ज्योतिष विद्या से उसका पता लगा दीजिए उसे कौन ले गया ? वह मुझे मिलेगी या नहीं मिलेगी तो कितने दिन में ?"

रिपूनी बोला— "देखो मेरी स्त्री बहुत बीमार है। इस कारण मेरे मन में जरा भी चैन नहीं है। ये बातें तब मन की शान्ति से होती हैं। उसके आराम का सिलसिला जब जाय तब आना।"

चरवाहा चला गया। कलजन ने एक लकड़ी की मदद से मट्टी में पड़ी हाँडी को टटोलना शुरू किया। रिपूनी पास खड़ा हुआ देख रहा था।

कलजन बोला—"क्या ओटने के लिए है कुछ ?"

रिपूनी कहीं पड़ोस में से एक पत्थर का खरल माँग लाया। उसके आने तक कलजन ने हाँडी को मट्टी के बाहर निकाल लिया था। उसके बाहर की कपड़-मिट्टी पककर लाल हो गई थी। कुछ देर तक हाँडी में से लपटें निकलती रहीं। कलजन ने उसे अपने आसन के सामने ठण्डा होने के लिए रख दिया।

रिपूनी बोला—"अब आँगन में क्या काम है तुम भी भीतर ही चलो। वहीं साथ-साथ बैठे रहेंगे। बीमार को भी कुछ भरोसा प्राप्त होगा।

कलजन ने कहा—"तुम जाओ मैं अभी आता हूँ जरा यह हाँडी ठंडी हो जाय।"

रिपूनी के जाने पर कलजन की अधीरता बढ़ी। उसने लकड़ी की मदद से धीरे-धीरे उस हाँडी को फटबॉल-सा सारे आँगन में घुमाना शुरू किया। कुछ देर में उसके बाहर की मिट्टी और कपड़ का बहुत-सा अंश टूट-टूटकर अलग हो गया। हाँडियाँ भी शीतल हो गईं।

बड़े यत्न से उसने अपने आसन पर ले जाकर दोनों हाँडियों को खोला। खोलने पर जो देखा उसे देखकर कुछ देर के लिए तो वह स्तंभित

ता रह गया। इतनी महीन भस्म तो पहले कभी नहीं हुई थी मूँगे और मोती की। उसने उस भस्मा को उँगलियों में लेकर मसला। वह मन ही-मन कहने लगा—"बहुत महीन इन्हें लाभ करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। क्या इनमें परमो काफी पहुँच गई इस कारण ऐसा हो गया?

जिस पुण्यात्मा के हाथ पर उसका उत्तरदायित्व था वहाँ तक कमजन की कल्पना पहुँच ही नहीं सकी। उसने एक कण मूँगे के भस्म का अपनी जीभ पर रखा फिर मोती के भस्म का और अन्त में उसने कण्ड की भस्म को चखा। वह उन तीनों के बीच में कोई अन्तर स्थापित नहीं कर सका।

हठात् उसके मुँह से निकल पड़ा—'मोती राजा की हड्डी और चँवर नाम के गोबर की भस्म इन तीनों में कोई अन्तर नहीं है।' और फिर उसके मन की आँखों में दिखाई देने लगा उस अद्भुत वाक्य का कहनेवाला वह चरवाहा था या रिखूची की स्त्री?

कमजन ने बेचैनी से इधर-उधर देखा— जब सभी भस्म एक है तो फिर क्यों मैंने मोती-मूँगे के भस्म को विशेषता दी? घूरे की राख की ही पुड़ियें में बाँधकर क्यों नहीं बीमार को खिला दी?

कमजन ने देखा बड़े प्रचण्ड वेग से भ्रम उसकी आत्मा को दबोचने लगा था। उसने चारों दिशाओं में थूक दिया—"थू! थू! थू! थू!" इसके बाद उसने खाली हाथ में लेकर पुआली भूक कर दी।

रिखूची ने घर के भीतर से आवाज दी—"कमजन आ जाओ भीतर ही।"

कमजन ने सहमकर मामी की बात रोक दी—"अभी आता हूँ।"

"यहाँ क्या कर रहे हो? यह यहीं कर सकते हो। भट्टी में भट्टी काम हो।"

"कहीं कुछ। पाप की एक आत्मा यहीं चली आई है उसे भगा रहा है।"—कमजन ने सँभलकर कहा।

"क्या फिर भट्टी में डाल दी गया ?"

"नहीं तो।"

"तब उस पापात्मा को डाल दो भट्टी में। ऊपर से मिट्टी भरो। अब वहाँ खाली समय बरबाद मत करो। यहीं आ जाओ।"

अभी आता हूँ। बीमार की तबीयत कैसी है ?

ठीक है। सो रही है।"

कलजल ने भट्टी की निकली हुई मिट्टी भट्टी में डालनी शुरू की दोनों हाथों से। वह मन-ही-मन मन्त्र जपता हुआ उस पापात्मा को आग की भट्टी में गाड़ने लगा। हाथ-पैरों के हिलाने डुलाने और मन्त्रों के उच्चारण से थोड़ी ही देर में उसके मन की वह विचारधारा बदल गई। उसने दोनों हाँडियों को दो दियों से ढक दिया। वे दोनों धीरे-धीरे ठंडी हो गई थीं।

कलजल ने कम्बल झाड़कर कन्धे पर डाल लिया छुरा के भीतर डाल ली माली। दोनों हाँडियों और आग को सावधानी से दोनों हाथों में लेकर मकान के भीतर चला गया।

रिठूजी बोला—"तुमने हाँडियाँ खोलकर देख लीं क्या ठीक-ठीक पक गई ?"

कलजल ने जवाब दिया—"बिलकुल ठीक ऐसी आशा नहीं थी।"

रिठूजी ने पूछा—"भस्म तैयार हो जायगी ? जल्दी ही दी जाती तो ठीक था।"

"अभी दोनों को खोटकर दोनों का शोध करता हूँ। तुम तब तक कुछ दूध पिलाओ इसे।"

"अभी पूछा था मैंने। दूध पीने को राजी नहीं है।"

"चाय के लिए पूछो।"—कलजल मन्त्र जपता हुआ मूँगे की भस्म को खरल में घोटने लगा।

रिठूजी ने बीमार को उठाया—"उठ।"

बीमार ने आँखें खोलीं। बड़ी विरक्ति दिखाकर फिर बन्द कर

थी। रिछूनी ने फिर उसे उठाकर कहा—'तुम्हारी दवा तैयार हो गई है।"

"हूँ।"—बीमार ने दवा के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया।

'दवा खाली पेट खाई नहीं जायेगी। कुछ दूध या चाय पी लो।

हूँ।"—फिर उसने असम्मति प्रकट की।

कलजन उठा। उसने अपने व्यक्तित्व का उपयोग करना चाहा। वह बरतन हाथ में लेकर उसके पास गया। बोला—"दवा बन गई कुछ चाय पी लो तो दवा दे दी जाय।

उसके तब भी दवा के प्रति कोई अनुरक्ति नहीं उपजी।

कलजन ने कहा—"इसकी आवाज फिर बन्द हो गई यह भारी चिन्ता की बात है। वह बैठकर दवा घोटने लगा।

चरवाहे ने घर पहुँचकर अपनी स्त्री से पूछा—"क्यों लगा कुछ पता उस पोटली का ?"

उसकी औरत बोली—"और मैं कुछ नहीं जानती यह देखो।" यह कहकर उसने एक मोती का दाना उसकी हथेली पर रख दिया।

'यह पक्का उसी में का मोती है मैं इसके पानी को खूब अच्छी तरह पहचान रहा हूँ। बाकी कहाँ हैं जल्दी बताओ।"—चरवाहे की भौंहें तन गईं।

वह भी रोष में भर उठी—"मैं क्या जानूँ कहाँ हैं एक का पता लगा लाई यही क्या कम है ? तुम लड़-भिड़कर लगा लो बाकी का पता।"

चरवाहा कुछ शांति से बोला—"यह कहाँ मिला तुम्हें ?"

"तुम्हारे जाने के बाद जब मैं गोबर फेंकने को जा रही थी तो यह रास्ते में मिला मुझे।

"किस रास्ते में ?"—बड़ी उतावली से उसने पूछा।

"हमारे मकान के पिछवाड़े जो चमार रहता है उसके दरवाजे के पास।"

"मैं उस मनुष्य को जानता हूँ वह नम्बरी बदमाश है। जरूर वही चुरा ले गया।" चरवाहा तेज़ी से उसके घर की ओर जाने लगा—"मैं अभी उसके घर में घुसकर अपना माल निकाल लाता हूँ।"

उसकी औरत ने उसका हाथ पकड़ लिया—"ठहरो ठहरो बिना सोचे-समझे कहाँ जाते हो?"

"उसके दरवाज़े के पास एक दाना पड़ा मिला! वही ले गया मैं पहचानता हूँ उसे।"

"तुम्हारे ले जाने के लिए उसने सामने मोती रख दिए होंगे?

चरवाहा कुछ सहमकर सोचने लगा—तुरन्त ही बोला—"लेकिन वह डाकू किस समय ले गया?"

"मैं क्या जानूँ?"

"तुझे जरूर मालूम है। बिना तेरे साथ मेल-जोल बढ़ाए वह बेईमान मेरे सिरहाने से मेरी पोटली ले कैसे जा सकता है?"

"यह तो मैं बता सकती हूँ तुम्हें। मेरा भगवान् मेरे भीतर से मुझसे कह रहा है वह पोटली उसी के हाथ लग गई है। लेकिन कैसे तुम उससे मांगोगे और क्यों वह तुम्हें देने लगा?

"पहले बता वह कैसे ले गया? फिर मैं उसके सिर के दो टुकड़े कर दे मारूँगा अपनी जान।"

"तुम क्या कहोगे उससे?"

"कहूँगा—ला मेरे मूँगे-मोती की पोटली।"

"सुननेवाले इस बात पर विश्वास कर लेंगे? एक गरीब चरवाहे के पास कहाँ से आए मूँगे-मोती?"

"तो बताती क्यों नहीं कब ले गया वह? अब तेरा उससे झगड़ा हो गया इसी से उसका भण्डा फोड़ती है।" चरवाहा उसकी चोटी पकड़ने को बढ़ा—"बता!"

"बताती हूँ। तुमने मांस के कपड़े में मूँगे-मोती बाँध लिये। उसकी बिल्ली बराबर हमारे घर आती है। शिकार की गंध पाकर जरूर वह

किसी समय उस पोटली को उठा ले गई रात में।

चरवाहे को कुछ विश्वास हुआ—उसने उसकी चोटी छोड़ दी—"तुम ठीक कहती हो। मैं जाता हूँ उसके पास।

"लेकिन तेजी से काम न लेना। चुप्पी से काम थोड़ा-बहुत हिस्सा भी करना पड़े तो घबराना नहीं।

चरवाहा उसी वक्त चमार के घर पहुँचा। चमार उस समय शराब पी रहा था। चरवाहे को देखते ही बोला—"लो तुम भी पियो।

"नहीं इस समय नहीं पिऊँगा। मैं एक जरूरी काम से आया हूँ तुम्हारे पास। मेरी एक पोटली खो गई है तुम्हारी बिल्ली अपने मुँह में दबाकर ले आई है। मुझे दे दो। मेरी नहीं है वह। तुम्हें कुछ इनाम दे दूँगा मैं।

"मेरी बिल्ली को क्या तुमने कोई उठाईगीर समझ रखा है वह ऐसे काम नहीं करती। दूध-मक्खन भले ही चाट जाय वह तुम्हारी पोटली कभी नहीं उठा सकती। था क्या उस पोटली में ?"

धीरे धीरे चरवाहा बोला—"उसमें थे मूँग और मोती सच्चे असली।

चमार हँसते हुए कहने लगा—"तुम मजाक कर रहे हो भला लाए कहाँ से ?

"किसी ने सुनार को देने को मुझे दे रखे थे ?

"नारायन की स्त्री ने ? तुम्हारे-जैसा होशियार आदमी दूसरा नहीं मिला क्या उसे ?

"देखो ज्यादा चतुराई न लेओ। पोटली निकालो मैं बहुत अच्छा हिस्सा उसमें से तुम्हें दे दूँगा।

लेकिन नारायन की स्त्री की बिनती कैसे पूरी होगी ?

चरवाहे ने चिढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया—"निकाल पोटली!

"चोर! चोर!"—चमार ने शोर करना शुरू किया।

चरवाहा चुपचाप उसके घर से बाहर निकलते हुए बोला—"अच्छा

मैं अभी उस पाटली के असली मालिक को बता आता हूँ।"—वह उसी समय सीधा रिबूची के घर को दौड़ा।

फिर रिबूची की स्त्री की तबीयत बराबर गिरती ही गई। कलजन को दवा घोटते हुए दस मिनट भी नहीं बीते होंगे कि बीमार को फिर वही दौरा शुरू हो गया। उसके हाथ-पैर और गरदन ऐंठने लगे।

कलजन ने जल्दी-जल्दी दवा तैयार कर एक खुराक दी। कोई फायदा नहीं हुआ। उसकी हालत बहुत खराब देखकर रिबूची बोला—"कलजन और दो दवा।

"अभी तो दी है।"

"यह वक्त असली है। एक खुराक और दे दो खूब बड़ी दवा न देने का दुख तो न रहेगा।"

कलजन ने दवा दी और थोड़ी देर बाद उसके प्राण-पखेरू अनजान दिशा की तरफ उड़ गए।

रिबूची चिल्ला उठा—"कलजन तुम तो कहते थे दवा अक्सीर है।"

"कोई दवा अक्सीर नहीं है, रिबूची दाना-पानी हो तो पथ ही अक्सीर है।"

रिबूची माथे पर हाथ रखकर बैठ गया बोला—"कलजन भाई अब क्या हो?"

कलजन ने जवाब दिया—"सबसे जरूरी काम तो इस समय इस मिट्टी का अन्तिम-संस्कार है। बाकी फिर जैसे-जैसे समय बीतता जायगा वह अपनी पूर्ति स्वयं ही कराता जायगा।"

इसी समय नीचे आंगन में चरवाहे ने दरवाजा खटखटाया।

कलजन ने जाकर द्वार खोले। चरवाहे ने उसके पैर पकड़कर कहा—"मालिक मेरा कसूर माफ कर दो।"

"क्या बात है? क्या कण्डों के दाम मांगने आए हो?

"पहले कह दो तुमने माफ कर दिया।"

"माफ कर दिया भाई। कलजन के पास जो कुछ था सब

क्या उसके क्रोध का कहीं ठिकाना ही नहीं रहा। सब माफ ही माफ है, फिर तुम्हें क्यों न माफ कर दूँगा। लेकिन कहो भी तो बात क्या हो गई ?

"तुम मेरे साथ चलो मैं तुम्हें उस बेईमान के घर का पता देता हूँ। मैं उसका हाथ तुम्हारे हाथ में पकड़ा देता हूँ असली चोर वही है, चलो।"

"मैं कहीं नहीं जाता। रिबूची की स्त्री ने प्राण त्याग दिए हैं। उसकी मिट्टी घर में पड़ी है जब तक उसका इन्तजाम नहीं होता तब तक मुझे अपने मित्र का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

कलजन को चरवाहे के साथ बहस में पड़ा देखकर रिबूची भी वहीं पर आ गया। चरवाहा बोला— फिर वह सब मूँगे-मोतियों को किसी चूहे के भीतर डालकर गायब कर देगा।

रिबूची ने पूछा— कौन मूँगे-मोती ?"

कलजन चौंक पड़ा। चरवाहा बोला— तुम्हारी हांडी में थे जो।"

कलजन बोला—"कैसे निकाल ले गया ?

चरवाहा कलजन का हाथ खींचकर बोला— 'उसी के पास तो चलने को कह रहा हूँ।"

वह कब ले गया ?"—कलजन ने पूछा।

"वहीं से तो मैं ले गया। —चरवाहे ने जवाब दिया।

कलजन ने रिबूची की तरफ देखकर कहा—"रिबूची इसीलिए मैं कहता था क्या ने अपना असर क्यों नहीं दिखाया ? लेकिन जाने दो भगवान् की इच्छा सबसे बड़ी है।" उसने चरवाहे को बाहर करते हुए कहा— 'जाओ भाई हमने उसे भी माफ कर दिया। तुम भी माफ कर दो जाओ। संसार में मूँगे-मोती से कीमती जो चीज है उसी का नाम माफी है।"

चरवाहा बड़बड़ाता हुआ चला गया।

१२

५ ख

उस गाड़ी में भैरव मुगलसराय तक चला आया। वहाँ एक टिकट चेकर ने उसे गाड़ी से उतार दिया। उसके आगे की कोई निश्चित दिशा तो थी नहीं वह उतर गया। मुसाफिरखाने की एक बेंच में जाकर सो गया। कोट में उसकी तमाम पूँजी सुरक्षित थी जिसे उसने सिरहाने रख लिया। रात को न जाने पड़े-पड़े ही उसे किसी ने क्या सूँघा दिया कि वह बेहोश हो गया और कोई बदमाश उसके सिरहाने से उसका कोट निकाल कर भाग गया।

सुबह पुलिसवाले ने भैरव को बिना किसी सामान के एक अजीब स्थिति में देखकर जगाया— "उठो कौन है सोनेवाला ?"

'सोता हूँ तो क्या थका-मांदा हूँ इसीलिए। सोने-बैठने ही को तो "—भैरव टूटे-फूटे शब्दों में इतना कह सका था।

पुलिसवाला झिड़क कर बोला—"क्या पीकर खोए हो गया ?"

"नहीं तो।"

"जरूर शकल से ऐसा ही जाहिर होता है। कहाँ जाओगे ?"

"कहाँ जाऊँगा ?" भैरव मानो अपनी ही सत्ता से पूछने लगा।

"क्यों बोलते क्यों नहीं कहाँ जाओगे।"—पुलिसवाले ने फिर प्रश्न किया।

"क्या बताऊँ कहाँ जाऊँगा ? कहीं नहीं जाऊँगा।'

'घर कहाँ है तुम्हारा ?"—पुलिसवाले ने कुछ संशय की दृष्टि से भैरव को देखकर कहा।

"कहीं नहीं है।"

'सामान कहाँ है ?

सामान के नाम पर भैरव को कुछ याद आई। उसने बेंच की ओर देखा—उसका कोट गायब था। वह चिल्लाया—"मेरा कोट कहाँ गया ?"

"कहाँ रखा था कोट ?"

भैरव ने बम्बई की चोरी का सामान भी कोट के ही साथ जोड़ दिया। सिर्फ नामों का अस्तित्व हटा दिया उसने। वह बोला—"कोट था। कोट में मेरे नकद रुपए थे। ट्रंक था, बिस्तर था।

'नशा कर सो गए तो फिर कौन जिम्मेदार होगा तुम्हारे माल का ?"—पुलिसवाला बोला।

'नशा नहीं किया।

'जरूर किया है। तुम्हारी शकल कह रही है। अभी तक तुम्हारा नशा उतरा नहीं है। तुम्हारे बात करने का ढंग साबित कर रहा है।

'मैं सच कह रहा हूँ मैं एक भले घर का आदमी हूँ।"

"बुरी संगत में पड़ गए होंगे। परदेस में इतना बेखबर होकर कौन सोता है ?"

भैरव ने कहा—'कुछ नशा-सा जरूर मालूम देता है, लेकिन मैं कोई नशा करता नहीं।

भैरव की शक्ल-सूरत और हाव-भाव को देखकर पुलिसमैन को कुछ परतीत तो हुई। अचानक उसे कुछ याद आई। उसने पूछा—"किसी आदमी ने तुम्हें कुछ खिलाया तो नहीं ?

"नहीं।"

"तुम चोर का कोई हुलिया बताओ तो हम कुछ करें भी। यूं हीं हम किसे पकड़ें ?"

"कत्थई रंग का कोट है मेरा, हल्के हरे रंग का कैनवस का होल्ड ऑल और काला ट्रंक।"—भैरव बोला।

सिपाही कहने लगा—'चलो चौकी में लिखा दो। ऐसे जबानी कुछ न होगा।

भैरव ने मन में सोचा—"चोर को पकड़वाने में कहीं खुद न फँस जाऊँ।" वह बहाना बनाकर खिसक गया। लेकिन अब बड़े संकट में पड़ गया। दस-बीस रुपए जो पल्ले में थे वे भी गए!

क्या करे? किधर जाय? अब तो भोजन के भी उसे लाले पड़ गए। मुसाफिरखाने के बाहर निकल आया वह। बड़ी जोर की उसे भूख लगने लगी। वह सड़क पर एक जगह विचार करने लगा—"तो क्या अब पराजय स्वीकार कर ली जाय? पिताजी को एक तार भेजकर रुपए मँगा लूँ। वह फौरन ही भेज देंगे लेकिन ?"

फिर बाबो उसके सामने प्रकट हो गई और उसका सारा विचार क्रम वहीं-का-वहीं रह गया। दूसरी धारा चली—"नहीं पराजित होकर जीना भी कोई जीना है? मन की शक्ति का विरोध करना है मुझे। इसके लिए यह अत्यंत स्वाभाविक था मेरे लिए कि कोई चाह मेरे रास्ते में न रहती। यह ठीक ही हुआ है। मैं मेहनत-मजदूरी कर अपनी जीविका के लिए पैसा कर लूँगा।

एक कमीज, एक पतलून और एक जूता उसके पास रह गया था कपड़े भी मैले हो गए थे। सड़क पर कुछ मजदूर खोद-खाद कर उसमें नए रोड़े बिछा रहे थे। उसकी इच्छा हुई वहीं जाकर कुछ काम करे लेकिन उसे भूख लगी हुई थी। भूखे पेट कैसे शारीरिक श्रम होता?

वह कमियों के मर्कमुन्शी के पास जाकर बोला—"मैं भी काम करना चाहता हूँ। मुझे भी कुछ काम दे दीजिए।"

"कौन हो तुम?"

भैरव ने कुछ घटा-बढ़ाकर अपनी रामकहानी उसे सुनाई। मर्कमुंशी को दया आ गई। उसने उसे पढ़ा-लिखा जान कहा—"तुमसे सड़क नहीं जुट सकती।"

"मैं जोत लूँगा।"

"कभी ऐसा कठोर श्रम तुमने नहीं किया है।"

"आवश्यकता सब कुछ करा देती है।"

"हर एक काम को सीखना पड़ता है।"

"कुछ कम मजदूरी पे देना मुझे।"

"और कहीं हाथ-पैरों में कुदाल मार ली तो जिन्दगी ही बेकार हो जायेगी।"

"उसका जिम्मेदार मैं ही रहूँगा।

"युवक मुझे तुम्हारी अवस्था पर दया आती है। तुम क्यों इतनी बहुमूल्य जवानी के साथ मजाक कर रहे हो? तुम्हें मेरी सलाह मान लेनी चाहिए। जाओ अपने घर लौट जाओ पिता से झगड़ा करना ठीक नहीं है। उनसे माफी माँग लेने से तुम्हारी कीमत बहुत बढ़ जायेगी।"

"यह तुम्हारी शिक्षा ठीक ही है। लेकिन उनके पास जाने को रेल का भाड़ा चाहिए ही। मैं माँगना नहीं चाहता किसी से।

"उधार तो लिया जा सकता है।

"उधार कौन दे देगा इस परदेस में?"

"मैं तुम्हें एक रुपया देता हूँ। तुम घर पिताजी को तार देकर तार से ही रुपए मँगा लो।"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"नहीं मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है। मुझे तुम रुपया दोगे तो मैं जाकर उसे अपने खाने में खर्च कर दूँगा।"

"मैं तुम्हें दो रुपए उधार दे सकता हूँ।"

"नहीं मैं नहीं लूँगा।"

"क्यों नहीं लोगे?"

"मैं घर को तार नहीं भेजूँगा।"

"क्यों नहीं भेजते? अभी तो तुमने मुझसे कहा था तुम्हारे पिता धनवान हैं और तुम उनके इकलौते बेटे हो।"

"अच्छा लाओ दो रुपए दो।"

धर्ममूर्ति ने भैरव को दो रुपए निकालकर दे दिए। रुपए लेकर

वह बोला—"किसी को मेरे साथ भेज दो।

"नहीं उसकी कोई जरूरत नहीं है। मुझे तुम्हारा विश्वास है युवक! तुम्हें क्यों नहीं है अपना विश्वास? बिना आत्मविश्वास के मनुष्य का कुछ भी मूल्य नहीं।"

"अच्छी बात है।" दो रुपए के उन दोनों नोटों को भैरव हाथ में लेकर बोला—"बहुत बुरी चीज है यह रुपया। इसके विरुद्ध मैं अपनी लड़ाई शुरू करना चाहता हूँ लेकिन बार-बार मुझे इसी से सन्धि कर लेनी पड़ रही है।"

"अधिक समय बेकार बिता देने से कोई लाभ नहीं है युवक!" बर्कसुंदी ने कहा।

"तार किस पते से मँगाऊँ? आप अपना पता तो बताइए।"—कहता हुआ भैरव अपना जूता खोलने लगा।

"मेरे पते की क्या जरूरत है? स्टेशन मास्टर के मार्फत मँगा लो।"

"कल तक या परसों तक जवाब आयेगा। आप कहाँ मिलेंगे?"

"यहीं न मिलूँ तो कुलियों से पूछ लेना।"

भैरव ने अपना जूता वहीं पर खोलकर रख दिया—"यह जूता यहीं पर रख जाता हूँ।"

"किसलिए?"

"पैर में दर्द हो रहा है। अभी आकर ले जाऊँगा।"

"कोई उठा ले जायगा?"

"कौन ले जायगा? आपके कुली यहाँ मौजूद हैं।"—कहकर भैरव स्टेशन की तरफ चला गया।

उसके उस मैले और श्रीहीन वेष में वह नया जूता उसकी बड़ी बेतुकी मूर्ति बना रहा था। वह भूमि की कठोरता का अभ्यासी भी हो जाना चाहता था। धन के विरुद्ध विद्रोह का अर्थ था दीनता के साथ दोस्ती। नंगा पैर गरीबी की पहली सूचना थी। एक अपरिचित ने उसे दो रुपए दे दिए, क्यों न भैरव जमानत के तौर पर वह नया

रख जाता ?

स्टेशन के भीतर सबसे पहले उसने पेट-पूजा की। इसके बाद वह ज्यों ही तार-घर की तरफ जाना चाहता था कि एक गाड़ी के इंजन ने सीटी दी। भैरव कठिनाई में पड़ा था उसकी मुश्किल सुलझ गई। वह गाड़ी की ओर दौड़ पड़ा और उसमें चढ़कर चल दिया। कहाँ ? किधर ? पिता की तरफ नहीं वही उसकी सबसे निश्चित दिशा थी।

एक रुपया उसकी जेब में था कुछ और रेजगारी भी बाकी थी। थोड़ी देर में उसे ज्ञात हो गया गाड़ी कलकत्ते की ओर जा रही है।

केवल दीनता भैरव के साथ जा रही था। निश्चिन्त हो गया था वह। सोचने लगा—"कौन कहता है दीनता अभिशाप है ? भय-चिन्ता सम्पत्ति के ही सगे हैं। आज मुझे पता चला सम्पत्तिवान कितने असहाय हैं ! कड़ी निस्सार उनके सुख की कल्पना है।"

उसे उसके ऊपर दया करनेवाला वह बर्थमुखी याद आया—"आज तो नहीं कल को सोचेगा वह जरूर मुझे अब अपने दोनों रुपयों में से एक भी वापस नहीं पाएगा। लेकिन पन्द्रह रुपए का जूता और किसलिए रख आया मैं वहाँ ? उन्हें इसलिए मुझे बेईमान नहीं समझना चाहिए। मैंने उससे मजबूरी का पहला पाठ सीखा। उसने मुझे क्यों नहीं दिया ? क्यों वह मुझे फिर धन की शक्ति की तरफ हाँक देना चाहता था। अब मैं बड़ी आसानी से मजदूरी कर सकता हूँ। अब किसी से नहीं कहूँगा कि मेरे पिता बड़े धनी हैं और मैं उनका एकमात्र उत्तराधिकारी हूँ।"

पास बैठे हुए एक आदमी ने उससे पूछा—"दियासलाई है ?"

"नहीं है।"

"बीड़ी नहीं पीते ?"

"पीता हूँ।"—भैरव ने कहा।

"कहाँ जाओगे ?"

"कलकत्ता।"

"कोई रिश्तेदार है क्या ?"

"नहीं।

क्या करने जा रहे हो ?"

"मजदूरी।

"कभी पहले भी गए हो ?

"हाँ गया हूँ।

उस आदमी ने बुरे से तीली लेकर अपनी बीड़ी सुलगा भी

एक बीड़ी भैरव को देते हुए बोला— "लो बीड़ी पियो।"

भैरव ने आज तक कभी बीड़ी नहीं पी थी। वह पहली बीड़ी हो से लगाते हुए बड़ा अजीब-सा लगा लेकिन अब उन्हीं लोगों के साथ र अपना भाई चारा जोड़ना था। उसकी सम्पत्ति तो उसके पास से अदृ हो ही गई थी शिक्षा की जो दौलत थी उसे छिपाना था उसे। वा सावधानी बरतने लगा कि कहीं उसके मुँह से ऐसा कोई शब्द न निकल जाय जिससे उसकी शिक्षा प्रकट हो जाय और उसके भाईचारे में फ पड़ जाय।

उस बीड़ी के जोड़ से भैरव ने एक मजदूर के साथ मैत्री आरम्भ की। मजदूर बोला—"मेरे रिश्तेदार हैं तो सही कलकत्ते में लेकिन मुझे ठीक पता नहीं मालूम है। कभी मिल ही जायेंगे। अपने असली भाई-बन्ध तो अपने हाथ-पैर हैं जिनसे मजूरी मिलेगी। तुम क्या काम करते हो ?"

"मजूरी को भी मिल जाय।"

"घर कहाँ है ?"

"भरत में" भैरव ने बड़े धीमे स्वर में उससे कहा— "लेकिन एक जगह है भाई।"

मजदूर कुछ सोच में पड़ गया। उसकी बात सुनने के बदले उसने पूछा— "सामान कुछ भी नहीं है तुम्हारे पास ?"

"सब चोरी चला गया। कोट की जेब में रुपए, टिकट जो कुछ थ सब चोर ले गए—कपड़े बर्तन बिस्तर सब।"

इतने ही में एक मनुष्य भैरव के पास चला आया। उसने भैरव को पहचान लिया जब वह पुलिसवालों से सामान को लाने पर बातचीत कर रहा था।

उसने आकर उससे अंग्रेजी में पूछा—"क्यों मिस्टर, तुम्हारा सामान मिला या नहीं ?

भैरव ने जवाब दिया—'नहीं मिला।

भैरव के पास जो मजूर बैठा था उसने चकराकर भैरव की ओर देखा।

उस आनेवाले ने भैरव से पूछा—'कलकत्ते किसलिए जा रहे हो ?"

भैरव ने उस मजूर की ओर देखकर कहा—'जो भी मजूरी मिल जायेगी।"

"पढ़े-लिखे होकर मजूरी क्यों करोगे ?

'समाज के प्रति अपनी प्रतिहिंसा पूरी करने को।"

उस व्यक्ति ने उसकी पीठ पर अपना हाथ रख दिया और वह मजूर उसकी भाषा और भावना को देखकर कुछ हटने लगा। उसके कुछ झिझक पैदा हो गई।

"समाज के प्रति तुम्हारी प्रतिहिंसा क्यों है ?"

"उसका अन्याय और उसकी विषमता का मैं शिकार हूँ।"

"युवक तुम्हारी बातों से मैं आकर्षित हुआ हूँ। संभवतः हमारा एक ही धर्म है। कुछ और विस्तार से तुम अपना रहस्य कह सकते हो तो कहो। —बड़ी प्रीति और प्रभाव भरी वाणी से उस व्यक्ति ने भैरव से कहा।

भैरव ने देखा अत्यन्त साधारण वेश में था वह। कुर्ता धोती और पैर में चप्पल। सिर और दाढ़ी के बाल बड़े रूखे और अस्त-व्यस्त। ऐसा जान पड़ता था मानो उसे बाहरी जगत से कोई मतलब नहीं है। विचारों की दुनिया को ही वह बड़ा मान देता है।

भैरव ने उससे पूछा—'तुम कौन हो ?"

तुम्हारा अनन्य मित्र हूँ। अपना परिचय दो।

"अपना क्या परिचय दूँ ? मैं गरीब मजदूर हूँ।"—बड़ी निराशा से भैरव बोला।

"नहीं मित्र इस तरह निराश होने की बात नहीं है। गरीबी हमारा दुर्भाग्य नहीं है वह हम पर बलपूर्वक लाद दी गई है।

भाग्य द्वारा ?

नहीं—अत्याचारियों के अन्याय स्वार्थ के अन्वेषण द्वारा।

भैरव ने मौन रहकर अपना माथा हिलाया।

इस अत्याचार के सहायक कौन हैं तुम्हें पता है ?"

नहीं।

"इसके सहायक दो हैं—धर्म और सिक्के। एक के भय और दूसरे के लोभ के कारण न्याय फैल ही नहीं पा रहा है धरती पर।

तुम ठीक कह रहे हो।"

"इसलिए पृथ्वी पर से इन दोनों को मिटा देने की आवश्यकता है तभी यहाँ असली न्याय और सच्ची शान्ति फैल सकेगी।"

'तुम क्या काम करते हो ?"

'धन और प्रभुता के इस अत्याचार को मिटाना ही हमारा व्रत है।"

'क्या नाम है तुम्हारा ?"

'कोई नाम नहीं। हम जिस दिन व्रत में दीक्षित होते हैं उस दिन हमें धर्म जाति कुल गोत्र के साथ अपना नाम भी मिटा देना पड़ता है।

"आपस में तो शक्ल से पहचाने जाते होंगे ? परोक्ष में ?"

संकेत की संख्या से।"

'कुलकुल कहाँ है तुम्हारा ?"

"जब तक तुम अपना विश्वास नहीं देते और अधिक कुछ नहीं बता सकता मैं तुम्हें।

"क्या विश्वास चाहते हो तुम मेरा मेरी समझ में नहीं

अभी तक ! —भैरव ने कहा।

"तुम कौन हो ? किस उद्देश्य से कहाँ जा रहे हो ? तुम्हारा विवाह हो गया है या नहीं ? घर पर और कौन-कौन हैं इत्यादि सब बातों का उत्तर दो।"

मुझे एक कच्ची मजदूर समझो बिलकुल निकरेसम हूँ मैं। घर से समझकर निकला हूँ अपने ही पैरों पर खड़ा होने के लिए।

"क्या व्यापार करने का विचार है ?

नहीं मैं सम्पत्ति को सबसे बड़ी विपत्ति मानने लगा हूँ।"

"तब तुम हमारे ही पक्ष के हो। तुम्हारा विवाह हो चुका या नहीं ? तुमने इस बात का उत्तर नहीं दिया।"

"इस बात का अर्थ क्या है ?

"हमारे मठ में भरती होने के लिए अविवाहित होना जरूरी है।"

भैरव को काको याद आई। वह समझने लगा काको उसे धोखा देकर भाग गई है। नारी के प्रति घृणा पैदा हो गई उसके उसी समय। उसने जवाब दिया— जिस प्रकार सम्पत्ति से तुम्हें घृणा है वैसे ही क्या नारी से भी है ?"

"घृणा तो नहीं है लेकिन हम उसे मार्ग की बाधा समझते हैं। ऐसे ही सम्पत्ति से भी हमें कोई घृणा नहीं है। सम्पत्ति का जो अनुचित बटवारा है हम उस प्रथा के शत्रु हैं।

"मैं तो नारी का भी शत्रु हूँ नारी-जाति का भी। संसार की अशांति की जड़ में मैं उसे भी समझता हूँ।"

तो तुम अविवाहित ही हो ?

"हाँ।"

"तब हमारे मठ में भरती हो सकते हो तब।"

"वहाँ मेरे खाने-पीने और रहने की बेफिक्री हो जायगी क्या ?"—भैरव ने पूछा।

वहाँ तो एक त्याग और तपस्या का जीवन है। खाने-पीने और रहने

की जो बेफिक्री है युवक यह तो तुम्हारे ही मन की एक अवस्था
नाम है। तुम बेफिक्र हो जाओगे तो फिर सभी कुछ अपने आप
जायगा। मनुष्य का भोजन वस्त्र और निवास यह तो स्वयं ही
प्राप्त हो जाता है। ये महती आकांक्षाएँ हैं जो उसे खा जाती हैं।

"यह बढ़िया बात है। तुम्हारे मठ में औरतें कोई भी नहीं हैं?
सिर्फ एक है।"

"एक क्यों है फिर?"

"चुप रहो! उसके खिलाफ भावना मत बिगाड़ो वह माता
सबकी माता है।"

"नहीं मैं तो ऐसी जगह जाना चाहता हूँ जहाँ नारी की कोई परछा
भी देखने को न मिले।"

"वह नारी नहीं माता है। चलो हमारा ही मठ तुम्हारे योग्य है
तुम कहाँ जा रहे हो?"

भैरव ने बड़ी कठिनता से उत्तर दिया—"कहीं नहीं।"

"टिकट कहाँ का लिया है?"

"कहीं का नहीं। रुपए कोट में थे कोट चुरा लिया किसी ने तुम
मालूम तो है।

"पकड़ लिए गए तो?"

"तुम बचा सकते हो?"

"हाँ हमारे मठ में भरती होने को तैयार हो तो जरूर बचा
सकता हूँ।"

"तैयार हूँ।"

"वचन दो।"

"वचन दे दिया। कहाँ है तुम्हारा मठ?"

"निर्जन एकान्त में। नगरों की भीड़ और कोलाहल से दूर प्रकृति
के शान्त वातावरण में। नगरों में क्या है? एक-दूसरे को धोखा देने की
वृत्ति दीन-दुर्बलों को खा जाने का धर्म। हर तरफ कृत्रिमता रूपी

नम्रमी और विनाशा। प्रकृति में पवित्रता है सादगी है, यहाँ पाप स्वच्छताओं का ध्यान नहीं है। हमारा मठ हिमालय की उपत्यका में है।"

"कलकत्ते के आस-पास नहीं?"—ताज्जुब से भैरव ने पूछा।

"नहीं दार्जिलिंग से भी ऊपर? सिक्कम और भारत की सीमा पर।"

"बहुत दूर!

"जब तुम्हें सम्पत्ति और नारी से घृणा है तो फिर क्यों शहरों की तरफ पसन्द कर रहे हो?

"नहीं शहर पसन्द नहीं है। शहरों से मुझे घृणा है। शहरों ने मेरी " कहते-कहते भैरव रुक गया।

वह व्यक्ति कुछ ताज्जुब से भैरव को देखने लगा।

"हाँ शहरों ने मेरी सारी सम्पत्ति लूट ली।"

उसका सवाल थमा।

भैरव ने पूछा— कोई धार्मिक सम्प्रदाय है तुम्हारा?"

"धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। हम कल्पना को कोई मेल नहीं देते। हम वास्तविकता को ही मान देते हैं। वह वास्तविकता है—मनुष्य मात्र की समता और भाईचारे की।

"क्या नाम है तुम्हारे मठ का?"

"अपरिग्रहवादियों का मठ।"

भैरव के मन में एक गुदगुदी-सी उठने लगी। वह अपने मन में सोचने लगा—"बम्बई धर्मशाला में जब मैंने उस मैनेजर के ऊपर दूधे का टीन फेंका था उसी समय अपरिग्रहवादी नहीं बन गया मैं और उसके बाद जब मैंने लोहे की छड़ से उस धर्मशाला के ठेकेदार की नाक तोड़ दी क्या तभी मेरी दीक्षा नहीं हो गई अपरिग्रहवाद के भीतर? मैं बराबर ठीक ही मार्ग में आ रहा हूँ। इस स्थिति में इस मठ के सिवा और दूसरी कोई मंज़िल ही नहीं है मेरी।"

उस व्यक्ति ने कहा—"क्योंकि अब तुम हमारे हो चुके हो। तुमने प्रतिज्ञा कर ली है इसलिए अब तुम्हारे लिए छिपाने को मेरे पास कुछ नहीं है, तुम जो पूछोगे मैं बताऊँगा।

रेल तीव्र गति से पटना का स्टेशन पीछे छोड़कर रात के सन्नाटे में चली जा रही थी। तीसरे दर्जे के उस डिब्बे में अधिकतर कमी मजदूर ही थे जो सबके सब सो रहे थे। केवल वे दोनों ही वहाँ पर जागकर बातें कर रहे थे।

भैरव ने कहा—"तुम्हारा कुछ नाम तो होगा ही।"

"केवल एक संकेत है।"

"कैसा ?"

"एक संख्या है—५ म इसी से मैं व्यक्त हो जाता हूँ।"

"अच्छा मित्र ५ म संख्या ही नहीं एक अक्षर भी है तुम्हारे नाम में।"

"अक्षर भी तो सीमाबद्ध की संख्या होती है।"

"कुछ व्यक्त और कुछ अव्यक्त! अच्छी बात है। मठ है, होता क्या है वहाँ ?"

"मठ में साधना होती है।"

"तुमने तो अभी कहा था मठ धर्म और साम्प्रदायिकता से दूर है।"

"सामाजिक साधना होती है।—५ म ने उत्तर दिया।

"वह कैसी ?"

"जब कहीं कोई अत्याचार होने लगता है तो हम उसका प्रतिकार करते हैं।"

"प्रतिकार कैसे करते हो उसके विरुद्ध आवाजें उठाकर ?"

"नहीं यह तो दुर्बलों की साधना है। हम भयंकरवादी हैं। हम व्यक्ति में नहीं धर्म में विश्वास रखते हैं। हम अत्याचारी को तीन बार सावधान करते हैं जब वह नहीं सँभलता तो फिर हम उसे गोली से उड़ा देते हैं।"

भैरव चौंक पड़ा—"गोली से कौन डराता है ?
"जिसके नाम का टिकट खुल जाता है। टिकट आता ही बोलती है। कोई पक्षपात नहीं होता। क्या तुम्हें भय लगता है ?"
"हाँ।"
"पहले सभी को लगता है लेकिन जैसे मनुष्य अफीम और गाँजा जैसी निकृष्ट चीजों का आदी हो जाता है और धीरे-धीरे बिना उनके रह ही भी नहीं सकता ऐसी ही कुछ दिन बाद जब तुम उस भयावने वातावरण में रहने लगोगे तो फिर वह जीवन की बड़ी प्रिय और आवश्यक वस्तु हो जायगी।"
"अच्छी बात है। जो भी होगा।
"डरो मत। अभी नहीं आयगी तुम्हारी बारी। कभी कभी हम लोग एक-दूसरे के बदले भी चल जाते हैं।"
"मुझे भी अपना नाम लिखवा कर देना पड़ेगा ?
"हाँ क्या नाम है तुम्हारा ?"
"भैरव।"
"हाँ भैरव दीक्षा की रात को तुम्हें तुम्हारा नंबर दिया जायगा।"
"तुम्हें कोई सरकार पकड़ती नहीं ?
"हमारा बड़ा पक्का संगठन है। हमारे सदस्य मौत पर हँसते हैं। वे प्राणों की बाजी लगाकर भी अपना भेद नहीं देते।
"तुम इधर कहाँ से आ रहे हो ?
"बनारस से।
"वहाँ क्यों गए थे ?
"हमारा एक सदस्य वहाँ बहुत दिन हुए एक कर्तव्य को लेकर गया था वह नहीं लौटा अब तक। मैं उसी का पता लेने गया था।"
"कुछ पता चला ?"
"नहीं।"
"फिर क्या होगा ?"

"मुझे प्रसन्नता है। मेरी यात्रा व्यर्थ नहीं गई। हमारे एक सदस्य का सिर गया तो एक दूसरे सदस्य का सिर मिल गया।"—५ ब ने उत्तर दिया।

भैरव उस भयंकरवादी को देख-देखकर कभी उत्साह से भर जाता था और कभी डरने लगता था।

५ ब ने टिफन कैरियर खोलते हुए कहा—"भोजन करो।

"मैं तो खा चुका हूँ।"

"कुछ अब भी थोड़ा-सा।"

खा-पीकर दोनों बैठे ही बैठे सो गए। कुछ दूर जाने के बाद ५ ब ने भैरव को उठाकर कहा—"मित्र तुम्हारा नाम क्या है?

"मेरा नाम भैरव है। क्यों पूछते हो फिर दूसरी बार?"

"ध्यान नहीं रहा।"

"बस, और भी जो चाहो तुम मुझसे पूछ सकते हो। मैं कुछ भी नहीं तुमसे छिपाऊँगा।"

"मैं और कुछ भी नहीं पूछूँगा। कहाँ तक कोई किसी के सम्बन्ध में पूछ सकता है? हम लोग अनेक जन्म-जन्मान्तरों में विश्वास रखते हैं। तुम कहाँ तक बताओगे? तुम्हें केवल एक इसी जन्म के माता-पिता की बात मालूम है। इसके अतिरिक्त रह गया धन-सम्पत्ति का लेखा हम पार्थिव सम्पत्ति को कोई सम्पत्ति नहीं मानते।"

फिर सम्पत्ति क्या है?"

विचार, भावना, कर्म।"

भैरव पूछने लगा—"अभी कलकत्ता कितनी दूर है?"

"अभी बहुत दूर है। लेकिन हम वहाँ नहीं जायेंगे।

"फिर?"

"उससे पहले ही उतर जायेंगे।"

"कहाँ?" भैरव अच्छी तरह जागकर बोला—"कूद जायेंगे या छूटेंगे क्यों?"

"तुम्हारे पास निकट भी नहीं है।"

"कूदने से हड्डी टूट गई तो ?

य. ज. ने भैरव का हाथ पकड़ लिया— बन्धु, यही तुम्हारे विचार की कमी है। तुम्हारा विचार बीमार है। विचार की इस दुर्बलता को ठीक करना पड़ेगा। होनेवाली बात पहले विचार में ही प्रत्यक्ष हो जाती है। रेल से कूदने पर तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी—इस विचार की कोई क्षीण रेखा भी तुम्हारे मन में रह गई तो जरूर हड्डी टूट जायेगी।"

"कैसे यह विचार की दुर्बलता जायेगी ?

"केवल निश्चय से विश्वास से माता के आशीर्वाद से।"

"मैंने माता को नहीं देखा है।

"मेरे ध्यान से देखो।"

"कैसी है माता ?"

"उसके एक हाथ में रक्त में सना हुआ खड्ग है और उसके दूसरे हाथ में सौम्य कमल का फूल। उसके गले में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला है। उसकी कमर में बाघ की खाल बँधी है। उसकी जटाओं में साँप लिपटा रहता है।"—य. ज. बोला।

भैरव ने कहा— "बड़ी उग्र माता है यह तो।

य. ज. ने प्रत्युत्तर में कहा— केवल बाहर से देखने में। भीतर से बड़ी सौम्य और बड़ी करुणामयी है। जब देख लोगे तब पता चलेगा।"

भैरव बोला— कब देख सकूँगा ? भाई यह जिस माता का तुमने वर्णन किया वह तो कोई पौराणिक देवी जान पड़ती है। उसे देख कैसे सकूँगा—उसकी मूर्ति को पूजते हो क्या तुम लोग ? लेकिन मैं तो बुद्धिवादी हूँ मैं मूर्तिपूजा को बच्चों का खेल समझता हूँ।"

"हम बुद्धिवादी हैं लेकिन साथ ही मूर्तिपूजक हैं। सारा विश्व मूर्तिपूजक है। मूर्तिपूजा बुद्धिवाद की चरम सीमा है।"—य. ज. ने कहा।

मित्र मैं नहीं समझा तुम्हारी बात। जब तक तुम इसे स्पष्ट समझा न दोगे तब तक हाँ-में-हाँ मिलाना कोई अच्छी बात नहीं है। —भैरव

ने कहा ।

ठीक है बिना बात को समझे हाँ कह देनेवाला कोई अस्तित्व नहीं रखता । ऐसा व्यक्ति न अपना बन है न किसी संस्था के गौरव को ही बढ़ा सकता है ।"

"मित्र मैं समझता हूँ मेरी वचनबद्धता अभी प्रमाणित नहीं है ।

१ ब ने कुछ आवेश के साथ कहा—"तुम हमारे मठ में प्रविष्ठ हो जाने के लिए वचन दे चुके हो ।"

"दीक्षा कहाँ ली अभी ? जोश में आकर कुछ कह गया था ।

"जीवन में सफल होनेवाला व्यक्ति इस तरह आगे को बढ़ाए हुए पैर पीछे की तरफ नहीं ले जाता ।"

"मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि मैं तुम्हारे मठ में दीक्षा न लूँगा ।"

"फिर क्या है ?"

"तुम कहते हो सारा विश्व मूर्ति-पूजक है कैसे ? मुझे समझाओ भी तो ।

"जिनको तुम मूर्तिपूजक नहीं समझ रहे हो वे सिक्के की पूजा नहीं कर रहे हैं क्या ? सिक्कों पर क्या किसी न किसी की मूर्ति बनी हुई नहीं है ? ये सब मूर्तिपूजक हैं । इनके देवता असली सोने चाँदी के होते तो भी एक बात थी ये कोरे कागज के हैं । पानी की एक बूँद में जो गल जायँ साँस की एक फूँक में जो उड़ जायँ और आग की एक चिनगारी में जो भस्मीभूत हो जायँ ।"—१ ज ने कहा ।

भैरव ने विचारकर उत्तर दिया—"हाँ बन्धु तुम ठीक कह रहे हो ।"

१ ग फिर बोला—"लेकिन हमारी वह माता जिसके बारे में अभी मैंने तुमसे कहा वह न तो कागज पर की कोई चित्र है न मिट्टी पत्थर या किसी धातु की निर्मित । वह हमारे-तुम्हारे ही समान हाड़-चाम की एक हस्ती है जो हमारे प्रत्येक सुख-दुख में हमारा साथ देती है जिसकी प्ररेणा हमारे समस्त कर्म की प्ररणा है और हमारी शक्ति

भावना की चर-अनुभूति।

भैरव की शंका मिट गई वह बोला—"मैं मठ में भरती होने के लिए बिलकुल तैयार हूँ मित्र।

"यह तो जानता ही हूँ। क्योंकि हम लोग बिना शब्दों के लेन-देन के ही इस बात का पता पा जाते हैं कि यह व्यक्ति हमारे मठ के उपयुक्त है या नहीं।

"कैसे मित्र?"—भैरव ने पूछा।

"जान लेते हैं। माता के आशीर्वाद से और कैसे? भाव की बड़ी विचित्र गति है। जब तक सारी सृष्टि में भावना का विस्तार नहीं समझ पड़ता तब तक इसका बोध नहीं होगा।

फिर दोनों चुप हो गए और अपनी-अपनी जगहों पर बैठे-बैठे ऊँघने लगे। गाड़ी एक के बाद दूसरे स्टेशनों को पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ती गई। अब वह नागपुर के जिले से होकर जा रही थी।

२ ब बड़ी तत्परता से यात्रा कर रहा था और भैरव अब उसके व्यक्तित्व में एक सहायक पाकर अपनी सारी चिन्ता को भूला था और बेखटक सो रहा था।

२ ब बीच-बीच में खिड़की से बाहर मुँह निकालकर देखता जा रहा था। कृष्णपक्ष की प्रभात-व्यापिनी चाँदनी अमावस्या के निकट की तिथियों में थी। उस क्षीण प्रकाश में २ ब रह रहकर रेल के आस-पास के ग्रामों खेतों और जंगलों को पहचानने की कोशिश कर रहा था। कभी दूर क्षितिज की रेखाओं में कुछ परिचय ढूँढ़ता।

कुछ देर बाद उसने पहचान लिया। उसने भैरव को उठाते हुए कहा—"उठो भैरव उठो हमारा स्टेशन आ गया।"

"नाम क्या है?"

"हमारे स्टेशन का क्या नाम होता है? कुछ नहीं कोई जंगल समझ लो। जल्दी करो तैयार हो जाओ।"

"रेल भी तो ठहरने दो।"

"रेल टिकटवाले यात्रियों के लिए ठहरती है। खिड़की से कूद पड़ो। मठ-प्रवेश की यही तुम्हारी पहली परीक्षा है।"

"मैं कायर हूँ क्या ?"

"तो मेरे पीछे कूद पड़ो। कोई भय नहीं कोई चिन्ता नहीं वसुन्धरा की गोद माता की गोद के समान निरापद है। बाहर से कुछ नहीं बिगड़ेगा तुम्हारा अगर कुछ बिगड़ा भी तो भीतर भावना के ही विद्रोह से। माता की जय पुकारकर कूद पड़ो। जो मैं कूद गया जिस प्रकार।"—५ न कूद पड़ा चलती रेल की खिड़की से।

भैरव को भी साहस हो गया। उसने मन-ही-मन माता की जय पुकारी और कूद गया उसी खिड़की से।

३३

आत्मा की खोज में

पत्नी की अंत्येष्टि कर रिंकूजी कमजन के साथ अपने घर आया। उस बार निराशा में उसका एकमात्र साथी कमजन ही था। उसके मन में वैराग्य की भावना बड़ी पुरानी थी। उसने अपने साथी रिंकूजी के नाजुक भाव में उस वैराग्य का बिरवा बड़ी आसानी से रोप दिया।

कमजन बोला— रिंकूजी जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य 'मैं' नहीं है, मैं को भगाकर जो बाकी बचता है वह है। इसलिए असली सुखी वही है जो निरन्तर दूसरे के सुख को साधता है।"

"कमजन, कहाँ से है यह सुखी? कहाँ मिला तुम्हें वह सुख? तुमने दूसरे की स्त्री को अपनी करने के लिए अपनी स्त्री के जवाहर फूंक डाले थे। बीच ही में कोई क्यों उन्हें चुरा ले गया? और वह कहता है उन्हें उसके पास से भी कोई चुरा ले गया?

"मैं सुखी हूँ रिंकूजी क्योंकि मुझे सुख की अपेक्षा नहीं है। वह बादशाह मेरा हाथ खींचकर ले जा रहा था, अगर मैं उसके पीछे चला जाता तो अवश्य ही सुख की खोज में जाता और वह कभी न मिलता मुझे।"

"तुम्हारी बातों से प्रतीति उपजती तो है कमजन। मगर न बोध तुम इस सुख की बातों? कैसे तुम्हारे हाथ लगी यह?

"बात फिर वहीं पर आती है। जितना हमारा अपनापन न ■ होता जाएगा उतने हम सुखी होते जायेंगे। मेरा गृहस्थ नष्ट हो जाने पर मैं आधा सुखी हो गया और घर के लुट जाने पर तो बिलकुल!"

'नहीं यह तुम गलत बात कह रहे हो। संसार में अधिकांश तो गृहस्थियों ही का है। तिब्बत में ये जो इतने मठ और गृहत्यागी हैं क्या ये सब के-सब सुखी हैं। या इनके लिए—भोजन वस्त्र और तरह तरह की सुख-सुविधाओं के उपजाने वाले ये तमाम गृहस्थी सब दुखी हैं?

'गृहस्थ में रहकर भी अपनापन नष्ट किया जा सकता है। ऐसा करनेवाले वे सब ज्ञानी हैं। कोई-कोई मठ-वासियों से भी अधिक मैं हैं।

फिर कमजम तुम क्यों निर्जन और शून्य दिशा की ओर संकेत कर रहे हो?"

"मेरे लिए तो भगवान् ने वही दिशा खोल दी है। तुम्हारे भी स्त्री के मरने का कारण"

"मैं फिर और क स्त्री से विवाह कर सकता हूँ। मेरे हाथ में रेखा पड़ी है देखो कमजम। —कहते हुए रिबूची ने अपने दाहिने हाथ की हथेली उसकी तरफ बढ़ाई।

खरचकर मिटा दो इस रेखा को।

"यह कहीं मिट सकती है क्या?

'हाथ काटकर फेंक दो। नियति के हाथों में इतने सस्ते बिक जाने से अच्छा है तुम लूले होकर जीवन धारण करो।

"कमजम मैं तुम्हें बड़ा उदार और महिमावाली समझता था। तुम यह आत्महिंसा का कैसा उपदेश दे रहे हो?

'यह तो अपनी कामनाओं की बात है बोधिसत्त्व के धर्म में इसका निषेध नहीं है। मन की इच्छाओं पर आरूढ़ होकर ही प्राणी जन्म के जन्म को प्राप्त करता है।"

"तुमने बोधिसत्त्व का नाम लेकर फिर मेरा विश्वास उपजा दिया। कुछ साफ-साफ कहो मैं तुमसे तत्व सीखना चाहता हूँ अपना अहंकार मिटाकर।

"मैं स्वयं ही उसकी खोज में हूँ रिबूची क्या कहूँ भाई

भीतर कुछ सीखने की शुभ कामना पैदा हो गई है तो हमें स्वयं ही कुछ खोज लेंगे ।"

"जब ऐसा है तो कहीं क्यों कलजग नहीं क्यों नहीं ?

"कुछ ऊपर चलें वहाँ चाम्पक प्रदेश में जहाँ हिम की शुभ्रता में काले विचार नहीं जमते ।"

"क्यों नहीं जमते ?

"शीत में कामना नहीं पनपती और कामों के न होने पर वहाँ कोई बीज नहीं है । वहाँ मधुर व एकान्त मिलेगा ।

"मन तो साथ ही जायगा मन के साथ जायेंगी अनन्त कामनायें; फिर एकान्त कैसा ?

"उस ऊँचाई पर जिस तरह धरती पर की हरियाली मद्धम हो जाती है ऐसे ही हमारे मन के रंग भी ।"

"तुम्हारा बड़ा विचित्र तर्क है ।"

"रितूषी हम तर्क से सत्य को नहीं पा सकते । व्यवसाय पाया जा सकता है । इसलिए सत्य को चाहते हो तो हृदय में बालकों की सी पवित्रता और सरलता उपजानी पड़ेगी ।"

"अच्छा मैं तर्क नहीं करूँगा कोई सारतत्व बताओ ।

कलजग ने खीझकर गला साफ किया । कुछ विचार किया और कहने लगा— "हम जिस नारी को बहुत बड़ा सत्य समझते हैं वह सिर्फ एक माया है । एक कल्पित रेखाओं का जाल !"

"एक सिरे पर नारी है तो दूसरे सिरे पर पुरुष क्यों नहीं ? तुम दोनों का नाम क्यों नहीं गिनते ?"

"यह पुरुषों के बीच की बात है, नारियाँ ऐसा कह सकती हैं ।"

"अच्छा और आगे कहो ।"

"इसीलिए मैंने उस माया में भोली भाई को हिस्सा दे दिया और बहुत शीघ्र उस रहस्य से ऊपर उठ गया । साधना के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है—यह नारी रितूषी बिना इस बाधा का अतिक्रमण किए

कुछ न होगा ।

"और फिर मेरे मन में अविश्वास पैदा हो गया । तुम ऐसा कहकर क्यों सारी सृष्टि का बहिष्कार कर रहे हो ?

"कदाचित् तुम मेरे मतव्य का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझे । नारी से मेरा अर्थ है वह जिसे तुम अपने सुख और विलास की सामग्री समझे हो । मैं तुमसे उस नारी से ऊँचा उठने को कहता हूँ उसके मातृत्व में ।"

"कहाँ ? किधर ? वह कहाँ है कभी की मर गई ।"

"नहीं वह न जन्मती है न कभी मरती है ।

"कौन है वह ?"

"वह है ओरमा वह तारिणी !"

"वह श्यामा ! वह संहारिणी ! वह रक्तनयना ?"

"हाँ-हाँ ! वही वही—वही तो उसकी विश्वरूपिता है ।

"वह शान्त-स्थिर बोधिसत्व ?

"बोधिसत्व को उसी की कोख ने अपनाया है और उसी में उसका लय हो जाता है ।"

"कनकन तुमने यह क्या मन सच ही कहा है ?"

"नहीं केवल एक विचार की स्फुरणा है । तुम्हारा मन अगर इसमें मेल खाता है तो कभी हम आगे बढ़कर देखें कदाचित् यह सत्य है ।"

"मेरा मन मेल खाता है । पर इस घर और सामान का क्या करें ? लेकिन एक बात बड़े आश्चर्य की है" रिभूषी रुक गया ।

कनकन बोला—"इस सृष्टि में आश्चर्य ही तो सार वस्तु है । बिना आश्चर्य का जीवन भी क्या कोई सत्ता है ? कहो तुम कहाँ पर अटक गए ?"

"मैं कहता हूँ तुम्हारे विचार पहले कुछ और तरह के थे ।"

"विचार सदा एक ही से रहते हैं केवल दृष्टिकोण बदलता है ।"

"महायान से उतरकर तुम वज्रयान में पड़ गए !"

"विशेषता यान की है रिभूषी महा या वज्र इन विशेषणों के फेर

विषमता नहीं पैदा होती ।'

"कमजन, जब ऐसी बात है तो फिर तुम मुझे यहाँ क्यों ले आते हो ? यह जो मेरा घर है, यह एक माल ही तो है—फिर क्यों तुम मुझे इससे जुदा रहे हो ? तुम्हारे माल-मोह का कारण मैं जानता हूँ । मुझे क्यों विद्रोही बनाते हो ?

"नहीं, कोई अब प्रयोग नहीं है । क्या है मेरे विद्रोह का कारण ?"

एक ही रात में कमजन, तुमने अपने वर्षों की पूजा शून्य में मिला दी !"

"क्या करता फिर ? मेरी पूजा की वह प्रतिमा क्यों रूठ गई मन्हें ?"

"प्रतिमा को जो उठा ले जायगा—उसके साथ जायगी क्यों नहीं ?"

"यहीं पर तर्क पराजित हुआ और मेरी भावना को स्फूर्ति मिली । मैं मूर्तिपूजा छोड़कर चल दिया । जिस प्रतिमा में मैंने वर्षों से प्राण प्रतिष्ठा की थी उसे उठाने को जब चोर ने हाथ बढ़ाया तो क्यों नहीं उस चोर पर वज्र गिर पड़ा ? लेकिन नहीं रिभूजी मैं मूर्खता के वश होकर तुम्हारे साथ यह तर्क कर रहा हूँ । ऐसी कोई बात नहीं है ।"

क्या है फिर ?

"वह प्रतिमा मुझसे छिन गई इसी कारण मेरा मानसिक आदर्श बदल गया और मुझे दूसरे दृष्टिकोण पर आँख धमकाना पड़ गई ।"

अच्छा मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ । इस माल का क्या करें ?

"इसको ऐसे ही छोड़ आओ ।"

"किसी को दे क्यों न दूँ ? इसकी कुछ आवश्यक चीजें तो ले चलें ।"

"किसी को देने से मोह बढ़ेगा । कुछ इसमें से ले जाने से बन्धन बढ़ेगा । मरने पर हम जैसे अकेले जाते हैं रिभूजी एम ही जाना पड़ेगा ।

रिभूजी ने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा— "क्या इसीलिए इसका नाम श्मशान है ?"

"और नहीं तो क्या ?"

"मैं तो समझता था अहंकार इसके साथी हैं।

"नहीं रिचूंग अहंकार ही वज्रयानी का मद उसका वह अहंकार बाहर नहीं प्रकट होता वह उसे निरन्तर पीता रहता है और चौबीसों घण्टे उसे उसी का नशा रहता है उसका मांस उसका अपना ही स्थूल शरीर है—वह उसी को खाता रहता है।"

'लेकिन भगवन वज्रयान के सम्बन्ध में जो ऐसी बातें फैली हैं वे क्या हैं ?"

'मैं नहीं जानता जो जानता हूँ तुम्हें बता दी।"

"मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।

"कहाँ चलोगे ?"

"जहाँ कहोगे।

"कब चलोगे ?

"जब कहोगे।

"हाँ रिचूंग बिना ऐसे पूर्ण आत्मसमर्पण के आत्मा नहीं मिलती। चलो हम चलेंगे अभी चलेंगे। हमें कोई प्रबन्ध नहीं करने हैं। सब बन्धनों से हम मुक्त हैं। कोई उत्तरदायित्व नहीं, किसी से कुछ लेना-देना नहीं। चलो खाड़-बड़ प्रदेश में बंगी लामा का मठ है। तुमने सुना है उसका नाम ?"

"नहीं सुना।"

"बहुत कम लोग उसे जानते हैं। वह बहुत दूर कोने में रहना पसन्द करता है उस मठ में। बहुत थोड़े लोग उसकी शक्ति से परिचित हैं। वह बहुत छिपकर रहता है। प्रकृति की ऊँचाई और शीत को उसने अपना कवच बना रखा है।"

"वह क्या खाता है वहाँ ?"

वह एक सिद्ध है। वह जो कल्पना करता है, वही उसके पास पहुँच जाता है। लेकिन-तुम समझते हो उसकी कोई आवश्यकता है ?

कुछ नहीं चलो वहाँ उसका शिष्यत्व ग्रहण करें। अगर उसने हमें स्वीकार कर लिया तो निश्चय हमारा जन्म सफल हो जायगा।"

रिखूची बोला— "अच्छी बात है कलजन चलो अभी चलें पैदल ही चलेंगे न ?"

"हाँ भाई सवारी में जाने के लिए न तो हम सूबे के शासक हैं न सेठ कि धनी व्यापारी।"

"मैं यह अपना पुराना चोगा बदल लेता हूँ और मेरे पास एक बिल्कुल नया चुगा रखा है तुम्हारे ठीक आयगा। तुम उसे पहन लो। हमें बहुत जंगली और पहाड़ी मार्ग से जाना होगा कलजन।"

"हाँ हाँ यह मृत्यु का मार्ग है इस विचार को अजगर के लिए भी मत छोड़ो और मृत्यु के मार्ग में तुम्हारे क्या कवच काम आवेंगे ?"

"मृत्यु के मार्ग में कोई कवच काम न आवेंगे वहाँ तमाम दुर्दर्शिता मूर्खों का प्रलाप है—तुमने यह सच ही कहा कलजन।"

"हमें कोई डर न रहेगी तो हम भगवान् के अधिक निकट रहेंगे। रिखूची यह भय की ही भावना है जो हमारी आत्मा को विस्तार नहीं देती।"

"हम वीर हैं। हम निर्भय हैं।"

"अवश्य! मृत्यु की घृणा ही हमारा भय है इसमें उसम प्रीति कर अपने मार्ग का चोगा और फूलों से बिछा हुआ बना लिया है। तारिणी डोलमा की जय! रिखूची उसके एक हाथ में मनुष्य के कपाल का खप्पर है एक हाथ में रक्त रंजित खड्ग है। तुम्हें डर लग रही है ?"

"नहीं।"

"तो चलो।"

"एक क्षण ठहर जाओ। मैं भी तुम्हें उठा के आता हूँ। जाड़े में बड़ा शीत है।"

"रिखूची तुम्हें जरूर डर लग रही है। मैं कहता हूँ जब तक तुम ये शरीर के कपड़े भी खोलकर न रख दोगे तब तक तुम उसके रहस्य

के भीतर प्रविष्ट न हो सकोगे।"

"कमलम चलो।"

"अपनी आत्मा के निकट जाने की इच्छा है और कुछ साथ न लो जाई।"

रिचर्ड ने तमाम आसक्तियों के बंधन काट दिए। बड़ी सहज गति से वह मकान के बाहर हो चला— चलो भाई।"

दोनों मकान के बाहर चल दिए। कुछ पड़ोसी रिचर्ड के दुख में समवेदना प्रकट करने आ रहे थे। वे बोले—"हम तुम्हारे यहाँ आ रहे हैं तुम कहाँ चल दिए ?"

"तुम आओ वहाँ चूल्हे में आग है केतली में पानी बरतन के पैसे में मक्खन है आटा है मटके में छाछ है। जिसे जो रुचे खा पी लेना।"

"तुम कितनी देर में आओगे ?" एक ने पूछा।

"कमलम मुझे ले जा रहे हैं जब छोड़ दें।

दूसरे ने कहा— "मकान तो खाना ही है तुम्हारा ?

"कमलम बन्द कर गए न इन्होंने मुझे एक अनुभव दिया। मुझे ताला लगाकर किसी का कौतूहल बढ़ाना नहीं है।"

पड़ोसी समझे शायद उन दोनों ने अपना दुख भुलाने के लिए खूब शराब पी रखी है। उन्होंने रिचर्ड के घर जाकर बहुत देर तक प्रतीक्षा की। वे नहीं लौटे। रात हो गई तब भी उन दोनों में से किसी का पता न था। पड़ोसियों ने समझा जरूर उनका दिमाग खराब हो गया। उन्होंने रिचर्ड का मकान बन्द कर उसमें ताला लगा दिया और अपने अपने घर चले गए।

जब उनका दूसरे दिन भी कोई पता न चला और भी कई दिन बीत गए तब तो उनके विश्वास का अनुमोदन हो गया।

रिचर्ड और कमलम—सचमुच उन दोनों को कुछ हो गया था। वे बराबर चलते चलते के उस शीत प्रदेश के एक ऐसे मठ की ओर आ गये जहाँ का नाम लेते ही वे साधारण मनुष्य भय से काँप जाते

आठ-दस दिन उन्हें यात्रा करते हुए हो गए। दिन भर चलते। रात को किसी गाँव में रुक जाते। लोग उनका अतिथि-सत्कार करने में कोई कसर नहीं करते थे। कनजन और रिबूची दोनों की ही दूर-दूर तक अच्छी प्रसिद्धि थी।

दसवें दिन रिबूची चलते चलते थक गया था। सन्ध्या बीत चुकी थी और रात का अन्धकार विषम तीव्रता से बढ़ चला था। उसने घबराकर कहा—"कनजन क्या ऐसा नहीं हो सकता ?" कनजन की चढ़ी भौंहों को देखकर उसने अपना प्रश्न पूरा नहीं किया।

कनजन ने हँसकर कहा—"क्या कहते हो ?

रिबूची—"मैं पूछता हूँ कभी ऐसा भी तो हो सकता है हमें रात के विश्राम के लिए कोई गाँव न मिले।

कनजन—"उस रात को हम चलते ही रहेंगे वह कब तक न मिलेगा ?"

रिबूची रुककर बैठ गया—"कनजन तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"मैं कहता हूँ पंगो लामा साधारण मनुष्य नहीं है।"

"उनका नाम लेने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

"वह असाधारण पुरुष हैं। हम उनकी ही इच्छा से उनके मठ को जा रहे हैं।"

रिबूची ने चौंककर कनजन को देखा।

"हाँ इसमें जरा भी संशय नहीं। मैंने पंगो लामा को उस रात तुम्हारे आँगन में देखा जिस रात मैं भट्टी में दवा फूँक रहा था।"

"पंगो लामा वहाँ कैसे आ गए ?

"तुम्हें नहीं मालूम है उनका मत। देश और काल उनकी दृष्टि में कोई भी बाधा नहीं है। वे चाहे जहाँ क्षणों में जा सकते हैं। जिस प्रकार हम विचार और स्मृति की सहायता से भूत और भविष्य में जा सकते हैं—उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम में प्रवेश कर सकते हैं वह वैसे ही अपने प्रत्यक्ष शरीर को लेकर जा सकते हैं मन की सहायता से। हमारा

केवल मन ही देश-काल को पार कर सकता है वह अपनी दसों इन्द्रियों को साथ लेकर चले जाते हैं कहीं भी।"

"उन्होंने क्या कहा तब तुमसे ?"

"उन्होंने मुझसे कहा—रिभूची की सभी दूसरे दिन भर जायगी।"

"हूँ ! तुमने मुझे क्यों नहीं बताया ?

"उनकी आज्ञा नहीं थी।"

"और क्या कहा उन्होंने ?"

"यही कि रिभूची को लेकर शीघ्र ही पाक वन में स्थित मेरी गुफा में आ जाना।

"उन्होंने क्यों बुलाया है हमें ?

"इस प्रश्न पर तो हमें विचार करना ही नहीं है। वह अवश्य ही हमारे कल्याण के लिए है रिभूची।"

"मुझसे तो अब चला ही नहीं जाता।

"तुम चलोगे रिभूची अवश्य ही चलोगे।

"किसके सहारे से ?"

"सत्य के सहारे से।"

"गुफा अभी कितनी दूर है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"फिर कैसे लक्ष्य प्राप्त होगा ?"

"पूछते-पूछते ही तो चले जा रहे हैं।"

"यह घोर शिशिर, पैर श्रम से थके हैं, पेट में क्षुधा और आकाश से पाला गिर रहा है।

"यह सब एक कल्पना है रिभूची मैं तुमसे सच कह रहा हूँ। मन को इन सब बाधाओं से हटाकर कहीं दूसरी जगह रख लो।

"कहाँ रख लूँ ?

"अवश्यम्भावी मृत्यु की गोद में।"

"हमसन तुम्हें न जाने उस रात से क्या हो गया ?"

"यह सच ही है रिमूची चलो उठो।"

इतने ही में दूर पर एक उजाला दिखाई दिया। रिमूची उठ गया। बड़े उत्साह से वह बोला—'वह देखो वह प्रकाश है।'

"हाँ अवश्य ही वह हमें ढूँढने आया है।

"हमें क्यों ढूँढेगा ?

दोनों उस प्रकाश को लक्ष्य कर आगे बढ़ने लगे। वह एक गाँव का युवक था।

कलजन ने उससे पूछा—"तुम किसे ढूँढ रहे हो ?

हमारी दो बकरियाँ आज नहीं आई। उन्हीं की खोज में हूँ।

"गाँव कितनी दूर है ?

युवक को हठात् थोड़ी दूर पर चरती हुई बकरियाँ दिखाई दीं। वह बोला—ये मिल गई मुझे। चलो मेरे साथ ही चलो। मैं अभी इन्हें हाँक लाता हूँ।

रिमूची और कलजन वहीं खड़े रहे। युवक दोनों बकरियों को हाँक लाया और वे गाँव की ओर चले।

मार्ग में कलजन ने पूछा—"कितना बड़ा गाँव है ?"

युवक ने जवाब दिया—"अगर बकरियाँ भेड़ों और बकरियों के बाड़ों को मकान नहीं गिना जाय तो सिर्फ एक ही मकान का गाँव है।

रिमूची ने कहा—"बहुत छोटा!

कलजन ने उत्तर दिया—"और क्या? मनुष्य को खाने के लिए दाना चाहिए। हम महाशा से बहुत ऊपर आ गए हैं। यहाँ तो शायद साल-भर में जौ की भी कोई फसल न होती होगी।"

युवक ने कलजन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"जौ क्यों नहीं होता? हमारे खेतों में बहुतायत से होते हैं। खासे आम ही आमी है।"

युवक—"बरफ कितनी गिरती है ?"

—"खूब।"

?"—रिमूची ने पूछा।

"मैं और मेरी माता केवल दो ही मूर्तियाँ।"—उसने प्रत्युत्तर में कहा।

रिंपूची ने पूछा—"चंपो लामा का मठ अभी और कितनी दूर है?"

"तीन पहाड़ के रास्ते दो दिन की राह और घूमकर पाँच दिन की।" उस युवक ने कहा—"और कभी-कभी तो आदमी चलता ही रह जाता है मठ का पता ही नहीं लगता।"

रिंपूची ने पूछा—"पता कैसे नहीं लगता? मनुष्य कहीं छिप सकता है मठ कहाँ जा सकता है?"

"यही तो उनकी सिद्धि है" चमजन ने कहा—"मेरे मन में उनके दर्शन का इतना उत्साह हो गया रिंपूची चलो अभी क्यों न चलते ही रहें। रात हमारे मार्ग की बाधा है और नींद हमें वास्तव जगत से बहकाकर स्वप्न की सृष्टि में फँसा देती है।"

"मेरी तो सारी देह चूर चूर हो गई भाई। खाने को नहीं चाहिए मुझे नींद तो चलते चलते ही आने लगी है।"

हाथ टूटा

५ व फूल की पखुरी की भाँति भूमि पर कूद पड़ा तीव्र गति से दौड़ती हुई रेल से। उसके मन में कोई भय और आशंका नहीं थी। लेकिन उसका साथी भैरव—भ्रु अधिकारी उसके मन में पहले ही से डर का समावेश था। यह पहला ही दिन था उसका। कभी एम खेल खेले नहीं थे उसने।

मन-ही-मन माता की जय पुकारकर ज्योंही वह खिड़की से कूदा था कि नीचे भूमि पर उसे एक घनी छाया में किसी कार्ड का धोखा हो गया। रक्षा की जिम्मेवारी को उसने किसी दूसरे पर रख दी थी झट से छीनकर अपने ही हाथों में ले ली।

वह भूमि पर पैरों के बल गिरने के बदले दाहिनी करवट से गिर पड़ा। उसका दाहिना हाथ दब गया नीचे दो-तीन ईंटें पड़ी थीं। भैरव चिल्ला उठा—"हे भगवान!"

रू व दौड़कर उसके पास आ गया। उसने पूछा—"भैरव! क्या हो गया?"

"गिर पड़ा हूँ ईंटों में। बड़ी जोर की चोट लग गई।"—रोते हुए भैरव ने कहा।

"कहाँ लगी?"—कहते हुए रू व उसे उठाने लगा।

"ओ ऽ ऽ इधर हाथ न लगाओ। बड़ा दर्द है। नहीं जानता हाथ कट गया या टूट गया!"

रू व ने अच्छी तरह देखकर कहा—"कटा होता तो खून निकलता।"

ने धीरे-धीरे उसको सहारा देकर उठाना चाहा।

"नहीं नहीं उठाओ मत मर जाऊँगा।"

"अपने आप उठो भैरव। कुछ चोट तुम्हारे लग गई इसमें कोई शक नहीं लेकिन तुम बहुत बहादुर हो।

"नहीं कुछ नहीं है। मेरी ही गलती से यह चोट लगी।

मैं तुम्हारे साहस को देखकर प्रसन्न हूँ। इस अँधेरे में चलती रेल से कूद पड़ना आसान बात नहीं है। बहुत थोड़े से लोगों में ऐसा साहस होता है। यह तुम्हारी पहली परीक्षा थी और तुम इसमें बहुत अच्छा तरह सफल हो गए। शाबाश!"

"लेकिन यह दाहिना हाथ ऐसा जान पड़ता है यह मेरा नहीं रहा। अब क्या करूँ प्रभु इस भयानक जंगल में हमारा कौन है?"

"ऐसे दिल नहीं छोड़ा जाता। मैं हूँ तुम्हारा सब कुछ और यह भगवान है। कोई चिन्ता न करो। उठने की कोशिश करो।

बड़ी मुश्किल से द ज ने भैरव को उठाया और हाथ की उँगलियों की मुट्ठी बाँधने को कहा। नहीं बँधी उससे। द ज ने अपनी झोली में से एक लम्बी धोती और उसके हाथ को बाँध दिया। इसके अनन्तर दूसरा भाग फाड़कर हाथ स्लिंग में रख दिया।

ठंडी साँस लेकर भैरव ने कहा—"अब क्या होगा?"

"साहस रखो। घोर कठिनाई के बीच में जो हँसते ही रहता है, वही सच्चा वीर है। बिलकुल न घबराओ यह मेरा परिचित प्रान्त है। इसके जंगल और गाँवों को मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

"जाऊँगा कैसे?"

"मेरी पीठ पर चलो।

नहीं हाथ में चोट है पैर तो ठीक ही है। मैं चलूँगा मित्र! तुम आगे-आगे चलो। मैं तुम्हारी पीठ पर हाथ रख लूँगा। मुझे इतने ही सहारे की जरूरत है।"

दोनों चलने लगे। द ज के पास एक झोला था उसमें एक मोटा एक धोती-अँगोछा था। भैरव के पास कुछ भी न था।

मुखिया जी का सेवक एक कटोरी में कड़वा तेल ले आया। माधो ने उसमें कुछ नमक पीसकर मिला दिया। उसने भैरव से कहा—"कुछ भी दर्द नहीं होगा। आप दर्द का बिलकुल ख्याल ही छोड़ दें।"

लेकिन भैरव ने माधो को हाथ नहीं लगाने दिया। मुखिया ने कहा—"चेहरे से तो आप हमें बड़े साहसी जान पड़ते हैं। एक ही क्षण की बात है। एक ही झटके में हड्डी जगह पर आ जायेगी।

माधो ने मिश्री का टुकड़ा मँगाया। कुछ उसे पीसकर पानी में घोला और एक टुकड़ा भैरव को देकर कहा—"इसे आप मुँह में लेकर दोनों जबड़ों के बीच में दबाकर तोड़िए। मैं कहता हूँ आपको जरा भी दर्द नहीं होगा।" उसने धीरे-धीरे तेल के हाथ से फिर भैरव के हाथ को मुसकुराया— देखिए, एक बात पक्की है। हड्डी को अपनी जगह में आना है जरूर आना है। जितनी देर होती जायगी उतनी पीड़ा से यह काम होगा। तब अभी क्यों न हो?

भैरव बोला—"वैद्य, सुख-दुख केवल मन की कल्पना है। नहीं पीड़ा नाम की कोई वस्तु नहीं है और चैन नाम की भी कोई स्थिति नहीं। तुम इन दोनों से ऊपर के जीव हो।

माधो ने कहा—"यह मिश्री का टुकड़ा मुँह में लीजिए। जब मैं कहूँ तब इन दोनों जबड़ों के बीच दबाकर तोड़िए। जितनी देर में यह टूटेगा सिर्फ उतनी ही देर के लिए आपको एक टीस-सी जान पड़ेगी—फिर बिलकुल ठीक हो जायगा।

भैरव ने माधो की बात का विश्वास किया। उसने मिश्री का टुकड़ा मुँह में रखा।

माधो ने अपनी आँखें भैरव के मुँह पर रख कर उँगलियों से उसकी हड्डी टटोली। उसने कहा—"हाँ जोर से दोनों जबड़े मिला दीजिए।"

भैरव ने ज्योंही जबड़े मिलाये उसी समय माधो ने बड़े कौशल से खिसकी हुई हड्डी ठीक जगह पर लगा दी। भैरव को अधिक पीड़ा नहीं जान पड़ी। उसका ध्यान कुछ मुँह के गौड़े पर रह गया था कुछ मिश्री

को तोड़ने में ।

भैरव की हल्की-सी चीख पर माधो ने कहा—"अब कैसा दर्द ? अब तो आपकी हड्डी जगह पर जम गई ।"

भैरव के मुख पर मुसकान छा गई—"हाँ, अब तो कहीं नहीं जान पड़ती पीड़ा ।"

माधो बोला—"उँगलियाँ हिलाइए ।"

भैरव ने सभी उँगलियाँ सभी सम्भव कोणों पर घुमा दीं ।

"बिलकुल ठीक हो गया हाथ । लेकिन कुछ सतर्कता लेनी ही पड़ेगी दो-चार दिन ।"—उसने हाथ में पट्टी बाँध दी और हाथ फिर स्लिंग में ही लटका दिया ।

मुखिया जी हँसे—"बाबा पद्मनाभ की सकल देखकर शायद पहले आप लोगों को यह अन्दाज नहीं हुआ था कि यह इतनी जल्दी आपकी पीड़ा हर लेगा ।"

भैरव की पीड़ा बिलकुल चली गई थी । उसने कहा—"इन्होंने तो यह एक जादू-सा कर दिया ।"

माधो ने कहा—"जादू-वादू कुछ नहीं गुरु महाराज की कृपा है । मेरे मन में कोई स्वार्थ नहीं है, इससे अच्छा कर देता हूँ ।"

"कुछ नहीं लेते किसी से ?"—इन्दु ने पूछा ।

"नहीं, कुछ नहीं । गुरु महाराज की आज्ञा ऐसी ही है ।"

"मैं तुम्हें एक कठहठी अज्ञान ही समझता था, जो केवल अपने बाहरी झाड़-फूँक के बखान में ही दिन बिताता होगा । तुम्हें तो मनोविज्ञान का ज्ञान है ।"—भैरव बोला ।

"क्या मनोविज्ञान ? कुछ नहीं पढ़ा-लिखा मौड़ हूँ मैं ? ऐसे ही टटोल-टटोलकर अपना काम चलाता हूँ ।"—माधो ने बड़ी विनम्रता से कहा ।

इन्दु कहने लगा—"तुम जिज्ञासी विद्या को कोई चीज
अपनी विद्या की लहरें वायुमण्डल में ही व्याप्त रहती

ज्ञान के माध्यम से प्राप्त नहीं होतीं । वे प्राप्त होती हैं सदाचार द्वारा । परोपकार की वृत्ति ही सबसे बड़ा सदाचार है । जीव-मात्र पर प्रेम करने वाले को अनेक सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं ।

सभी ने इस बात को माना । मुखिया जी ने सबके लिए भोजन का प्रबन्ध किया लेकिन माधो बोला—"मुखिया जी मुझे तो आज्ञा दीजिए ।

भैरव ने भी आग्रह किया लेकिन माधो नहीं माना किसी गाँव में उत्सव था उसके संयोजन के लिए जाना था । वह चला गया । खा-पीकर मुखिया जी की कृतज्ञता स्वीकार कर भैरव और मास्टर जी भी जाने को तैयार हो गए ।

मुखिया जी ने एक रात आराम कर लेने को कहा । लेकिन भैरव को माता जी के दर्शन की लालसा हो रही थी । वह बोला—"मेरी पीड़ा बिलकुल ठीक है । मैं यात्रा के सर्वथा योग्य हो गया हूँ फिर कुछ साथ में बोझ तो है नहीं ।"

मुखिया जी हँस पड़े तब उसी समय उनका एक चाकर भीतर से डलिया में कुछ लेकर वहाँ पर उपस्थित हो गया और भैरव की ओर उस डलिया को बढ़ाने लगा ।

भैरव भी हँस पड़ा—"मैं तो सोच रहा था साथ में कुछ बोझ है नहीं । यह क्या है ?"

मुखिया जी ने कहा—"कुछ फल और थोड़ा-सा पकवान श्रीमती ने भेजा है आप लोगों के रास्ते के लिए । पाँच छः दिन की यात्रा है ।

भैरव बोला—"लेकिन हमें एक लोटा और धोती के सिवा और कुछ रखने की आज्ञा नहीं है ।

मुखिया जी ने कहा—"आपके साथी भैरव जी तो अभी आपके मठ में भरती नहीं हुए हैं ।

भैरव ने कहा—"लेकिन इनके हाथ में चोट है और कुछ दिन आराम जरूरी है ।"

मुखिया जी ने फिर अनुरोध किया—"दूसरा हाथ तो ठीक ही है ।"

भैरव ने वह हाथ बढ़ाकर डलिया लेते हुए कहा— 'मुखिया जी आपका यह स्नेह हमें स्वीकार करना ही होगा इतनी प्रीति और प्रतीति से दिया गया आपका यह उपहार कदापि हमारे कष्ट का कारण न होगा।"

मुखिया जी बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाकर लौट गए। १ व ने भैरव से कहा—"टोकरी भारी लगती है तो मुझे दे दो।"

भैरव हँसा— तुम्हारा नियम टूट जायगा।

"नहीं दूसरे की सहायता करना हमारा प्रथम धर्म है। इस टोकरी के भीतर की किसी चीज पर मैं ममत्व न रखूँगा। —१ व ने हठपूर्वक भैरव के हाथ से वह टोकरी ले ली।

पाँचवे दिन वे लोग बिलकुल पहाड़ों के निकट पहुँच गए। पर्वत की ऊँची-नीची भूमि वनों की भाँति भाँति के जड़ी-बूटी और फल-फूलों से भैरव के उद्विग्न मन को बड़ी शांति मिली। नाना प्रकार के नई-नई जाति के वृक्षों में मनोखे पक्षी अपन तरह तरह के रंगों और मीठे स्वरों से उस एकान्त में रस की वर्षा कर रहे थे।

मैदान की यात्रा से अब पर्वत का आरोहण कठिन श्रम मांगने लगा था लेकिन सुवासित पवन की शीतलता ने जलना ही उस श्रम को सहज कर दिया था। हर ऊँचाई पर एक क्षितिज की सम्भावना और प्रत्येक मोड़ पर एक अनोखे दृश्य के कौतूहल में मन विमस्त हो गया था।

कभी उनका मार्ग पर्वतों की चोटी पर चला जाता था कभी नीचे उतरकर किसी नदी की मनोहर घाटी मिल जाती थी। पर्वतों की कठिनाई को काटकर सोपान-श्रेणी-जैसे बना। उनके बीच में छोटे-छोटे गाँव कहीं भारी भारी शिलाखण्डों के मध्य में होकर बहती हुई राप गर्जन भरी पहाड़ी नदी। कहीं-कहीं हवा के झोंकों में हिलते हुए पेड़ों से निकलती हुई आवाज।

अब वे और भी ऊपर चढ़ गए ठण्डक बढ़ गई। एक नए ही वातावरण के बीच में अपने को पाकर भैरव प्रसन्न हो उठा। १व

नीची छायाओं से संयुक्त हिमालय की रजतशुभ्र कांति देखकर वह मुग्ध हो गया। प्रकृति की उस विलक्षणता से उसकी भावना में बड़ा अन्तर पड़ गया।

उसने बड़े शहरों की उस भीड़ कोलाहल और जीवन के संघर्ष को याद किया उसे पार्श्व में रखकर फिर उसने हिम से समुद्भासित एकान्त पर विचार किया। मानवी आकांक्षा के पद वहाँ पर नहीं जाते थे। अपना स्वार्थ वहाँ उसे भूला गया। केवल उस रहस्य से भरी प्रकृति के स्रष्टा को ढूंढने के और उसके कोई कामना ही नहीं रह गई थी।

मैत्रेय ने मन्त्र-मुग्ध होकर कहा— इन्द्र तुमने मठ के लिए इतना सूना एकान्त क्यों चुना ?

विचार की शुद्धि के लिए।”

“ऊँचाई पर क्या विचार शुद्ध रहता है ?”

हाँ इन पर्वतों को देखो।”

“हाँ ये निःसन्देह मनोमुग्धकारी हैं।”

और भी तो एक बात है। ज्यों-ज्यों ये ऊँचे होते गए हैं त्यों-त्यों जीवन की कठिनता बढ़ती गई है इन पर। अन्त में एक ऊँचाई पर ये बिलकुल ही निर्जीव हो गए हैं। सारी अपेक्षा त्यागकर ये एक कैवल्य की प्रतिमा बन गए!”

“मैं नहीं समझा।

“समझा तो मैं भी कुछ नहीं हूँ।”

“फिर किस आधार पर तुमने यह सब कहा ?

“एक बाहरी वर्णन है, मित्र। मेरा मतलब महाकाल शिव की इस विहार भूमि से है। इसके सनातन हिम में कोई भी बीज अंकुरित नहीं हो पाता। इसलिए पक्षियों को खाने को दाने नहीं मिलते न घोंसले बनाने को तिनके ही प्राप्त होते हैं। केवल एक रंग की शुभ्रता जो समय-समय धूप के भेद से सूर्य की सातों किरणों को प्रतिफलित कर देती है। केवल

एक श्वेत प्रीत की प्रधानता जो अपने सिवा किसी दूसरे को नहीं रहने नहीं देती।"—४ प ने जवाब दिया।

भैरव ने कुछ समझने का-सा नाट्य किया। उसने पूछा—"मठ से हिमालय कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर।

"मठ में कितनी सरदी पड़ती है ?"

"अधिक नहीं।

"हिम गिरता है ?

"गिरता है जाड़ों में पर ठहरता नहीं।

"मठ कितना बड़ा है ?

"पूरा गाँव है एक।

"कितने लोग हैं मठ में ?"

"साधकों की संख्या तो सैकड़ों है, परन्तु सभी वहाँ नहीं रहते। अपने-अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए देश-देशान्तरों में फैले रहते हैं। सौ-पचास वहाँ भी रहते हैं।

भैरव ने पूछा—"उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध कहाँ से होता है ?

"वे सब अपने-आप उपजाते हैं। वहाँ खेती होती है। सब खेती करते हैं। गायें पाली जाती हैं।

"जो जरूरी चीजें वहाँ नहीं होतीं, उनके लिए क्या दूसरे देशों से व्यापार करते हैं ?"

"व्यापार तो नहीं करते पर वे चीजें कहीं-न-कहीं से प्राप्त हो ही जाती हैं। कुछ भिक्षा में कुछ माता जी के भक्तों द्वारा भेंट में मिल जाती हैं। जो चीजें नहीं मिल सकतीं हम उनकी जरूरत ही नहीं रखते।"

"मुझे कहाँ नियुक्त किया जायेगा ? मठ ही में रहूँगा या कहीं अन्यत्र ?"

"प्रत्येक नए साधक को कुछ समय तक वहीं मठ में रहकर अध्ययन

और अभ्यास करना पड़ता है उसके बाद ही उसे कोई काम सौंपा जाता है। तभी वह बाहर आता है।"—५ ज ने जवाब दिया।

भैरव का हाथ अब बिलकुल ठीक हो गया था। जब वे लोग मठ के निकट आ पहुँचे तो उसने पूछा—"आज शाम तक पहुँच जायेंगे हम मठ में ?

"हाँ।"

"तो मैं अब इस हाथ की पट्टी को खोल देता हूँ।

"अभी रहने दो।

नहीं यह मेरा एक कलंक है। हाथ तो अब बिलकुल ठीक हो गया। फिर क्यों मैं इतना दुखल बनकर मठ को जाऊँ ? माता जी इसे देखकर कोई अच्छे विचार न बनायेंगी मेरे लिए अपने मन में।"

५ ज ने हँसकर कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो।"

भैरव ने पट्टी खोल दी। उसने हाथ को चारों ओर घुमा फिराकर देख लिया। अब उसमें कोई कसर नहीं रह गई थी। ५ ज ने भी उसकी बात का अनुमोदन किया।

मुखिया जी की दी हुई टोकरी के फल-फूल उन दोनों ने मिलकर उसके दूसरे दिन ही समाप्त कर दिए थे। उसके बाद वे लोग जहाँ भी ठहरते उनका अच्छा अतिथि-सत्कार होता। फिर भैरव ने कहीं से खाने पीने की चीजें साथ बाँधने की कामना नहीं रखी।

५ ज ने कहा—"खाने-पीने की चीजों का संग्रह हमारी दूरदर्शिता समझा जाता है। देखा जाय तो यह हमारा अपत्व है ?

भैरव की समझ में यह तर्क गढ़ा नहीं। उसने दुविधा में पड़कर करवट लिया थी।

५ ज बोला—"एक छोटी-सी चींटी से लेकर बड़े-से-बड़े हाथी के पेट भरने का जिम्मा भगवान् का है। हम भोजन का संग्रह कर उसकी सत्ता को अस्वीकार करते हैं।"

संध्या से कुछ पहले ही वे दोनों भिक्षु मठ में पहुँच गए। दूर से

भैरव ने देखा वह एक साधारण-सा गाँव था।

"यही है क्या मठ ?"

"हाँ।"

"माता जी किस मकान में रहती हैं ?

"धीरे-धीरे मालूम हो जायगा।"

दोनों जाकर मठ में पहुँच गए। भैरव को गाँव के बाहर के एक मकान में ठहरने को कहा गया। भैरव ने कहा— "माता जी के दर्शन ?

इम ने जवाब दिया— "उनकी इच्छा पर ही उनके दर्शन होते हैं।"

"यह तो बड़ी विचित्र बात है।

"उनका नियम ही ऐसा है। वह बिलकुल बाहर नहीं निकलतीं। एकान्त में साधना करती रहती हैं।

"भक्त कहाँ उनके दर्शन करते हैं ?"

"जब वह आज्ञा देती हैं तब वहीं जाना पड़ता है।"

"वह कब आज्ञा देंगी ?"

"पहले तुम्हारी परीक्षा होगी उसके अनन्तर।"

भैरव ने कहा— मित्र इस समय तो तुम बड़े रूखेपन से उत्तर दे रहे हो। मार्ग में जब तुमने प्रारम्भ में बातें की थीं तो तुम बड़े सहृदय जान पड़ते थे।"

इम कहने लगा—"ऐसा न समझो बन्धु, मैं तुम्हारे लिए वही हूँ। अब हम मठ के वातावरण में आ गए हैं। यहाँ का बड़ा कड़ा अनुशासन है। हर समय बहुत सावधान होकर रहना पड़ता है। मुझे अभी माता जी के सामने जाकर अपनी यात्रा का सारा कार्यक्रम रखना है मैं उसी के ध्यान में पड़ा हूँ।"

"अब तुम कब आओगे ?"

"जब समय मिलेगा। मैं माता जी के पास जाते ही अभी तुम्हारे समाचार दूँगा।"

"मुझे नहीं ले जा सकते उनके पास ?"

'बिना उनकी आज्ञा के नहीं।

"तब तक मैं यहाँ क्या करूँ ?"

"बहुत सावधान और सतर्क होकर रहना कि कहीं तुम अयोग्य समझकर यहाँ से निकाल न दिए जाओ।

'सावधानी कैसी ?

'यहाँ भावना के विकृत होने पर भी मानव-पतन माना जाता है। इसलिए कर्म की तो बात ही जाने दो तुम्हें भावना में भी पवित्र रहना है।

"कैसे है तुम्हारी भावना की पवित्रता ?

सारा संसार केवल भाई के रूप में है उसके साथ और हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

"अच्छी बात है।

'भूतकाल और यहाँ के अतिरिक्त दूसरे देशों की स्मृति को बिलकुल अपने अन्तर पटल में न घुसकर मिटा दो। केवल वर्तमान में निवास करो। भविष्य के लालच और उसकी आशा के साथ भी क्रीड़ा न करना।

"क्यों भविष्य क्या बुरा है ?"

"भविष्य हमारे हाथ में नहीं है। यदि भविष्य को तुम अपने मन सूत्रों से रँगना शुरू करोगे तो धोखा खा जाओगे। —वह जाने लगा।

भैरव ने आतुर होकर कहा—'ठहरो मित्र अभी जाओ नहीं। कुछ और पूछना है मुझे।

'जल्दी करो अब देर हो रही है।

भैरव बड़ा अधीर हो उठा। रोने के स्वर में पूछने लगा—बन्धु अन्तराल में गहरे पड़े हुए मानस के चित्रों और अक्षरों को कैसे खोदकर मिटा दूँगा ?

"तप से वाणी से और दृढ़ इच्छा से।

"यह कैसे ?"

'माता के नाम की दुहाई। जब संकट में पड़ो ओर ओर से माता की जय पुकारो।

'और भविष्य के बनते हुए चित्रों को कैसे मिटा दूँगा।"

"माता का नाम ही मन्त्र है। प्रारम्भ में धीरे धीरे नहीं जोर-जोर से करना पड़ेगा बाद को जब उसमें मन पकड़ जाने तो स्वय ही धीरे धीरे हो जायगा फिर तो वह तुम्हारी सांस में बसने लगेगा। माता की जय हो!" ५ क जाने लगा— माता की जय हो यही हमारे मठ में सिद्धि की चाबी है। इसी जय-नाद पर हम एक-दूसरे से मिलते बिछुड़ते हैं और इसी पर निरन्तर हम सोते और जगते हैं—माता की जय हो!

भैरव ने भी हाथ जोड़कर कहा—"माता की जय हो!"

५ क वहाँ से न जाने कहाँ को चला गया। भैरव उस एकान्त कुटीर में अकेला ही रह गया। उस कमरे में कोई साज-सामान नहीं था। भूमि पर एक कोने में एक चटाई के ऊपर कम्बल बिछे हुए थे। कुछ वहीं पर लपेट कर रखे हुए थे। एक कोने में एक सुराही और लोटा था दूसरे में एक आग की सिगड़ी।

धरती पर सन्ध्या के रंग फैलकर कालिमा में सिमटने लगे थे। भैरव कुटीर के बाहर चला गया। रमणीक नदी की घाटी थी। उसका कुटीर सबो के बीच में अकेला ही था। नदी भी समीप ही थी। बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी थी। उसके ऊपर बहुत से मकान थे। एक बहुत ऊँचा मन्दिर-सा ज्ञात होता था उसके ऊपर का कलश अब भी चमक रहा था। नदी उस पहाड़ी के आधार को ही चाटती ज्ञात हो रही थी। और भी इधर-उधर कई मकान थे। पहाड़ी पर जाने के लिए सोपान-पंक्ति बनी हुई थी। भैरव को ऐसा ज्ञात पड़ा अवश्य ही माता का निवास उसी पहाड़ी पर है।

उस पहाड़ी के पीछे और विशाल पर्वत खड़े थे। कुछ घने जंगलों से भरे थे कुछ हरियाली से विहीन थे। उनके पीछे और भी धूसर रंगों

से खोए हुए पर्वतों के विशाल आकार थे। सबसे पीछे और ऊँचाई पर हिमालय पर्वत की श्रेणियाँ जान पड़ती थीं। सूर्य की सुनहरी किरणों का आभास अब भी उन पर दिखाई दे रहा था।

उसका कुटीर छप्पर का बना ही था, लेकिन उसके साथ और भी कई कमरे सम्बद्ध जान पड़ते थे। कुछ में से धुआँ आ रहा था और कुछ में गायें और बछियाँ रम्भा रही थीं। सभी कुटीर चारों ओर दीवारों से घिरे हुए थे।

भैरव ने देखा, चारों ओर खेतों में कई प्रकार के अन्न थे—कुछ फलों से परिपूर्ण थे, कुछ में निरावरण बालें दिखा देने के बाद प्रकट फूटने शुरू हुए थे, कुछ के वृक्षों में श्वेत और कुछ के रक्ताभ-नीलिमा मिश्रित फूल खिल रहे थे। भैरव ने अनुमान लगाया कि पहाड़ी फल फूलों के पेड़ होंगे। उनके फलों को खाया होगा उसने पर पेड़ और फूलों से कोई पहचान न थी उसे।

खेतों में जौ और गेहूँ लहलहा रहे थे। कहीं सरसों की क्यारियाँ में पीतिमा फैलने लगी थी। धरती पर से धूप जा चुकी थी लेकिन आकाश में कुछ रेशमी और मखमली बादलों के रंग नाना प्रकार के चित्र बना-बनाकर मिटते जा रहे थे और वृक्षों से पक्षी समवेत स्वर से गा रहे थे और कहीं आकाश में उड़ते हुए बड़े मनोरम प्रतीत हो रहे थे।

बड़े धीर और निश्चित चरणों से नए रंगों के और नए स्वरों को लिए हुए ऋतु आ रही थी। भैरव ने अनुमान लगाया उसके साहब देश से यह मौसम पर नहीं आती। वह कुछ देर तक आत्म-विस्मृत होकर प्रकृति के उस माया-जाल में फँसता ही रह गया। अँधेरा अब बढ़ चला था। उसने देखा सामने से आई त्रिशूलधारी एक हाथ में दीपक और दूसरे में धान की पोटली लटकाए उसके कुटीर की दिशा में जा रहा। भैरव उसके आने से पूर्व उस कुटीर के भीतर चला गया।

१५

त्रिशूलिनी

भैरव के भीतर आते ही वह व्यक्ति भी वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने कहा— "माता की जय।"

भैरव ने भी हाथ जोड़कर उसके अभिवादन को लौटाया— "माता की जय।"

उसने आकर हाथ के दीपक से उस कुटीर के दीपक को प्रज्वलित कर दिया और उस कोने में रखी हुई अंगीठी में अपनी चिमटी से बने हुए कोयले रख दिए उसके कोयले सुलगाने भर को। उसके हाथ में जो त्रिशूल था उसे उसने भूमि पर नहीं रखा, हाथ ही में लिए-लिए उसने अपने दोनों कर्तव्यों को पूर्ति की।

भैरव उस सौम्य मूर्ति को देखता ही रह गया। सने सिर कमर तक लटकती हुई उसकी केशराशि थी लम्बी और भस्म चर्चित। उसके माथे पर भी भस्म की रेखाएँ थीं। बिलकुल पैरों तक लटकता हुआ एक चौड़ी बाँह का कुरता उसने पहन रखा था। उसके मुख में एक अद्भुत तेज प्रकाशमान था उसके सारे शरीर में एक सौन्दर्य फूटा पड़ रहा था उसे ढककर छिपा लिया देने की कोशिश की गई, पर उतना ही हृदयवेधी हो उठा था। भैरव उसके पीन वक्षस्थल को देखकर बड़े विस्मय में पड़ गया।

उसने पूछा—"तुम कौन हो?

"मैं इस मठ का एक स्वयंसेवक हूँ। मेरा नाम भैरव है।"

"भैरव मेरा भी नाम है। बड़ा विचित्र यह नामों का सामंजस्य है। लेकिन तुम्हें देखकर मेरी शंकाएँ जाग उठी हैं। ऐसा जान पड़ता

है तुमने झूठे वेष में अपने को ढका है। वेष ही नहीं तुमने असत भाषा का भी प्रयोग किया है।

"नहीं कोई झूठा प्रयोग नहीं है जो कुछ है सब स्पष्ट ही है।

"स्पष्ट कहां है सुन्दरी! तुम नारी हो और पुरुष की भूमिका में क्या छल नहीं रही हो?"

"नहीं छल रहा हूं।"

"कैसी भाषा है यह?"

"आश्रम की नीति को रखने के लिए उसके नियम की प्रतिष्ठा के लिए, भोले युवक तुम्हें सब ज्ञात हो जाएगा। शीघ्र ही।

"झूठ के प्रसार का यह कैसा आश्रम का नियम है? —भैरव ने पूछा।

"आश्रम का नियम है यहां माता जी के सिवा दूसरी कोई नारी नहीं रहती इसी की प्रतिष्ठा के लिए मैंने यह वेष बनाया है और मैं ऐसी भाषा बोलता हूं।

तुम यह जो पुरुष का अभिनय कर रही हो

"सावधान!" बीच ही में उस भिक्षुणी ने भैरव की बांह पकड़ ली "मेरे इस अभिनय को सत्य का रूप देने के लिए तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।

"क्यों?"

"सारा विश्व एक अभिनय ही है। हमें अभिनय करते-करते ही यहीं सत्य में प्राप्त हो जाना है। मुझे नारी संबोधन देके अथवा नारी समझोगे तो तुम मेरा आश्रम इतना बिगाड़ न कर सकोगे जितना अपना पतन।

"सीखना है इस आश्रम में सिखाने पर अधिक जोर दिया जा रहा है।"

युवक अगर तुम अपनी भावना में अडिग हो तो यह दिखावा तुम्हें कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकेगा। —भिक्षुणी भैरव बोला।

भैरव ने उसकी बात को तौला और वह समझ गया। उसने उत्त
दिया— 'तुम्हारा कहना ठीक है। यही उपदेश मुझे ६ ज मे भी दिया था
तुम ठीक कह रहे हो भैरव यह मेरा भैरव है जो बोला जा रहा था।"

"भावना को वश में रखो कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा तुम्हारा।"—
भिक्षुणी भैरव जाने लगा।

"ठहरो भैरव !

"क्यों ? किसलिए ? मुझे कई जगह जाना है।"

'भैरव ! तुम मेरे नाम की ही प्रतिध्वनि नहीं हो। तुम मेरी
कामना की भी छाया हो। कुछ देर ऐसे ही खड़े रहो।"

'हमें व्यर्थ समय नष्ट करना नहीं आता। तुम्हें भी यही उत्त
सीखना चाहिए।

"केवल एक बात का उत्तर दो।

दूसरा भैरव मुसकराकर बोला— कहो भी तो। ऐसा जान पड़ता
है मानो कहीं तुम्हें देखा भी है।"

'यही मुझे भी लगता है। तुम्हारा विवाह हो गया ?"

भैरव की भौंहों में बल पड़े।

पहला भैरव कहने लगा—"नाराज क्यों होते हो ?

'विवाह नाम का इस मठ में कोई शब्द नहीं है।

"अब तुम कब आओगे यहाँ ?"

"जब काम पड़ जाएगा।"—कहते हुए वह भिक्षुणिनी पुरुष
वेषधारिणी नारी वहीं से चली गई।

भैरव अपने मन में सोचने लगा—"पुरुष के वेष में छिपी हुई ना
नारी राख में दबी हुई आग की तरह से बड़ी भयानक जान पड़ती
मुझे। कैसे यहाँ के साधकों का मन अन्यथा भावनाओं में न टूट जाता
होगा ?"

इसके मुख में कुछ सानुरूपता क्या बाली की नहीं है ? बाली अपने
विश्वासघात के कारण मेरे हृदय से उतर गई, उसकी जगह यह क्यों

रही है ?

अचानक भैरव को याद आया उसका मन अतीत में चला गया था। उसे ४ अ का उपदेश याद आया। उसने अपना मन वहाँ से खींचकर वर्तमान में रखा। वह जोर-जोर से चिल्ला उठा— माता की जय ! माता की जय !!

फिर उसके सामने उसकी भावना में वह त्रिशूलिनी आकर खड़ी हो गई। मन-ही-मन उसने उससे प्रश्न किया— हे सुन्दरी इस शून्यता म ऐसे सूने वातावरण में तुमने क्यों असम भसकर अपम यौवन की हँसी उड़ा दी ?

मानो उसने उत्तर दिया—"हे भोले युवक क्या तुम प्रकृति के ऐसे अटल सत्य को नहीं जानते ? यौवन एक क्षणिकता है एक धोखा है जो आने से पहले ही चला जाता है। कोई उसे बन्दी नहीं कर सकता वह कहाँ को चला जाता है यह भी कोई नहीं जानता।

"बाल्यकाल और वृद्धावस्था भी तो ऐसे ही समय है। व भी तो यौवन के समान ही चंचल है। जब बाल्यकाल में हम क्रीड़ासीन रहे और वृद्धावस्था में असहाय और जर्जर रह जाएँगे तो क्या यौवन का गुण छोड़ दें ? यौवन क्षणिक है इसीलिए तो है सुन्दरी ! क्षण भर यहाँ बैठ जाओ—हम इसकी क्षणभंगुरता का ही एक गीत क्या न गा लें ?

उस कल्पना की सुन्दरी ने उत्तर दिया — 'बाल्यकाल एक विस्मृति की भाव की वृद्धावस्था अंग-क्षीणता की। इन दोनों विवशताओं के बीच में यौवन ही एक ऐसा समय है जब तुम उस जन्म देने वाले प्रभु को पहचानने की कोशिश कर सकते हो। अगर इसी सुविधा में भी तुम हार मान ही ही और प्रारब्ध रह गए तो फिर यह नर जन्म का सुयोग यों ही चला जाएगा।"

हठात् भैरव को कुछ याद पड़ा। वह मन ही-मन बोला— 'अब क्या हुआ ? उधर भूतकाल में बहक गया था तो अब भविष्य के जाल में लगा। नहीं मैं वर्तमान में लौट आता हूँ। उसके मन में फिर

ज़ोर ज़ोर से निकल पड़ा— माता की जय ! माता की जय !!"

उसी समय—"माता की जय !" की पुकार के साथ ही वह त्रिशूली भैरव फिर आ पहुँचा उस कुटीर में। उसके हाथ में कपड़े से ढकी हुई एक थाली थी।

उसने आते ही कहा— भैरव तुम इस कोने में चुपचाप क्यों बैठ गए हो ? आग की सिगड़ी क्या उतनी दूर रहने की है ?

"उसका क्या करूँ ?

क्या तुम्हें यहाँ जाड़ा नहीं लग रहा होगा ? सुबह-शाम तो होता ही है। वह तुम्हारे तापने के लिए ही यहाँ रखी गई है।

"और यह क्या लाए हो ?

"तुम्हारे लिए भोजन। हाथ-पैर धो लो। तुम्हें भूख लग गई होगी !"

तुम बड़े कृपालु हो। —भैरव ने कहा।

"माता के सिवा यहाँ और किसी की कृपा नहीं मानी जाती। उठो भोजन कर लो।"—त्रिशूली भैरव ने कहा। अब भी त्रिशूल उसके हाथ में था। उसने भोजन की थाली को एक चौकी पर रख दिया।

भैरव ने उठकर सुराही में से पानी लिया और हाथ धोने के लिए बाहर चला गया। उसके मन के भीतर नाना प्रकार की विरोधी भावनाओं का तुमुल युद्ध हो रहा था। जब वह हाथ धोकर आया तो उसने त्रिशूली को मुसकराते हुए पाया।

भैरव कुछ हतप्रभ-सा प्रतीत हुआ। वह उससे कोई बात करना चाहता था कुछ भी नहीं कर सका। त्रिशूली चुप ही रहा। भैरव को एक विचार सूझ गया। उसने पूछा— "तुम इस त्रिशूल को हर समय अपने साथ क्यों रखते हो ?"

"क्योंकि यह मेरा रक्षक है।"

"तुम्हें कैसी रक्षा चाहिए ? मूल्यवान आभूषण तो कोई भी तुम्हारे

प्रयोग में नहीं है।

"मेरा त्रिशूल उसमें कहीं बहुत मूल्यवान है। फिर यह मुझे—इसके बीच भूल जरूरी है। कभी इसकी आवश्यकता पड़ सकती है।

किसलिए ?"

"कभी कोई मेरा या अपना स्वरूप भूल सकता है। इसकी सहायता से याद दिला दूँगा।

'तुम इसे कभी भूमि पर नहीं टेकते क्या ?

'यह इसका अपमान है। हाथ में लेने से यह हर समय मेरी चेतना में सजीव रहता है।

माता जी की जटाओं में मैंने सुना है एक भयंकर काला नाग रहता है। क्या यह सच है ?

'क्यों नहीं मेरी जटाओं में भी तो है।

दिखाओ तो। —भैरव उनके पीछे जाने लगा।

त्रिशूली ने तुरन्त ही अपना विशाल हाथ बढ़ाया और उसकी ओर घूमकर कहने लगा— सावधान क्यों उसके नाग होने में समय करते हो ? अरे मूर्ख मानव इसका दंश प्राणघातक है। बच न सकोगे फिर कभी।

"जीवन की मृत्यु के नाश के लिए ही रचना हुई है। मौत से डरना कायरता है। मैं नहीं डरूँगा। तुम्हारा गुण आकर्षण है मैं अपनी दुर्बलता से नहीं तुम्हारी प्रबलता से तुम्हारी ओर खिंच रहा हूँ। यह केवल एक स्वाभाविकता है। इसके लिए तुम मैं क्यों क्रोधित हो ?"—भैरव उस भैरवी की ओर आकृष्ट हुआ।

भैरवी उस समय में दौड़ती हुई कहने लगी— देखो तुम अभी हमारे आश्रम में केवल अतिथि के रूप में हो। अगर तुम्हारी भयंकर झाड़ियों में दीक्षा हो चुकी होती तो इतने ही पाप के लिए तुम्हें पेड़ बाँध पानी में उड़ा दिया जाता।"

'पाप ? कैसा पाप ?"

"पाप ही कैसा और कैसा ?"

"ये दोनों केवल परिभाषाएं हैं।"

"ठीक है, सबकी परिभाषाएँ अलग अलग हैं। सब अपनी रीति से उन्हें मानते हैं। तुम्हें यहाँ रहने के लिए हमारी परिभाषा को मानना पड़ेगा।"

"क्या है तुम्हारे पाप की परिभाषा ?

"तुम मुझे नहीं छू सकते हो। कोई भी मझे छू नहीं सकता भयंकर वादियों के इस मठ में।"

"क्यों तुम अछूत क्या हो ?

"पाप और पुण्य की परिभाषाओं का तर्क साथ नहीं दे सकता। मुझे कोई नहीं छू सकता—यह एक अटल विधान है। इसका अपवादी योगी से उड़ा दिया जाएगा—यह दूसरा सत्य है।"

"और जो मानसिक जगत में तुमको छू लूं ? तुमको पकड़कर अपने मन में छिपा लूं ?—तो क्या होगा ?"

भैरवी ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"वह भी नहीं सम्भव !

"असम्भव है !" भैरव खिलखिलाकर हँस पड़ा—"असम्भव है ! मन की थाह पा कौन सकता है ?

"इस घमण्ड में न रहो ! अभी तुम इस भयंकरवाद की केवल बाहरी परिधि के बाहर खड़े हो। अभी तुम्हें इसके एक रहस्य का भी पता नहीं है।

"कुछ बताओ भी तो।"

"माता के निकट आने पर माता तुम्हारे मन को पुस्तक के पृष्ठ की भाँति पढ़ सकती है। तुम अपने मन के किसी भेद को मन की किसी तह में छिपा नहीं सकते इसलिए मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूं।

"मेरी भावना को माता पढ़ सकती है ? कैसे मित्र बताओगे नहीं ?"

"हम लोग ही भावना की निस्सारता समझते हैं। वास्तव में

भावना ही कर्म का बीज है। जो-कुछ यह सारा भौतिक प्रपंच हमारी इन्द्रियों के सामने है वह भावना का ही प्रसार है। विचार की सूक्ष्मता से ही इस सारी स्थूलता का जन्म हुआ है। जाना था तो।

जा मूँथा तुम चली जाओ।

भैरवी चौंककर बोली—'यह क्या कहते हो? भावना ठीक करो अपनी तभी भावना भी ठीक रहेगी।

'विचित्र सत्य है तुम्हारा। और सामने जो तुम इस आकर्षक नारी रूप को लेकर खड़ी हो वह क्या पुरुष के परिच्छद में बदल गया? सुन्दरी! ऐसे कौन-कौन ठगे जा रहे हैं इस भयंकरवादियों के जाल में मुझे भी तो बताओ। —भैरव ने पूछा।

"तुम फिर अपनी हठ पर चढ़ गए हो। तुम हमारे आश्रम में भरती होने के लिए आए हो-आए हो अभी से उसके प्रति तुम्हारा यह विद्रोह? —भैरवी ने रोष-मिश्रित स्वर से कहा।

'तुम कितना ही क्रोध क्यों न करो मेरे ऊपर। मैं एक बात कहूँगा—तुम मेरी दृष्टि में समझदार हो। नर और नारी—ये सृष्टि के दो भेद हैं एक भेद को बिलकुल मिटा देने से क्या भारी अन्याय न हो जाएगा? लेकिन प्रकृति में कोई अन्याय अधिक दिन नहीं चल सकता। जो प्रतिक्रिया उपजेगी उसमें तुम्हारा यह आश्रम नहीं ठहर सकेगा। शायद इसीलिए तुमने इसका नाम भयंकरवाद रखा है।"

भैरवी हँसकर बोली—"बड़ा कड़ा विधान है हमारा और हम दण्ड देने में बड़ी उग्रता का व्यवहार करते हैं इसीलिए भयंकरवादी हैं।

'दील जायगा फिर, मृत्यु का एक ही दिन तो है।"

'युवक मुझे तुम्हारी विचारणा पर दया आती है और तुम्हारी अवस्था पर भी तो अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम अपने घर को लौट सकते हो अभी सकुशल।

'मैं १ व के साथ प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ और इसके सिवा मैंने तुम्हारे दर्शन कर लिए हैं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा अब।

क्या तुम्हें अपने माता पिता का मोह है ?'

"वे शायद तुम भयंकरवादिता से भी अधिक भयकर हैं।

भैरवी अपनी हँसी को ग्रास बनाकर बोली—'ऐसा अजीब जीव मैंने कोई नहीं देखा अब तक। क्यों तुम्हें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं ?

"तुम्हारे प्रेम के लिए इतनी बड़ी कीमत चुका देने को तैयार हूँ और तुम्हारे फिर भी कोई प्रतीति नहीं उपजती।

"तुम फिर बकने लगे।

"ये मेरे प्रेम के गीत हैं भले ही इनमें कोई ताल और तुक न हो है क्यसि !"

भैरवी की भौंह तन गई—"सावधान! मैं सीधी माता के पास जाकर तुम्हारे विरुद्ध अभियोग रख दूँगा अगर तुम भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा न करो तो।

अगर तुम सक्षम हो जाओ तो मेरे प्राणों के व स्पन्दन कविता और गीत में निकल पड़ेंगे—हे क्यसि !

तुम्हें कोई भय नहीं ?"

'प्रेम निर्भयता ही तो है। भयंकरवादियों के बीच में मुझे कोई भय नहीं है।

'मैं अब तुम्हें कोई अवसर न दूंगा। सीधा माता के पास जा रहा हूँ।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ ?"

'तुम नहीं आ सकते !"—भैरवी अपना त्रिशूल हवा में चमकाती हुई द्रुत पगों से चली गई।

भैरव भोजन पर टूट पड़ा—"भोजन तो सुस्वादु है। इसमें किसी रस का अभाव नहीं जान पड़ता। फिर यह भयंकरवादिता केवल नारी के ही बहिष्कार पर क्यों टूट पड़ी है! देखूँ तो वहाँ वह माता से जाकर क्या कहती है ? जो भी कहे कहने दो। मैं कुछ न छिपाऊँगा। प्रकृति के इस रहस्य को छिपा भी कौन सकता है ? दूसरों के कपड़े

"नहीं।"

"क्यों नहीं जी ?

"मैं सोचता हूँ मुझे तुम्हारा विवाह कर क्या लाभ होगा ?

"अब तो तुम्हारे लिए मेरी और भी अधिक भक्ति हो गई। तुम्हें धन्य है। एक ही बात बतानी की है। मुझे तुम्हारा यह भावना बहुत बेहद पसन्द नहीं है। अगर तुम मेरी बात मानो तो

क्या बात है तुम्हारी ?"

"चलो हम दोनों साथ-साथ स्वर्गारोहण को चल जायें यह धरती बड़ी कठोर है।"

"कैसा स्वर्गारोहण ?"

"हिमालय पर चढ़कर यह मार्ग मिल जाता है। जिधर से होकर पाण्डव गए थे। कितना सुन्दर यह हिमालय है आज तक मैंने इसे नहीं देखा था इसलिए मेरे दूसरे विचार थे।"

'तुम बड़ी अजीब बातें करते हो मैं चला।

"अब तो तुम कुछ न कहोगे किसी से मेरे विरुद्ध ?

'आज तुमने अपनी वाणी और भावना को संयत ही रखा है।"

"वाणी को रखा है भावना की बात तुम्हें कैसे ज्ञात हो गई ? क्या तुम भी भावना को पढ़ सकते हो ?"

भैरवी बोली— तुम शायद अब सीमा तोड़ दोगे। मैं चलता जाता हूँ।" भैरवी चली गई।

भैरव के नाश्ता कर चुकने के थोड़ी देर बाद ह. च आ पहुँचा उसे देखते ही भैरव ने कहा— 'जय देवी की !

ह. च ने कुछ आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा— 'जय माता की मित्र ! तुम यह किस देवी की जय पुकारते हो ?

"जो देवी मैंने यहाँ देखी है।"

"तुम एक ही रात में यह कहाँ बहक गए, मित्र ?"— ह. च ने पूछा।

'जिसे देखा है मैं उसी को अब पुकार रहा हूँ। मैं प्रकृतिवादी हूँ, कल्पना को नहीं मानता।

किसे देखा है तुमने ? कौन देवी है यहाँ हमारे आश्रम में माता को छोड़कर ?'

'तुम क्यों नहीं जानोगे उसे ? वह शुद्धलिनी ? उसे कमलेश ने तुम लोगों से छिपा रखा है वह उतनी ही सुन्दर है।

"मित्र अगर तुम इस प्रकार बहक जाओगे तो कैसे वर्तमान को सँभाल सकोगे ? और कैसे मैं तुम्हें दीक्षा के लिए तैयार कर सकूँगा ?

तुम्हारे इस वर्तमान को सँभाल में क्या रखा है ?

"तुम अपने को प्रकृतिवादी कहते थे। असलियत वर्तमान ही में है। भूत और भविष्य ये दोनों एक कल्पना हैं।

'तुम्हारा दर्शन समझ नहीं पड़ता। कभी तुम भावना को ही सब कुछ बताते हो कभी कल्पना से घृणा करना सिखाते हो।

'भावना वह विचारणा है जो कर्म में बदलती जाती है और कल्पना केवल हवाई उड़ान है जिसका भौतिक जगत से कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

'भाई मेरा दर्शन शास्त्र में इतना भ्रम नहीं है। मैं तुमसे पूछता हूँ वह त्रिमूर्तिनी कौन है ?

"तुम्हारी दुर्बलता है मित्र। उसकी कल्पना में न खो जाओ। तुम्हें पछताना पड़ेगा।

"मुझे तो वह मेरी अभिन्न जान पड़ती है। मैंने उसे कहीं और देखा है।

'असम्भव !"

"तुम जन्मजन्मान्तरों की बात मानते हो। किसी जन्म में जरूर मैंने उसे देखा है मित्र।"

"तुम्हें अपने मन के भूत अपनी बुद्धि के हाथ में देने उचित हैं। सा नहीं कि बाहर की कोई चीज तुम्हें घसीटती फिरे।"

"फिर यह त्रिशूलधारिणी कौन है ?"

'त्रिशूलधारी कहो।

त्रिशूलधारी ही सही। वह कौन है ?

"वह एक स्वयंसेवक है।"

'मैं उससे प्रेम करता हूँ।

'तुम उससे प्रेम नहीं कर सकते। तुम दैहिक प्रेम की बात कर रहे हो—तुच्छ स्वार्थ का प्रेम।

"नहीं मैं विशुद्ध प्रेम की बात कहता हूँ।

'उसके कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वह एक में जाकर ऐसी लालसा से केन्द्रित भी नहीं होता। सृष्टि पर सर्वत्र ही तुम प्रेम करने के लिए हो। यह एक मानी हुई बात है, इसे कहा नहीं जायगा—कहते ही वह अशुद्ध हो जाता है। कहने ही से उसमें लालसा समा जाती है।'

"अच्छा जाऊँ।"

"उसका त्रिशूल बड़ा तीखा है वह तुम्हारी लालसा को छेदकर पार हो जायगा। केवल वर्तमान में रहो। तुम्हारे सुख का यही एक मन्त्र है।"

"भूतकाल को तो मैंने मिटा दिया है मित्र। उसके दो-दो स्मृति में जुड़े हुए बहुत गहरे पंक हैं उनमें मैं वर्तमान को ही पीस-पीसकर भर दे रहा हूँ। और वह भविष्य मेरे निकट आकर यहीं तो वर्तमान बनता जा रहा है। बहुत सुन्दर जो कहोगे तुम तुम्हारी आज्ञा मानने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ।"

"मैंने माता जी से तुम्हारे लिए बातें की हैं। वह अभी कार्य-व्यस्त है। शीघ्र ही जब उन्हें फुरसत मिल जायगी तो मैं तुम्हें बुला ले जाऊँगा।

"तब तक मैं यहाँ क्या करूँ ?"

"जो तुम्हारे मन हो।"

"वहाँ मैं जा भी सकता हूँ ?

"नहीं सब जगह चौकी-पहरा है। बिना प्रवेश-चिह्न या प्रवेश-शब्द के तुम कहीं न जा सकोगे।"

"वन-पर्वतों में तो कोई नियम न होगा ?

"वहाँ क्यों होगा ? लेकिन तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता क्या है ?"

"यहाँ बैठे-बैठे अकेले मन घबरा उठेगा।

"मन के भीतर घुस चलो बन्धु ! वहाँ क्या बाहर से कुछ कम विस्तार है ? सारा बाहरी जगत उसमें समाया हुआ है। मन के अन्धकार में दीपक जलाओ भावना का फिर सब कुछ घर बैठे ही मिल जायगा।"

"लेकिन तुमने भूत और भविष्य के चिन्तों का निषेध किया है।

"भूत चिन्ता का दूसरा नाम है और भविष्य आशा का ये दोनों मन के मैल हैं। शुद्ध सात्विकता वर्तमान की है—वही तो असली बन्धन मुक्त भावना है कोई उलझन ही नहीं। बिना प्रयास ही सब-कुछ होने लगता है।

"मैं कुछ नहीं समझता तुम्हारी बातें।

"प्रयास करो प्रीति रखो प्रतीति उपजाओ तो सब कुछ हो जायगा। सब कुछ समझ में आने लगेगा अपने-आप। सच्चे जिज्ञासु पर रहस्य स्वतः ही खुल जाता है।"—५ म चला गया।

मैत्रेय कुछ देर बैठा रहा। बाहर धूप आ गई थी। वह वहीं चला गया। गायें वनों को जा रही थी। कोई भी उस उसकी तरह अवकाश में नहीं दिखाई दिया। उसे धूप में ठंडी मालूम देने लगी वह फिर उठकर भीतर चला गया।

१६

अपोलामा

अंत में पाँच मास ऊँचाई और भूख-प्यास के कष्टों को सहन करते हुए वे दोनों आत्मा के अन्वेषक अपोलामा के मठ में पहुँच ही तो गए।

उसकी स्थिति अपने-आप बोल उठी थी। कमजन दूर ही से चिल्लाया—"रिंबूची मैं तो समझता हूँ मठ यही है। लेकिन इसके पास के मैदान में पंख फैलाए यह जो विशालकाय चिड़िया पड़ी है, हमारी परीक्षा के लिए महाराज ने कोई लीला तो नहीं रची है?"

रिंबूची बोला—"मुझे तो यह कोई मशीन जान पड़ती है। मैंने ल्हासा में जाकर इसका चित्र देखा है।"

"मशीन? इतनी बड़ी मशीन? एक हजार कुली भी तो इसे इन पहाड़ों पर नहीं चढ़ा सकते फिर आई किस रास्ते?"

रिंबूची ने कहा—"चलो इसके नजदीक जाकर अपना भ्रम दूर कर लें।"

कमजन सहमत नहीं हुआ—"अपने इष्ट से बढ़कर नहीं भाई। सीधे मठ को ही चलो।"

दोनों उधर ही बढ़े। कोटा पर निर्मित में बड़ा ठोस वह मठ था। उसके निकट ही हिम-सिंचित साफ स्फटिक के रंग में एक जल की धारा बहती थी। पेड़-पौधों का कहीं नाम नहीं।

वह इमारत तीन तल की थी। एक तल धरती के नीचे था उसका नाम था पैठ-पाताल। दूसरा बीच का पहलखाता का चित्त-दुनिया और सबसे ऊँचा था नीलाकाश में मस्तक ऊँचा किए हुए था उसकी संज्ञा

पी—सिर-सरम।

बाहर से केवल दो ही तब उन्हें दिखाई दिए। वे दोनों मठ के द्वार पर आ पहुँचे। द्वार बन्द था। उनके आते ही वहाँ एक नंगा मनुष्य उन्हें दिखाई दिया। उसके सिर पर लम्बे-सूखे बाल थे। दाढ़ी मूँछ का पता नहीं था। कमर में बड़ की छाल लपेट रखी थी।

कमजन ने केवल आँख के इशारे से रिखूची को बता दिया कि यह गुरुदेव हैं जिनको मध्य बनाकर वे दोनों घर छोड़कर चल आए हैं। दोनों उनके चरणों में ऐसे खिंच गए जैसे चुम्बक के सिरे पर दो छोटी-छोटी लोहे की कीलें खिंच जाती हैं।

"कौन हो रे तुम? मेरे पैरों में क्या ढूँढ रहे हो?"—और भी कर्कश स्वर में उसने पूछा।

कई बार उनके चरणों में माथा टेककर कमजन ने जवाब दिया—"महाराज हम आपकी ही आज्ञा-पालन के लिए यहाँ आए हैं।

"मेरी कैसी आज्ञा? क्या मैंने ढोर पाल रखे हैं जो उन्हें चराने के लिए मुझे किसी ग्वाले की जरूरत है? या मेरे खेती होती है जो मुझे हल जोतने के लिए हाली चाहिए। जाओ जाओ जहाँ से आए हो।

"कहाँ जावें महाराज हमारा कहीं घर नहीं है"—रिखूची ने उत्तर दिया।

कमजन बोला—"महाराज हमें तो आप ही ने बुलाया है।

महाराज ने कहा—"तुम क्या खाओगे यहाँ? मेरे पास कुछ नहीं है और आस-पड़ोस में भीख माँगने के लिए कोई गाँव भी नहीं।

कमजन बोला—"महाराज हम आपके आशीर्वाद पर ही जायेंगे।"

महाराज अट्टहास कर हँस पड़े—"शाबाश!" उन्होंने हाथ पकड़ कर कमजन को उठा लिया और फिर रिखूची को उठाते हुए बोले—"और तू अपनी तो कह।"

रिखूची बोला—"महाराज मैं भी आपका दास हूँ।

"लेकिन तुम मेरा आशीर्वाद किस चीज के साथ खाओगे?

दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गए चुपचाप ।

महाराज ने पूछा—"छक कितनी पीते हो ?"

कसमन ने कहा—"नहीं महाराज बिलकुल नहीं ।"

महाराज ने फिर पूछा—"क्यों नहीं पीते ? धर्मसम्मत नहीं है क्या ?

दोनों चुपचाप खड़े रहे ।

महाराज ने फिर पूछा—"माँस खाते हो या नहीं ?

कसमन ने कहा—"खाते हैं महाराज ।

"अहिंसा के धर्म में उसका खाना कैसा है ?

कसमन ने इधर-उधर देखकर कहा—"महाराज इन ऊँचाइयों पर खेती तो बढ़ नहीं सकती । जीवन धारण को माँस खाना ही पड़ता है । स्वाद के लिए नहीं खाते ।

"फिर छक क्यों नहीं पीते क्या उसमें कुछ गरमी नहीं मिलती इस ठंड में ?"

कसमन समझा महाराज शायद उसकी परीक्षा ले रहे हैं वह चुपचाप रह गया ।

चार कुत्ते आकर महाराज की कमर पर बँधी उस खाल पर बार बार मुँह मारकर उसे खींचने लगे थे । महाराज का मन कसमन और उसके साथी के साथ बातों में अधिक लगा था । उन्होंने फिर कहा—"पास-पड़ोस के गाँवों से अगर जौ भी भीख माँगकर ला सको तो रहो यहीं । मेरे पास बहुत पुराने बड़े-बड़े मटके हैं यहाँ जौ सड़ाने के लिए । क्यों हो राजी ?"

रिखुची मुसकराते हुए सामने हाथ जोड़कर खड़ा था पर कसमन बड़े संकोच के साथ रिखुची की ओट में छिप गया था । इतने ही में एक कुत्ता उनकी कमर पर लटकी हुई भेड़ की खाल को लेकर भागा और तीनों कुत्ते उस एक के पीछे दौड़े ।

"तुम भूखे हो तो क्या मुझे खाना नहीं समझा ? —कहते हुए

महाराज भी उस कुत्ते के पीछे दौड़।

कलजन और रिचूपी ने अपनी पीठ फेर ली। उन्होंने अपनी हँसी को दाँतों में पीस लिया। वे दोनों अपने-अपने मन में विचारने लगे अगर जरा भी महाराज का अपमान मन में सोचेंगे तो बड़ा भारी अनिष्ट हो जाएगा।

कलजन ने धीरे-धीरे रिचूपी से कहा—"देखो तो यही महाराज इसी बहाने से चले न गए हों।

रिचूपी ने पूछा—"क्या यही गुरुदेव तंपोलामा हैं ?"

"और नहीं तो कौन ?

"ऐसे कैसे ?

इसी समय कमर में वही खाल बाँधे वह फिर आते दिखाई दिए। कलजन और रिचूपी बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गए।

उन्होंने आते ही मुख अप्रसन्न करते हुए कहा— तो क्या हीरा मोती सोने चाँदी रेशम और जरी से ढका हुआ आवेगा वह ?"

"क्षमा ! क्षमा ! महाराज क्षमा !"—कहते हुए दोनों उनके चरणों पर गिर पड़े।

"हूँ ! तंपोलामा से जान न पहचान चले आए तुम उसके घर।" तुम्हें रास्ता कहाँ से मालूम हो गया ? —तंपोलामा ने पूछा।

"सब आपकी दया से महाराज !"—कलजन ने बड़ी विनयपूर्वक कहा।

रिचूपी ने भी वही दुहराया।

"फिर क्यों नहीं पहचाना तुमने मुझे ?"—कुछ तेजी के साथ तंपो-लामा बोले।

कलजन कहने लगा— मैंने पहचान लिया था महाराज आपको।"

"तुमने कहाँ देखा मुझे ?"

"आपने मेरे घर पर ही मुझे दर्शन दिए।"

"तुम्हारे घर मैं कब आया ?

स्वप्न में आप महाराज ध्यान में दिखाई दिए ।"

स्वप्न-ध्यान को तू सच्चा समझता है ? मूरख कहीं का !

स्वप्न और सत्य में नाम और रूप का ही अन्तर है, महाराज। आपके नाम और ध्यान में अगर कोई सच्चाई न होती तो हम कैसे यहाँ तक आ जाते ? —कब्बन ने कहा।

"तू बड़ा होशियार है। अच्छा सच बता क्या तू अपनी ताकत से ही यहाँ तक आया है ? —खंपोलामा ने पूछा।

'आपको सब मालूम है। आपकी आज्ञा-पालन करने को हमें बताना ही होगा। डोरमा माता ने हमें राह दिखाई। क्योंकि अब हम आपकी शरण में आ ही गए हैं हम पर दया कीजिए।"

खंपोलामा ने पूछा—"तुम किस मतलब से आए हो यहाँ ?"

"आपकी सेवा के लिए।

"झूठी बात ! कीमिया का रहस्य जानने को ?"

"नहीं महाराज।

फिर छंग पीने को ?

'नहीं महाराज।

"अमरत्व की बूटी मालूम करने को ?

"वह भी नहीं।"

"फिर क्या अप्सराओं के साथ नृत्य करने को ?

"हमारे अपराध क्षमा कीजिए, महाराज ! हम आत्मा का रहस्य जानने के लिए आए हैं।"

'यह तुम्हारा घोर स्वार्थ है। तुम्हें आत्मा का रहस्य तब तक नहीं मिल सकता जब तक तुम दूसरों के हित के लिए प्रयत्नशील न होओगे।"

'हम दूसरों के हित के लिए निरन्तर चेष्टा करेंगे।"—कब्बन ने विश्वास दिलाया।

"क्या करोगे ? क्या सम्पत्ति है तुम्हारे पास ?"—खंपोलामा ने

पूछा।

"हमारे पास विचार की सम्पत्ति है।"—कमलजन ने तत्क्षण उत्तर दिया।

"तुम विचार की सम्पत्ति को हर घड़ी विश्व-मंगल के लिए खर्च कर सकोगे?"

"हाँ गुरुदेव!"—कमलजन ने हाथ जोड़कर कहा।

"और तुम्हारा यह साथी?"—लोसालामा ने पूछा।

"हाँ महाराज, यह भी।"—कमलजन के उत्तर पर रिकूची ने भी अपने हाथ जोड़ दिए।

"विश्व-मंगल के लिए तुम क्या विचार करोगे?"

कमलजन बोला—"घर-घर लोगों में सद्भावना फैले, देश-देश की जातियों का कलह दूर हो, ऊँच-नीच, बड़े-छोटे का भेद भाव मिट जाए।"

"और तुम?"—लोसालामा ने रिकूची से पूछा।

"संसार में उपज बढ़े, ठीक समय पर न ज्यादा न कम वर्षा हुआ करे, जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध हो सके वहाँ नदियाँ खोदी जाएँ, व्यापार में ज्यादा मुनाफा न ले कोई, चीजों में मिलावट न रहे, सबके दिल में भगवान् का डर रहे, दुनिया से भयानक बीमारियाँ दूर हों।"—रिकूची बोला।

"लेकिन तुमने तो यह बड़ी मेहनत का रास्ता लिया। कोई एक मंत्र नहीं मालूम है तुम्हें?"—लोसालामा ने पूछा।

"मुझे मालूम है।" कमलजन बोला—"ओ३म् मणि पद्म हुं!"

लोसालामा हँसने लगा—"मणि क्या है और पद्म क्या है?"

कमलजन ने प्रत्युत्तर में कहा—"मणि प्रकाश है भगवान् का प्रकाश और पद्म हृदय-पद्म।"

"हृदय-पद्म किसका?"

"व्यक्ति का।"

"तुम्हारा?"

कुछ हिचकिचाहट के बाद कलमन ने कहा—"हाँ गुरुदेव !

"बस तो हो गया ! प्रकाश भगवान का हृदय तुम्हारा यही तो और स्वार्थ है । विश्व का कल्याण कहाँ पर रहा ?"

"अपराध क्षमा हो देव ! अनेक एक में ही निहित है । बाहर भीतर का ही फैलाव है ।

"यह मुक्ति नहीं है व्याख्या है ।

"हम दोनों मुक्ति की शिक्षा के निमित्त आपके चरणों में विनत हैं । आप हमारे ऊपर दया करें ।

"इन्द्रियों के भ्रम से जब तक नहीं निकल सकते तुम्हें मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकता । जब तक तुम्हारे अपने विषय मर नहीं जाते तुम विश्व का कल्याण नहीं जगा सकते अपनी आँख में ।

"हमें इन्द्रियों के भ्रम से निकाल दीजिए, हमारे विषय नष्ट कर दीजिए ।

"बुद्ध की शरण जाओ ।

"बुद्ध की शरण में हैं ।"

"बुद्ध कभी का मर चुका । भगवान बुद्ध की कामना करो । मैत्रेय की कामना करो । विश्व-मंगल की सबसे बड़ी सिद्धि यही है ।

"हम मैत्रेय की कामना करेंगे ।

"ओं मणि पद्मे हुं !" अपोमामा बोला—"मणि ही मैत्रेय का प्रकाश है, पद्म विश्व का कमल है उसकी पंखुरियाँ उसकी दिशाएँ हैं । भेद यही है भावना के अन्तर से सब कुछ बदल जाता है । भीतर के होने से ही बाहर है तो बिना बाहर की सत्ता के भीतर भी कुछ नहीं है !"

भावों के आवेश में कलमन ने कहा—"गुरुदेव की जय हो !

"मैत्रेय की जय कहो यह गुरु का भी गुरु है ।

"मैत्रेय की जय !" कलमन और विभूती एक साथ बोले—"होने वाले बुद्ध की जय !"

"वह होने वाला नहीं है।"—संपोसामा ने कहा।

कलयन और रिचूधी ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"वह होनेवाला होता तो अब क्यों न हो जाता? संसार में त्राहि त्राहि मची है। जातियों में ऐसा कलह फैला है। मनुष्य मनुष्य को खा जाने के लिए तैयार है। वह स्वयं पैदा नहीं हुआ, न होगा। उसे पैदा किया जाएगा।"

"उसे पैदा किया जाएगा?"

"हाँ, यह प्रजातन्त्र का युग है। सबकी अधीनता समाप्त हो जाएगी। जिस तरह राजवंश समाप्त कर दिए, राजत्व प्रजा के हाथ में आ गया—ऐसे ही देवत्व क्या हमारे अधिकार में नहीं हो जाएगा? जब हम बनाई शाला में अवतार की कल्पना कर सकते हैं तो क्या हम मैत्रेय को नहीं जगा सकते? वह हमारे ही बीच में है।" बड़ी तेजस्विता से संपोसामा ने कहा—"मैंने मिट्टी के सैकड़ों मैत्रेय बना डाले।"

कलयन बोला—"मैंने आपके बनाए मैत्रेय के दर्शन किए हैं।"

"किए होंगे। बस उसी में प्राण देने बाकी हैं। तुम करोगे इसकी साधना?"

"हाँ," दोनों ने जवाब दिया।

"तुम इसीलिए यहाँ आए हो?"

दोनों ने हाथ जोड़े।

संपोसामा ने पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है?"

कलयन बोला—"मेरा कलयन है और मेरे साथी का रिचूधी।"

"अच्छा, तुम दोनों चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चले आओ।" संपोसामा आगे-आगे चला।

उन दोनों के हर्ष का ठिकाना न था, क्योंकि जिस लिए उन्होंने इतने कष्ट की यात्रा की थी वह सफल होती जान पड़ी। वे संपोसामा के पीछे चलने लगे।

अचानक संपोसामा का कंठ भर आया। उन्होंने मुड़कर पूछा—

"एक बात ! तुम कहाँ से आये हो ?"

'ल्हासा से ।"

"वहाँ और कौन कौन हैं तुम्हारे ?

"नजदीकी रिश्ते के नाम पर कोई नहीं ? —कमजन ने जवाब दिया।

"और सम्पत्ति के नाम पर ?

'सम्पत्ति के नाम पर भी कुछ नहीं।

कपोलामा फिर आगे को बढ़ा—'अच्छा चले आओ। उसने जाते-जाते पूछा—'किसी मठ में दीक्षा ली थी क्या ?

'नहीं महाराज !"

फिर सिर क्यों मुंडा रखा है ? —कपोलामा फिर ठहर गया।

दोनों चुप रह गए।

"विवाह नहीं किया ? बाल ब्रह्मचारी हो ?

"विवाह किया महाराज दोनों की स्त्रियाँ चल बसीं।

'हा हा हा ! स्त्रियाँ चल बसीं ! कपोलामा बोले— लेकिन मन में की नारी चल बसी या नहीं ?

'चल बसी महाराज वह भी।"—रिपूची ने उत्तर दिया।

"अगर तुमने कपोलामा से झूठ बोला तो तुम्हें मठ के भीतर के अंध कूप में डाल दिया जाएगा।

कमजन ने रिपूची की बात सही की— महाराज नारी के उस रिक्त स्थान में हमने माता की मूर्ति स्थापित की है।"

लेकिन हमें मनेष के लिए माता की क्या ज़रूरत है ?"

कमजन ने कंपोलामा की बात काटनी उचित नहीं समझी और कहा—"तो मैत्रेय को आप मिट्टी की मूर्ति से बना देंगे ?"

"यह तो बहुत सी बना चुका हूँ।" बड़ी उदासी से कंपोलामा ने कहा —"लेकिन कुछ काम चला नहीं।

कमजन ने कहा—"फिर जैसी आपकी आज्ञा हो वैसा ही किया

जाय।

"ऐसा ही क्या किया जाय? हमारी तुम्हारी हड्डियाँ बड़ी सख्त और पुरानी पड़ गई हैं उनमें हम मैत्रेय की कलम नहीं चढ़ा सकते। अगर किसी के बालक को यहाँ हम ले आवें और उसमें मैत्रेय की आत्मा का आवाहन शुरू करें तो उसके सम्बन्धी हमारी सारी क्रिया बिगाड़ देंगे और फिर इतने अवतारी लामा जो तिब्बत में फिरते रहते हैं, उनमें और हममें क्या अन्तर रहा?

"अगर किसी बिना माता-पिता का शिशु हमें मिल जाय तो?

"तो हम उसके ज्ञान प्राप्ति होने तक उसके भीतर बुद्धत्व के संस्कार जमा देते। ज्ञान हो जाने पर वह फिर अपने भीतर मैत्रेयतत्त्व को जगा लेता। कलजम बुद्ध हम सबके भीतर है—लेकिन सुप्त और मूर्च्छित। अच्छा चलो। ज्यादा बातों से कुछ नहीं होगा। हम अपनी इस गुफा के द्वार पर आ गए हैं। चले जाओ इसके भीतर।"—मंगोलामा यह कहते हुए बड़ी तेजी से उस गुफा के भीतर चले गए। उन्होंने अपनी मंजिल का द्वार बन्द किया।

रिचुंगी और कलजम भी बड़ी सावधानी से टटोलते हुए पेट-पाताल की उस अन्धकार और बदबू से भरी गुफा के भीतर घुसे।

ऊपर से मंगोलामा की आवाज आ रही थी—'यह संशय और भ्रम की गुफा है। इसमें तुम्हें तब तक रहना पड़ेगा जब तक तुम अपने भीतर के इस शत्रु के ऊपर विजय न पा लोगे।'—इसके बाद फिर मंगोलामा की आवाज नहीं सुनाई दी।

कुछ देर प्रतीक्षा करने पर कलजम ने कहा—"रिचुंगी गुरुदेव चले गए क्या?"

"ऐसा ही जान पड़ता है। अँधेरे की कोई बात न थी बड़ी बदबू आ रही है।"

"कुछ समय बाद इसका अभ्यास हो जाने पर फिर यह इतनी तंग नहीं करेगी।"

"किस चीज की गन्ध है यह ?"

मुझे मांस की जान पड़ती है और कुछ सड़े हुए अन्न का भी आभास मिलता है।"—कलजन ने समाधान किया।

"कलजन मुझे भय लग रहा है।"—उसको टटोलकर रिपुनी ने कहा।

कलजन बोला—"ऐसा न कहो भाई। यह यात्रा जानबूझकर कहीं भय के बदले में लिया है।

"भूख भी लग रही है और जाड़ा भी।"

"ये भी तो सब भय के ही परिवार में से हैं। इन सबको जीतना है।"

"धीरे-धीरे ही तो जीते जा सकेंगे। चलो और इधर-उधर टटोल लें। शायद इस गुफा में गुफा-वासियों के लिए कहीं कुछ सोने-खाने का ठौर ठिकाना हो।"

"चलो बाहर संध्या हो गई जान पड़ती है। दिन में शायद इस गुफा में इतना अँधेरा न होगा।"

रिपुनी बोला—"किस तरफ को जा रहे हो ?"

"जिधर भी बढ़ जायें कोई जानी-पहचानी दिशाएँ तो हैं नहीं।"

"जरा ठहरो मैं तुम्हारा कंधा पकड़ लूं।" रिपुनी ने कलजन का वस्त्र पकड़ लिया।

कलजन के हाथ किसी चीज पर पड़े—"यह क्या है ? एक मटका सा जान पड़ता है। बहुत बड़ा है। जान पड़ता है इसमें कुछ है।" कलजन किसी गहरे विचार में पड़ गया।

रिपुनी बोला—"कलजन, तुम चुप हो गए, क्या सोच रहे हो ?"

कलजन विचारों में डूबता-उतराता हुआ बोला—"कुछ नहीं।"

"मेरे हाथ कुछ मांस के संग्रह पर हैं। चलो खाने-पीने की चिन्ता तो गई। गुफा की छत पर से लटक रहा है उसका बोझा यह नहीं जाना जा सकता यह हमारे खाने के लिए है या इन वाले भूखों के ?"

कलजन चुप था।

रिंचूची घबराकर बोला—"यह दीपक तो है।"

"नहीं यह मेरे साथ ही आया है, मेरे साथ ही चला भी जायगा। कर्तव्य क्या बताऊँ? यह सारी गुफा तुम्हारी है जो चाहे करो।

उस कमरे में कुछ दानवों के चेहरे थे। वे दोनों बड़े ध्यान से उन्हें देख रहे थे।

"ये तुम्हारे नाच करने के लिए हैं। इनको पहनकर तुम यहाँ से बुरी आत्माओं को आसानी से भगा सकोगे। चंपोलामा ने एक खूँटी से मनुष्य की खोपड़ी की खंजरी और आदमी की हड्डी की बनी बाँसुरी निकाली। खंजरी रिंचूची को देकर कहा—'लो इसे बजाओ।

रिंचूची उसे बजाने लगा।

चंपो ने बाँसुरी कलजम को देकर कहा—"लो तुम इसे बजाओ।"

कलजम ने उसे बजाने की कोशिश की पर वह ठीक-ठीक नहीं बजी।

चंपो ने कहा—"दोनों एक-दूसरे का साथ कर बजाओ तभी एक-दूसरे की ताकत से दोनों को सहायता मिलेगी और बाजे ठीक-ठीक बज सकेंगे।

दोनों ने बजाना शुरू किया पर नहीं बजे।

चपोलामा ने कहा—"तुम थक गए हो। चाय पी लो।

दोनों ने चाय पीकर बाजे बजाए फिर भी नहीं बजे। चपोलामा ने कहा—"उस छत के मटक के पास जाकर बजाओ वहाँ बज सकेंगे।

नहीं" कलजम ने विरोध किया—"वहाँ डर लगता है।

"क्यों?

"वहाँ एक औरत खड़ी है वह कौन है गुरुदेव?

चंपोलामा हँस पड़ा—"हैं हैं-हैं! औरत नहीं है। वह तो मिट्टी की एक मूर्ति है। मैंने उसे कपड़े और कुछ जेवर पहना दिए हैं। चलो, उजाले में दिखा देता हूँ तुम्हें।"

तीनों ऊपर गए। कलजम और रिंचूची ने देखा छत मटक के पास एक बड़ी सुन्दर मूर्ति खड़ी थी। उसके जीवित होने का धोखा हो रहा

था। कालयम ने उस मटके में का लेख पढ़ा—"ओ३म् मणि पद्मे हुँ।"
उसने थंपोलामा से पूछा—"गुरुदेव इसमें क्या है?"

"इसमें छाछ है और क्या? तुम उसकी गंध नहीं पहचानते?

"छाछ के मटके में यह मंत्र क्यों लिखा है?

थंपोलामा दीपक लेकर चल दिए बड़ी तेजी से।

भैरवी

वह मदन दर्पित विधुमिनी भैरव के मानस में बड़ी गहराई में समा गई थी। वह उसके तमाम अतीत पर पर्दा डालकर सामने खड़ी हो गई थी। उसकी ओट में उसके माता-पिता, घर-द्वार और बाकी सब छिप गए थे। भूतकाल उसकी चेतना पर से धुल गया था। भैरवी ने उसे वर्तमान को पकड़कर उस पर स्थिर हो जाने को कहा। वह बड़ी कठिनता में पड़ गया। भैरवी उसे निरंतर भविष्य के मनोहर चित्र दिखाने लगी।

"भविष्य वर्तमान का ही वह भाग है जिसके ऊपर रात्रि की छाया पड़ी है। यह केवल समझने की बात है। भैरवी के प्रेम की डोर में बँधा हुआ मैं जिस भविष्य की अमर भूमि पर विहार कर रहा हूँ वह वर्तमान का ही एक अंश है। मैं क्या दुविधा रखूँ? क्या मन में संशय उपजाऊँ?"—भैरव भोजन की प्रतीक्षा करता हुआ सोचने लगा।

अब उसे भीतर जाड़ा लगने लगा था। वह उठकर फिर धूप में आने को था कि किसी की आहट सुनाई दी। "शायद वह आ गई!"—विचारता हुआ भैरव सँभलकर बैठ गया।

कोई दूसरा ही था जो इस समय भोजन लाया था। बोला—"आपका भोजन है, कहाँ पर रखूँ?"

"रख दो यहीं पर।" बड़ी रुखाई से भैरव बोला—"कौन हो तुम?"

"स्वयंसेवक हूँ।"

"वह कहाँ गई?"

"वह कौन?" आँखें विस्फारित कर स्वयंसेवक बोला—"यहाँ माता जी को छोड़कर और कोई नारी नहीं रहती।"

भैरव ने मन-ही-मन कहा— ये सब बने हुए हैं। पुरुष के वेश में कभी क्या नवयुवती छिप सकती है ? फिर य सबके सब ऐसा क्यों कहते हैं ?

स्वयंसेवक बोला—"आपकी सुराही में पानी ला देता हूँ।

'ठहरो।"

आप स्नान करेंगे क्या ?

'हाँ स्नान भी करूँगा। पहले एक बात का उत्तर दो। वह त्रिशूल धारी कौन है ?

'त्रिशूलधारी ? स्वयंसेवक हँसकर बोला— 'सभी नए आने वालों को यही भ्रम हो जाता है। आप उन्हीं के बारे में पूछ रहे थे ?"

"हाँ कौन हैं वे ?"

'वे नारी नहीं ह दिखाई कुछ वैसे ही देते हैं। वे हम सब स्वयं सेवकों के प्रधान हैं। मैं अभी आपके लिए गरम पानी ला देता हूँ धूप में नहा लीजिये। —स्वयंसेवक चला गया।

भैरव मन में बोला—"कैसे धर्मविश्वास से इनकी बुद्धियों में ताले लगा दिए गए हैं।

स्वयंसेवक ने धूप में पानी रख दिया धोती और अंगोछा भी। भैरव ने स्नान करते हुए उससे पूछा— 'यहाँ आश्रम में क्या होता है ?

"हम स्वयंसेवक हैं। सभा और चौकसी हमारा काम है। कुछ नहीं जानते।"

"कितने बरस से यहाँ रहते हो ?

'सात बरस से।"

सात बरस में कुछ भी नहीं जान सके।

"द्वार बन्दकर, आयनों में परदे लगाकर व जाने भीतर क्या करते हैं। कभी कट-कट सुनाई देती है बस बहुत धीरे-धीरे बोलते हैं।

'कौन लोग भीतर जाने पाते हैं ?

"जो मेंबर हैं कार्यकारिणी के।"

"अरे, छाठ साल हो गए। कुछ अनुमान भी नहीं लगा सके तुम लोग अभी तक।"

"हाँ कुछ अंदाज है। एक काली और एक सफेद को मुर्दों की खोपड़ी लड़ाते हैं ये लोग।"

"काली खोपड़ी कैसी होती है?"

"काले आदमी की।"

भैरव हँसा— मुझे मालूम नहीं था— काले आदमी की खोपड़ी का रंग काला होता है। अच्छा और क्या करते हैं?

"और बम बनाते हैं।"

"बम किसलिये बनाते हैं?" —भैरव नहा चुका था। उसने पाजामा वहीं छोड़ दिया।

स्वयंसेवक बोला— जो लोग गरीब प्रजा पर अन्याय करते हैं उनके ऊपर छोड़ते हैं। वे चाहे काले हों चाहे सफेद।

"तुम तो कहते थे काली और सफेद खोपड़ी को लड़ाते हैं।"

"वह दूसरी बात है।" —स्वयंसेवक भैरव का पाजामा फींचने लगा।

भैरव भीतर से अपनी मैली कमीज भी निकाल लाया— "कृपा कर इसे भी धो दो ज़रा साबुन लगाकर। बहुत मैली हो गई है।"

स्वयंसेवक बोला— "धोकर सुखाकर दे जाऊँगा।"

"जल्दी दे जाना। मेरे पास और कुछ नहीं है।"

स्वयंसेवक चला गया। भैरव आसन करने लगा। भयंकरवादियों के मरम पर नहीं पहुँच सका वह। सोचने लगा— "बड़ी विचित्रता का समावेश जान पड़ता है यहाँ। अजीब तरह से इन्होंने राजनीति धर्म शास्त्र और कर्म की खिचड़ी मिलाई है?"

[illegible] उसे जाड़ा लगा और वह फिर धूप में चला गया। स्वयंसेवक कुछ देर में उसके कपड़े सुखाकर दे गया। कपड़े पहनकर [illegible] कुछ दूर तक पहाड़ों पर सैर कर आई।

भयंकरतावादियों की बस्ती से दूर एक पहाड़ की ओर को चला वह। वसंत के प्रवेश पर भाँति भाँति के नवीन पत्ते अनेक वृक्षों ने पहन लिये थे। भूमि पर छोटे-छोटे फूलों के गलीचे बिछे थे। कुछ छोटी-छोटी झाड़ियों में रंग बिखरे हुए थे और अनेक फूलों से लदे पेड़ ऐसे जान पड़ते थे मानो रंग बिरंगी चुनरियाँ पहनकर नारियाँ वनदेवता की पूजा करने उपवन में चली आई हैं।

भैरव बड़ी उमंग के साथ पहाड़ पर चढ़ गया। मृदु सुवासित पवन बह रही थी। उसकी भाँति वृक्षों की मनोहरता में खो गई। वह बराबर एक के बाद दूसरी चढ़ाई पर चढ़ता गया।

दूर पर हिमालय का दृश्य दिखाई दे रहा था। एक ऊँची चोटी पर चढ़ गया था वह। वहाँ विश्राम करने लगा वह। कहीं वन में कोई गा रहा था। वह उस गीत के शब्दों का तो कुछ नहीं समझा पर उसके स्वरों में उसे एक निश्चितता और एक परिपूर्णता के दर्शन होने लगे। बड़े ध्यान से भैरव उस गीत को सुनने लगा और उसके गायक को ढूँढ़ने लगा।

कभी उसे उस गीत में रमणी के कंठ का धोखा होने लगता। कुछ गायें पर्वत की उस चोटी पर चर रही थीं। भैरव गीत की मोहनी में मुग्ध होकर उस गायक को ढूँढ़ने लगा। उसके मन में एक गुदगुदी-सी उठ रही थी—"क्या यह संभव नहीं है यह गायिका वही त्रिभूतिनी भी हो सकती है। उसके हृदय की वेदना उसे पुरुष के कपड़े पहनाकर नहीं मिटा दी जा सकती। वह प्रकृति में आकर अपनी वेदना कम करने आई होगी।"

अचानक भैरव को एक शिला-खंड पर बैठा हुआ एक बालक दिखाई दिया। वह बालक के पास गया। उसने उससे पूछा—"यहाँ अभी कोई गा रहा था।"

बालक एक अपरिचित को सामने पाकर कुछ लज्जित-सा हो गया।

"कौन गा रहा था बालक ?

कुछ मुस्कराकर उसने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानता।"

"तुम गा रहे थे ?"

बालक ने कोई जवाब नहीं दिया।

"जरूर तुम ही थे। बड़ा सुस्वर तुम्हारा कंठ है। तुम्हारी बोली न समझने पर भी मुझे वह गीत बड़ा प्यारा लगा। तुम फिर गा दो तो।"

"नहीं उसकी क्या जरूरत है ? जब तुम उसे समझते ही नहीं तो।"—बालक बोला।

"गीत में उसके बोलों से अधिक प्रिय उसकी लय होती है बालक ! जैसे पक्षियों के मीठे गीत कौन उनकी भाषा को समझता है !"

संयोग से इसी समय कुछ चिड़ियाँ बोल रही थीं पास के वृक्षों में। लड़का कहने लगा—"तुम तो इनकी बोली समझते हो। तुम शायद कहीं शहर से आए हो।"

"हाँ भाया तो शहर से ही हूँ। क्या शहरवाले आँख-कान नहीं रखते तुम्हारी तरह ?"

"बताओ फिर यह चिड़िया क्या कह रही है ?"

भैरव ने ध्यान लगाकर उस चिड़िया की आवाज को सुना। वह कुछ भी स्थिर न कर सका। उसने पूछा—"क्या कह रही है ?"

"यह कह रही है" बालक ने विजय के गर्व के साथ कहा—"कहाँ हो ?"

"क्या माने हुए इसके ?"

"माने ऐसे ही निकल आते हैं क्या ? पहले इस बात को बताओ यह यही नहीं कह रही है ?"

"हाँ ऐसे ही कह रही है।"

"कहाँ हो ? यही कह रही है। इसके साथ एक कथा है—एक राजा का लड़का था और एक प्रजा की लड़की। दोनों में बड़ी मैत्री थी। दोनों बड़े सुन्दर थे। राजा का लड़का जितना सम्पन्न था प्रजा की लड़की उतनी ही गरीब थी। दोनों के माता पिता दोनों को मना करते

थे कि वे साथ-साथ न खेलें ।" —कहते-कहते बालक चुप हो गया उसका ध्यान फिर उस चिड़िया की ओर हो गया जो बड़े करुण स्वर से नीले आकाश में पुकार रही थी—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?

भैरव ने बालक का ध्यान उधर से हटाकर कहा—'हाँ भाई फिर क्या हुआ ?

'लेकिन वे मानमेवाले कब थे ! चोरी-छिपकर फिर खेलते और रोज उन दोनों को मार पड़ती । राजा कहता—'अपने से छोटे के साथ क्यों खेलता है ? प्रजा का गरीब व्यक्ति कहता—'उतने बड़े श्रीमान के साथ क्यों खेलती है ? एक दिन उस गरीब ने उस लड़की को बहुत पीटा । उसी समय वह राजकुमार उसे संकेत से बुला ले गया । दोनों नदी के किनारे आँख-मिचौनी खेलने लगे । लड़की राजकुमार की आँखें बंद कर छिपने के बदले नदी की गहराई में डूब गई । राजकुमार संकेत पाकर उसे ढूँढ़ने चला । जितनी भी सम्भव दिशाएँ और स्थान थे राजकुमार ने खोज लिए, पर उसकी संगिनी का कहीं पता ही नहीं चला । जब उसकी आँखें थक गईं तो फिर वह पुकार-पुकारकर उसे तलाश करने लगा—'कहाँ हो ? कहाँ हो ?

'उसके पैर थक गए और उसका गला बैठ गया । उसकी सखी का कहीं पता नहीं चला । उसे नदी के जल का कुछ बोध तो हो गया था ऐसी कुछ आवाज सुनी थी उसने । लौट-फिरकर वह फिर फिर उसके जल में झाँक रहा था । लेकिन न-जाने कहाँ खो वह गई वह । एक बार उसे उसके जूड़े में खोंसे हुए कदम्ब के फूल नदी के एक कूल से लगे हुए दिखाई दिए । वह माथा पकड़कर बैठ गया ।"—कहते कहते वह चरवाहा भी कुछ देर अपनी कहानी के नायक की मुद्रा में बैठ गया मानो वही वह दुर्भाग्यशाली राजकुमार था ।

भैरव उस बालक के भोलेपन से उस कथा में मानो इतिहास सुन रहा था बोला—"क्या फिर राजकुमार अपने घर को लौट गया ?"

'नहीं लौटा । जब अँधेरा हो गया तो लड़की के माता-पिता लड़की

को ढूंढने लगे और राजा के नौकर-चाकर प्रकाश लेकर राजकुमार को। राजकुमार छुप रह गया, एक पेड़ पर चढ़ गया और मौका पाकर—'कहाँ हो? कहाँ हो?'—कहता हुआ पेड़ पर से नदी में कूद गया। कई दिन तक संध्या के समय उस पेड़ के पास एक आवाज आकर पूछती—'कहाँ हो? कहाँ हो?' और थोड़ी देर बाद एक दूसरी आवाज उससे धीरे स्वर में उत्तर देती—यहाँ हूँ! यहाँ हूँ! फिर वे दोनों आवाजें मिल गईं और वे दोनों दूसरे जन्म में चले गए। यह चिड़िया अब भी उसी संगिनी को खोज रही है—'कहाँ हो? कहाँ हो?' तुम समझ रहे हो न कितने साफ इसके स्वर हैं। रूप बदल गया पर स्वर नहीं है। यह राजकुमार उसी किसान की कन्या को खोज रहा है—कहाँ हो? कहाँ हो? और यह उसे नहीं मिलता। मैदान में ढूंढ़ते ढूंढ़ते यह यहाँ पहाड़ पर आई है। अब गर्मियों में धूप और तेज हो जायगी तो यह और ऊँचे हिमरेखा को चली जायगी फिर जाड़ा पड़ने पर मैदान को।"

भैरव उस चरवाहे की कथा-कल्पना पर आत्मविस्मृत होकर सोचने लगा—'प्रेम के गीत का स्थायी स्वर सदा विरह की पुकार है। कहाँ हो? कहाँ हो? एक दिन के बाद दूसरा दिन, एक देश के बाद दूसरा देश—और एक जन्म के पश्चात् दूसरा जन्म—यह अनन्तस्पर्शी चक्कर! यही है प्रेम की सार्थकता!

वह चरवाहे का बालक भी न जाने किस चिंतन में विलीन हो गया था। अचानक फिर वह पक्षी बोल उठा—"कहाँ हो? कहाँ हो?

दोनों का स्वप्न टूट गया। दोनों अपनी अपनी मानसिक स्थिति से छूटकर धरती पर गिर पड़े।

भैरव कहने लगा—"क्या बालक कहानी समाप्त हो गई?

"एक हिसाब से हो गई और एक हिसाब से नहीं।

"क्या हुआ फिर?"

बालक ठंडी साँस लेकर उठ खड़ा हो गया—'कुछ पता न हुआ

तुम्हें यह कहानी सुनाकर, तुम नहीं [illegible] ।

भैरव ने लगभग प्राप्त कर उसका [illegible] होशियार जान पड़ता था बालक [illegible] करने का भी कर रहा है।

सहसा एक देवदार का पेड़ की [illegible] सिपाहसड़ के ऊपर बड़ी भैरव की [illegible] भाँति। बालक भैरव की जिज्ञासा का [illegible]

पास ही एक दूसरे देवदार के [illegible] मसला पड़ा देखकर भैरव ने पूछा — [illegible] किसका है

"भूमिया देवता का था।

"यह टूटा क्यों है? क्या इस [illegible]

"जब तक भूमि है तब तक भूमिया है [illegible] तक उसके पूजा करनेवाले भी।

"ना" किसने किया फिर [illegible]

बरबाई बालकने मयकरवालियों की [illegible] —
"इन लोगों ने।"

"इन मयकरवालियों ने?

लड़के ने चुपचाप सिर हिलाया।

"क्यों? क्यों तोड़ दिया इन लोगों ने

"उन्होंने एक बम बनाया था उसकी ताकत [illegible] ।

देवता के घर में ही प्रयोगशाला था क्या? ये कैसे लोग हैं?

"मैं क्या बताऊँ? मैं तो [illegible] का नौकर हूँ।

भैरव ने जरा हिचकिचाकर पूछा — ये पाये [illegible] भी?

"हाँ।

"ये बम बनाते हैं?"

"हाँ बम भी बनाते हैं। और [illegible]" बालक ने बहुत धीरे से भैरव के कान में कहा—"और ये कई राज्यों के जासूसी सिलक [illegible] हैं और [illegible]

भैरव वहीं पर बैठा ही था कि फिर उस किसी का गीत सुनाई दिया उसने अपने व्यक्तित्व से पूछा— 'कौन गा रहा है यह ? वही बालक चरवाहा है क्या ? वह तो नहीं है लेकिन इस बार यह निश्चय ही नारी-कण्ठ है । मैं धोखा नहीं खा सकता । कहाँ ? किस तरफ ?

भैरव उठा और उस गीत की धारा को पकड़कर उस गायक की खोज में चला । वह कुछ ही नीचे उतरा था कि उसे वहीं झिलमिली गाती हुई घाटी दिख गई थी । भैरव ने मन में सोचा— 'अगर यह मुझे देख लेगी तो फिर इसके गीत में वह रस न रहेगा । उसने छिपने की चेष्टा की पर वह छिप न सका । वह उसकी शक्ति के बाहर की बात हो गई ।

झिलमिली ने उसे देख लिया । देखते ही उसके अधरों पर का गीत खो गया एक क्षीण मुसकान में । वह क्षण भर उसे देखती रही ।

भैरव ने कहा—"तुमने गीत क्या बन्द कर दिया ? गाना यह बड़ा मधुर है ।"

नहीं अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं इन स्वरों प्रकाश में तुम्हें ही ढूँढ रहा था । अब मेरा मतलब हल हो गया तो उस गीत को क्यों न बन्द कर दूँ ?

"क्योंकि मैं निरन्तर तुम्हारे ही चिन्तन में हूँ इसीलिए तुम मुझे रही हो ।"

"तुम फिर अपनी भाषा के समस्त उपयोग से अपनी कमुपित को प्रकट कर रहे हो ।"

'भावारी है । लेकिन मैं उन शब्दों से बहुत अच्छा हूँ जो में कुछ और शब्दों में कुछ और है । मेरी वाणी और विचार

?"—भैरव ने बहुत निडर होकर पूछा ।

झिलमिल का

"क्यों त्रिशूलिनी ! इस शून्य एकांत में तुम मुझ क्यों ढूंढ रही हो ? तुम्हें कोई भय नहीं लगता ? शायद इसलिए कि समझदारों के लिए पुरुष हो और नासमझ पशुओं के लिए तुम्हारे हाथ में यह तीखा त्रिशूल है । —कहते हुए भैरव उसके त्रिशूल को पकड़ने लगा ।

हैं ! हैं ! तुम यह क्या करने लगे ? मुझे नहीं छू सकते तुम !

"क्यों नहीं छू सकता ? मैंने सुना है तुम्हारे मठ में जब नाच होता है तो आधे पुरुष नारियों के परिच्छद पहन कर बाकी आधे पुरुषों के साथ नाच करते हैं । यह तो बताओ तब तुम किस दल में शामिल होती हो ? और उस नाच में क्या कोई किसी को नहीं छूता ?'

"यह किसने कहा तुमसे ?"

"किसी ने कहा हो । क्या झूठ है ?

लेकिन कोई अपरिचित और हमारे आश्रम का अदीक्षित मुझे नहीं छू सकता ।"

"मैं क्या अपरिचित हूँ ? तुम्हारे साथ मेरे जन्म-जन्मान्तरों की पहचान है । रह गई तुम्हारे आश्रम की दीक्षा—मैं प्रेम को सबसे बड़ी दीक्षा समझता हूँ । अगर मुझे तुम्हारा प्रेम प्राप्त हो जाय तो तुम्हारे आश्रम के समस्त द्वार मेरे लिये आपसे-आप खुल जायेंगे ।

यह त्रिशूलिनी अपनी नीची नजर कर धरती पर कुछ ढूंढने लगी ।

धरती में क्या ढूंढ रही हो ? मेरी आँखों की गहराई में देखो । मैं पूछता हूँ क्या तुम पुरुष हो ?"

त्रिशूलिनी ने धीरे-धीरे आँखें उठाकर भैरव को देखना चाहा । उसकी आँखें फिर नीची हो गईं । उसने नीची दृष्टि कर ही कहा—

'तुम बड़े निर्भीक हो तुमने मेरा साहस तोड़कर रख दिया ।

कैसा तुम्हारा साहस ?"

"तुम्हें देखकर मेरे मन में कुछ दूसरी ही भावना हो गई ।"

"कहो भी तो ।"

'अगर हमारा मन एक है तो मर्यकरवादियों का मठ भी तो मन ही में है।

कहां?

'नहीं कोई हमारा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकेगा। सिर्फ तुम प्रतिज्ञा करो।

'कैसी प्रतिज्ञा?

कि तुम मुझे धोखा न दोगी।

"हम दुर्बल भावना को शब्दों के आडंबर से सज्जित कर देते हैं।"— वह खिलखिली बोली।

'अच्छा प्रेम की स्वीकृति दो।"

"किस तरह? वह भी तो एक पाखंड ही है।

"मेरा मन नहीं मानता।

'क्या कहूँ पहले तुम बताओ।"

'यही कि तुम मुझ से प्रेम करती हो।—भैरव ने बड़े आग्रह से उससे कहा।

'मनुष्य प्रेम करने के लिये ही तो बनाया गया है। इसमें कहने की क्या आवश्यकता है? जिसके हृदय होगा वह प्रेम करेगा ही। जिसके आँख होगी वह देखेगा ही।"

भैरव ने हठ की—"नहीं तुम्हें कहना ही पड़ेगा।"

"यही कि मैं केवल तुम्हें देखता हूँ। और सारी सृष्टि के लिये तुम मुझे अंधा बना देना चाहते हो। यह कैसा प्रेम है? यह प्रेम नहीं है यह तो घोर स्वार्थ है—तृष्णा है।

इसी समय पेड़ पर बैठा हुआ पक्षी कूज उठा—"कहाँ हो? कहाँ हो?"

भैरव बोला—"इस तरह! ऐसा प्रेम कर रहा हूँ मैं।

मैं नहीं समझा।"

"एक से सच्चा प्रेम करने पर ही तो सारी सत्ता से प्रेम किया जा

सकता है। यह पक्षी अपनी प्रेमिका को खोज रहा है तुम्हें यह प्रेम-कथा मालूम नहीं है ?"

मालूम है इससे क्या हुआ फिर ? इससे तो मेरा ही पक्ष दृढ़ होता है। यह प्रेम की तुच्छता है कि इस प्रकार जन्म-जन्मान्तर में यह अपनी प्रेमिका को ढूँढता ही रह गया। अगर इसके प्रेम का विस्तार हुआ होता तो पग-पग में इसे इसकी प्रेमिका मिल गई होती। क्या इसी तरह तुम भी मुझे ढूँढते ही रह जाना चाहते हो ?"

"नहीं तुम निरन्तर मेरे साथ रहोगी।"

निरन्तर कोई किसी के साथ नहीं रह सकता।"

"अच्छा तो तुम चली जाओ। मैं इस पक्षी की भाँति तुम्हें जगत में खोजता ही रह जाना चाहता हूँ।"

तुम्हें आज रात्रि को माता जी के समक्ष उपस्थित किया जायगा। यही संदेश कहने आया हूँ चला जाऊँगा।"

ठहरो ! तुम जा नहीं सकती !" बड़े तीव्र शासन के स्वर में भैरव ने कहा— तुम एक पग आगे नहीं बढ़ सकतीं।"

"क्यों नहीं बढ़ सकता ?"

"मैं दौड़कर तुम्हें छू लूँगा और जो यह दूसरे की छूत से अपवित्र हो जाने का अभिमान तुमने जमा किया है, मैं उसे अभी चूर-चूर कर दूँगा।"

भैरवी सहमकर खड़ी हो गई।

"इस एकांत में तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता और तुम्हारे इस लौह नियम की मुझे जरा भी परवा नहीं है।"

तुम बड़े भयानक जान पड़ते हो। लो मैं ठहर गया। लेकिन तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ मेरा व्रत न तोड़ना।"

"वह एक कोरा अंधविश्वास है।"

इसी समय फिर वह पक्षी आकाश मार्ग में बोला—"कहाँ हो ? कहाँ हो ?"

भैरवी बोली—"यह तुच्छ काया के प्रेम की कामना बोल रही है। तुम्हारी भी यही कामना है। इसी को तुमने प्रेम का पवित्र नाम दिया है। क्या तुम ऐसे ही उसे तृष्णा को ढूँढते रह जाना पसन्द करते हो? या अपने प्रेम को कण-कण में बिखराकर उसकी परिपूर्णता प्राप्त करना चाहते हो?

"मैं प्यासा हूँ हाड़ चाम का बना, फिर कैसे एक आदर्शवादी प्रेम से तृप्त हो सकता हूँ? मेरी प्यास कल्पना से नहीं बुझ सकती। मैं प्यास बुझाना चाहता हूँ तो क्या अन्याय है? यह जिन्दगी जल चाहती है आदर्श नहीं।"

"हे भूले हुए मानव! तुम यह काया नहीं हो। यह सिर्फ एक खोल है—एक सन्दूक है। इसके भीतर रहनेवाली जो प्रकाश की निधि है वही तुम हो। क्यों तुम्हें इस पक्षी की तरह तन के पिंजरा में भटकते रह जाना ही पसन्द है?"

"जिस प्रकार बिना सन्दूक को खोले हम उसके भीतर की निधि को नहीं पा सकते ऐसे ही बिना हाड़ चाम की तृप्ति किए हम प्रकाश को नहीं पा सकते। हे विभूतिनी! कोरे आदर्श की डोर से कुछ नहीं हो सकता। बात ऐसी करो जो व्यवहार में आ सके।"

"कहाँ हो? कहाँ हो?—की आवाजों से ढूँढते रहना ही तुम्हारे भाग्य में लिखा है। मेरे यही समझ में आता है।"—कहकर भैरवी जाने लगी।

"लेकिन यह तभी सम्भव है जब तुम जल में डूब कर आग में जल कर या ऊँचे पहाड़ से गिर कर आत्महत्या कर लोगी।"

"सच ऐसी आत्महत्या भी क्या नहीं है?"

"तो मुझे ही यह आहुति देनी पड़ेगी। अच्छी बात है। अभी कुछ दिन का समय मैं तुम्हारे सोच सकने के लिये देता तो हूँ। उसके बाद यहीं किसी पहाड़ के नीचे मेरी लाश को गिद्ध और गीदड़ परिक्रमा करते होंगे। और इस निर्जन में रहनेवाली आवाज दिन रात तुम्हें कचोटती रहेगी। देखूँगा तब तुम कहाँ जाओगी कौन तुम्हारी रक्षा करेगा?"—

रव बोला ।

भैरवी चीख उठी ! वह दौड़कर ऐसे भागी जैसे कोई खूँखार ानवर आग की लपटों से भागता है— हे भगवान् ! बचाओ ! चाओ !

भैरव हँसकर बोला—"और यह तुम्हारा विश्वास ! सिर्फ तुम्हारा ार है तुम्हारी हठ नहीं ।"

भैरव ने उसका पीछा नहीं किया । एक टूटे हुए पेड़ के तने पर बैठ र सोचने लगा— आज रात को मुझे माताजी के सम्मुख उपस्थित कया जायगा । लेकिन यह नहीं मालूम अभियोग का उत्तर देने के लये मेरी पेशी है या मठ की पवित्र सभा में मरने के लिए ?"

वह उठकर चला । थोड़ी दूर जाने पर फिर उसने देखा एक पेड़ े सहारे उसकी ओर पीठ किए वह सिसकती खड़ी है । उसका एक ाथ कंधे पर त्रिशूल को धारण किए था और दूसरा हाथ पेड़ के सहारे सकी गाल पर आश्रित ।

भैरव ने उसे देखते ही दूर से आवाज दी— क्यों ? तुम अभी यहीं हो !

"हाँ ।"

किसकी प्रतीक्षा में ?

"तुम्हारी ही तो । तुमने मेरे ऊपर कोई जादू कर दिया है । सोचती ूँ अकारण ही तुम्हारे साथ झगड़ा करना बुद्धिमानी नहीं । लेकिन एक प्रार्थना है । —वह चुप हो गई ।

"कहो । मैं तुम्हारी प्रार्थना नहीं वह आज्ञा है ।"

"तुम्हें क्या मुझे बदनाम कर देने में सुख मिलेगा ?

तुम्हारी बदनामी मेरा मरण है ।"

"मैं तुम्हें जीवित चाहती हूँ ।"

"तुम चाहती हो ?" भैरव उछल पड़ा—"तो तुम्हारी चाहना का मैं विनम्र सेवक हूँ जो विद्रोही नहीं बनेगा ।"

१८

युग-चैतन्य

भैरव के मन में अब यह संदेह जरा भी नहीं रहा था कि माता जी के सामने उसे अभियोग का उत्तर देने के लिये जाना है। अभियोग केवल उस भैरवी की ओर से ही संभव था और वह भैरवी अब उसके ऊपर सदय हो गई थी।

जब दोनों साथ-साथ पहाड़ पर से उतर रहे थे भैरव ने शंका निराकरण के लिये उससे पूछा— 'माता जी के सामने मेरी पेशी किस लिये है। तुम बता सकती हो ?

भैरवी चौंक पड़ी बोली— यह क्या कहते हो ? तुमने अभी क्या कहा था ?"

भैरव घबराकर पूछने लगा— 'क्या कहा था ?"

यही कि तुम मुझे बदनाम न करना।"

भैरव की समझ में बात आ गई। उसने अपनी भाषा को ठीक करते हुए कहा— 'अब न होगी यह भूल। माता जी ने मुझे किस लिये बुलाया है, बता सकती हो ?"

'तुम्हें मठ की अंतरंग सदस्यता दी जायगी।"

"वहां क्या करना पड़ेगा ?

"सबसे पहले तुम्हारी परीक्षा ली जायगी।

'कैसी परीक्षा ?"

"तुम्हारे साहस की।

"किस प्रकार ?"

'तुम्हें लोहे की एक लाल सींक को अपनी जांघ के एक भाग से छू

कर दूसरी ओर निकाल देनी पड़ेगी।"

"मैं मर जाऊँगा।

"नहीं कुछ न होगा। साहस रखने पर केवल एक सुई के चुभने से अधिक पीड़ा न होगी। हड्डी में चुभाना नहीं है। मांस को छेदकर दूसरी ओर निकाल देना है।

"यदि मेरे धीरज छूटे। मैं साहस न कर सका और मैंने इनकार कर दिया तो क्या होगा ?"

भैरवी ने कहा—"यह माता जी की इच्छा पर निर्भर है। वे तुम्हें भरती भी कर सकती हैं और अस्वीकृत भी।

भरत ने पूछा—"और कौन-सी परीक्षा है ?

भैरवी ने उत्तर दिया—"जलते हुए अंगारों को दोनों हाथों की अंजलि में उठाकर मातृ-मन्दिर की एक परिक्रमा करनी होगी।

"हाथ जलेंगे नहीं ?

"उनकी रक्षा हो जाएगी।"

"और क्या परीक्षा होगी ?"

"कुछ तुम्हारी कल्पना और स्मरण-शक्ति के सम्बन्ध की।"

"फिर ?

"कुछ और प्रश्न पूछे जाएँगे—तुम्हारे बारे में।"

"अगर मैं झूठ बोल गया तो ?

"माता जी के सामने कोई झूठ नहीं बोल सकता। वे सबके मन के विचारों को जान लेती हैं।"

"तो उन्हें पूछने की क्यों आवश्यकता होती है, वे वैसे ही क्यों नहीं जान लेतीं ?"

"मैं नहीं जानती।"—भैरवी बोली।

"और क्या होगा फिर ?"

"फिर तुमसे कुछ प्रतिज्ञाएँ कराई जाएँगी।"

"कौन-सी ?"

आजन्म अविवाहित रहने की एक।

भैरव ने कुछ सोचकर कहा—'प्रेम विवाह नहीं है। मैं आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर लूँगा। प्रेम न करने की प्रतिज्ञा तो नहीं करनी पड़ेगी?

'मैं नहीं जानता।

'अगर उन्होंने मेरे-तुम्हारे बीच के प्रेम को जान लिया तो?

'तो दोनों को गोली से उड़ा दिया जायगा।

'सच बता दो क्या वे मेरे मन के भावों को जान लेंगी?' भैरव ने बड़ी व्यथा के साथ पूछा।

'अगर तुम उनके सामने अपने मन की भावना को जागृत रखोगे तो जरूर जान लेंगी।

'भावना को जागृत रखना क्या?

'निरन्तर स्मरण सोचते रहना और क्या?

'और दूसरी कौन-सी प्रतिज्ञा करनी होगी?"

'द्रव्य का संग्रह नहीं करना होगा।

'यह सहज साध्य है लेकिन एक बात बताओ यहाँ मठ में जो जाली सिक्के ढाले जाते हैं और नकली नोट छापे जाते हैं—वे किस लिए?

'मैं नहीं जानता।

'सदस्यों को वेतन देने के लिए तो नहीं?

'सभी सदस्य अवैतनिक हैं। जब द्रव्य के संग्रह का निषेध है तो फिर वेतन कैसा?

"और कौन-सी प्रतिज्ञाएँ हैं?

'ऐसे ही और भी कुछ हैं

दोनों भैरव के कमरे के निकट आ गए थे। भैरवी ने कुछ दूर पर ही अपना मार्ग बदलने के लिए कहा—'अब मैं यहाँ से जाता हूँ।

"इस कमरे तक तो चलो न।

वह राजी न हुई। बोली—"नहीं न जाने ये लोग क्या समझें।

भैरव ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। भैरवी मठ की ओर चली गई। आज ही भावना में यह पहली बार इस प्रकार संकोच का उदय हुआ। भैरव अपने कुटीर में लौट आया।

संध्या निकट थी। वह बैठा-बैठा सोचने लगा—"भैरवी के प्रेम के लिए मैं तमाम परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सकता हूं। उसका प्रेम एक ओर मेरा मालिक है तो दूसरी ओर अगर मेरी दुर्बलता सिद्ध हो गई तो क्या होगा? माता जी के सामने उस बात को सोचूँगा ही नहीं।"

कुछ देर बाद उसका मित्र [illegible] आ पहुँचा। आते ही उसने कहा—"मित्र तुम्हारे ऊपर माता की बड़ी कृपा हुई है। इतनी जल्दी कोई भी दीक्षा के लिए नहीं चुना गया। तुम अवश्य ही बधाई के पात्र हो।"

[illegible] ने भैरव का हाथ पकड़ लिया था। उसने बड़ी उदासीनता से अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"लेकिन मित्र मुझे तो बड़ा भय लगता है।"

"भय कैसा?"

"तुम्हारे इस भयंकरवाद में। नाम ही ऐसा है और तुम पूछते हो भय कैसा?"

"सिर्फ दुश्मनों को डराने के लिए ऐसा नाम रखा गया है। वास्तव में हम विशुद्ध मानवता के अनुगामी हैं। धरती पर के भाईचारे के समर्थक हैं। रंगभेद, बड़े छोटे काले-गोरे की विभक्तियों के पोषक नहीं हैं।"

"लेकिन मार्ग में जो भयानक अग्निपरीक्षाएँ हैं उनका क्या होगा?"

"वे सब नाममात्र की हैं।"

"नहीं।"

"किसने कह दिया तुमसे?"

"मुझे मालूम है।"

"माता जी के सामने कहो भी तो। संभव है माता तुमसे कुछ काम कर लेने पर उन परीक्षाओं को जरूरी न समझें। वे टाल भी दी जा सकती हैं। सबसे बड़ी परीक्षा भावना की है।"

"भावना की परीक्षा? बन्धु, वैसे मैं मिट्टी का मनुष्य हूँ कहाँ पर

'आजन्म अविवाहित रहने की एक ।"

भैरव ने कुछ सोचकर कहा— प्रेम विवाह नहीं है। मैं आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर लूंगा। प्रेम न करने की प्रतिज्ञा तो नहीं करनी पड़ेगी ?

मैं नहीं जानता।

'अगर उन्होंने मेरे-तुम्हारे बीच के प्रेम को जान लिया तो ?

तो दोनों को पोथी से उड़ा दिया जायगा।

'सच बता दो क्या वे मेरे मन के भावों को जान लेंगे ? भैरव ने बड़ी व्यथा के साथ पूछा।

'अगर तुम उनके सामने अपने मन की भावना को जागृत रखोगे तो जरूर जान लेंगे।

'भावना को जागृत रखना कैसा ?

निरन्तर स्पष्ट स्मरण रखना और क्या ?

"और दूसरी कौन-सी प्रतिज्ञा करनी होगी ?

'द्रव्य का संग्रह नहीं करना होगा।

'यह सहज मान्य है लेकिन एक बात बताओ यहाँ मठ में जो स्वामी मिलकर काम करते हैं और सबकी भेंट ले जाते हैं—वे किस लिए ?

मैं नहीं जानता।

'सदस्यों को वेतन देने के लिए तो नहीं ?"

"सभी सदस्य अवैतनिक हैं। जब द्रव्य के संग्रह पर निषेध है तो फिर वेतन कैसा ?"

और कौन-सी प्रतिज्ञाएँ हैं ?

'ऐसे ही और भी कुछ हैं

स्वामी भैरव के कुटीर के निकट आ गए थे। भैरवी ने कुछ दूर पर से ही अपना साथ अलग करने के लिए कहा— अब मैं यहाँ से जाता हूँ।

'इस कुटीर तक तो चलो न।"

वह राजी न हुई। बोली— नहीं न जाने ये लोग क्या समझें।"

भैरव ने भी अधिक आग्रह नहीं किया। भैरवी मठ की ओर चली गई। आज ही भावना में यह पहली बार इस प्रकार संकोच का उदय हुआ। भैरव अपने कुटीर में लौट आया।

सन्ध्या निकट थी। वह बैठा बैठा सोचने लगा— "भैरवी के प्रेम के लिए मैं तमाम परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सकता हूँ। उसका प्रेम एक ओर मेरा लक्ष्य है तो दूसरी ओर अगर मेरी दुर्बलता सिद्ध हो गई तो क्या होगा? माता जी के सामने उस बात को सोचना ही नहीं।"

कुछ देर बाद उसका मित्र ड. व. आ पहुँचा। आते ही उसने कहा— "मित्र, तुम्हारे ऊपर माता जी बड़ा सदय हुई हैं। इतनी जल्दी कोई भी दीक्षा के लिए नहीं चुना गया। तुम अवश्य ही बधाई के पात्र हो।"

ड. व. ने भैरव का हाथ पकड़ लिया था। उसने बड़ी उन्मीलनता से अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"लेकिन मित्र मुझे तो बड़ा भय लगता है।

"भय कैसा?"

"तुम्हारे इस भयकरवाद में, नाम ही भयंकर है और तुम पूछते हो भय कैसा?"

"सिर्फ दुर्जनों को डराने के लिए ऐसा नाम रखा गया है। वास्तव में हम विशुद्ध मानवता के सहपाठी हैं। धरती पर के भाईचारे के समर्थक हैं। अनाचार और ढोंगी काम-चोरों की विभक्तियों के पोषक नहीं हैं।"

"लेकिन मार्ग में जो भयानक अग्निपरीक्षाएँ हैं उनका क्या होगा?"

"वे सब नाममात्र की हैं।"

"नहीं।"

"किसने यह दिया तुमसे?"

"मुझे मालूम है।"

"माता जी के सामने भी ऐसे ही था। संभव है माता तुमसे कुछ बात कर लेने पर उन परीक्षाओं की जरूरी न समझें। वे छूट भी दी जा सकती हैं। सबसे बड़ी परीक्षा भावना की है।"

"भावना की परीक्षा? बन्धु, इसी में मिट्टी का मनुष्य हूँ कहीं पर

मेरी दुर्बलता रह सकती है मगर माता जी ने उसे पकड़ कर मुझे तिरस्कृत कर दिया तो इस अपमान से मैं फिर जीवन में कभी उबर न सकूँगा। इसलिए मुझे जाने दो मेरे अपराध क्षमा करो।

"नहीं वत्स" इ. न ने भैरव का बड़े आग्रह के साथ हाथ पकड़ लिया—"भगवान को तुम्हारे हाथ से हमारे संघ का बहुत बड़ा काम कराना मंजूर है। इसलिए तुम हमें निराश न करो।"

भैरव कुछ सोचने लगा।

"यह सच है यहाँ तुम्हारा कोई वेतन न होगा। भोजन और वस्त्र आदि की भी यहाँ बिलकुल सतोगुणी व्यवस्था है। लेकिन भाई तुम समझदार हो तुम्हें सिक्के की पोल का पता है। उनके इकट्ठा हो जाने से तिल भर भी मनुष्य के सुख की वृद्धि नहीं हो सकती और न भोजन की बहुमूल्यता से ही हमारे स्वास्थ्य का सुधार होता है। वस्त्र और रहन-सहन की जो चमक है वह भी तो केवल एक मस्तिष्क की अतिरंजनामात्र है। हमारी सम्पत्ति और हमारा असली स्वरूप हमारी भावना है। भावना की परिष्कृति ही हमारी मूल प्रगति है। यहाँ तुम्हें भावना के जगत का विस्तार देखने और समझने को मिलेगा।

भैरव अब भी सोच विचार में ही पड़ा था।

"यहाँ तुम्हें ध्यान की विभिन्न भूमिकाओं को पार करने की शक्ति प्राप्त होगी। तब तुम्हें पता चलेगा—यह बाहर का जितना भी रंगमंच है इसमें जितने भी पात्र अभिनय कर रहे हैं। सब की डोरा रट मची हुई है इनके भावों की डोर और डोल किसी और ही सूत्रधार के हाथों में है। कौन है यह सूत्रधार? यह यही भावना है।"—इ. न. ने कहा।

भैरव हँसा—"बहुत बढ़िया तुम्हारा धारा प्रवाह चला यह। ठीक है। एक बात नहीं समझा। हमारी या यह व्यक्तिगत भावनाएँ हैं इनका सूत्रधार कौन है?"

"इन सब में प्रबल भावना जिसकी है वह।"

"माता जी की भावना हम सब में प्रबल होगी ?"—भैरव ने पूछा।

"इसमें सन्देह ही क्या है !" १ ज धीरे-धीरे कहने लगा— और हमें उसकी भावना से भी बड़ी भावनायकता की आवश्यकता है। उसी के लिए तो हमारा यह संघ है।"

'माता जी क्यों नहीं अपनी भावना से मेरे जीवन-क्रम का पथ बना देंगी ?"—भैरव ने पूछा।

१ ज हँसा— 'सच पूछो तो यह उन्हीं की भावना है जो तुम्हें बीहड़ एकान्त में माता-पिता और घर-दर का मोह छुड़वाकर खींच लाई है।"

भैरव ने कहा— फिर तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हो ? तुम्हारे इस आग्रह और विनय का क्या मतलब है ?

१ ज ने जवाब दिया— 'सिर्फ मेरा मोह।

'मुझे छोड़ दो फिर। मैं अपनी राह खुद बना लूँगा।

१ ज ने कुछ सोचकर कहा— 'अच्छी बात है बन्धु तुमने मेरी एक दुबलता दूर कर दी। तुम अपनी इच्छा का अनुसरण करने के लिए स्वतन्त्र हो।

भैरव बिना भैरवी को देखे ही भयंकरवादियों के संघ पर खिंचा हुआ था उसके स्तम्भ पर तो अब उस उस मठ के सिवा दूसरा कोई स्थान ही नहीं दिखाई दे रहा था। उसने पूछा— 'माताजी की भावना से बड़ी भावना किसकी है ?"

"युग-चैतन्य की—यही हमारा लक्ष्य है।

"मैं नहीं समझा।"

"हमारा एक विशेष लक्ष्य है। यह जो तुम हमारे बम बनाने आदि के बारे में सुनते हो वे सब हमारे आवरण हैं। वास्तव में हम भयंकर वादी नहीं हैं यह नाम हमें हमारे शत्रुओं द्वारा दिया गया है। हम परम शान्तिवादी हैं।

"यह तो है ही। युग चैतन्य को समझाओ।"

'हाँ वही तो । हम प्रतिमानवता पर पक्का विश्वास रखते हैं । वह मानव को अपनी भावना से सारे मग और विश्व को प्रभावित कर देगा—वही यम चैतन्य है ।

फिर तुम मयमरवादी हो ।

"हाँ कुछ लोगों को यह नाम पसन्द नहीं इसलिए हमने एक नया नाम रख लिया है । सिद्धान्त और ठिकाना वही समान है ।

ठीक है तो तुम्हारा यह धार्मिक और राजनीतिक संगठन नहीं है ?"

'भावना भी हो जो साधारण मानते हों विश्व का बीज समझें हों उनके लिए ये शिखरों के टुकड़े में विचारों के सूत्र वे शक्ति के सिंहासन बिलकुल तुच्छता ही है ।

मैं समझ गया । मुझे तुम्हारे संगठन पर धीरे धीरे श्रद्धा हो गई ! मैं तुम्हारे अधीन हूँ । मेरे इस शरीर का तुम जैसा चाहो वैसा उपयोग कर सकते हो । —भरव ने कहा ।

"अभी हम तुम्हें उसी मग चैतन्य के पद पर बिठाकर तुम्हारे भीतर उसी की प्राण प्रतिष्ठा करेंगे ।

भैरव के प्राणों में कोई मीठी रागनी बजने लगी । वह बोला— 'मुझे इसका कोई अहंकार न हो ।

ऐसे ही क्षण में उसका आविर्भाव होगा ।

भैरव बोला— 'अभी ।

"हाँ अभी । तुम हमारे मग के प्रवर्तक बनोगे । माता जी के आसन से भी ऊपर तुम्हारा स्थान होगा ।

'मेरा ? भैरव चौंक पड़ा—"ऐसा क्यों ?"

"यह उन्हीं का आदेश और उन्हीं की इच्छा है ।"

"लेकिन उन्होंने मुझे कभी देखा नहीं है मालूम नहीं मेरे भीतर कौन सी कमजोरियाँ हैं ।

बल-संग्रह करोगे तुम । हम सब तुम्हारे ऊपर बिजली की लहरें

छोड़ेंगे—तुम्हारी सारी कमजोरी भविष्य में बदल जायगी। ह्व ज ने अपने साथ के एटैची को खोलकर कहा— ये तुम्हारे वस्त्र हैं इन्हें पहन कर जाना होगा।

"भावना को तुम फिर यह क्यों वस्त्रों की तुच्छता में लपेट रहे हो? नहीं मैं जैसा हूँ ऐसे ही चलूँगा।"

"नहीं तुम्हारे ही विचारों से नहीं दूसरों के विचारों से भी तुम्हारी भावना बनेगी। तुम्हें ऐसे वेश में म त्रा ओं के सामने जाते हुए कई लोग देखकर तुम्हारे विषय में जो धारणा बनायेंगे उससे तुम्हारे व्यक्तित्व को हानि पहुँचेगी।

'जसी तुम्हा ी इच्छा। भैरव बोला— मैं निष्क्रिय होकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ—चाहे जैसा रंग भर दो। मैं तुम्हारा कोई विरोध नहीं करना चाहता।"

ह्व ज ने उसे घुटनों तक लटकता हुआ एक रेशम का लबादा पहनाया खूब ढीला-ढाला। रेशम का ही एक पीताम्बर बाँधा। पैरों में एक जरी के काम का जूता पहनाया सिर में एक भगवी रंग की मखमली टोपी दी तुर्की टोपी से मिलती-जुलती। हाथ में एक नई रिस्टवाच बाँधी गई, लबादे की बाईं छाती पर की जब में एक फाउन्टेनपेन। भैरव के हाथ में एक पुस्तक देकर उसकी साज-सज्जा को पूर्णता दी गई।

भैरव ने उस पुस्तक को खोलकर कहा— 'यह तो कापी है सब खाली पेज हैं।"

हाँ तुम्हें जब प्रेरणा मिलेगी तो तुम इसमें युग-चैतन्य की गीता लिखोगे।

बड़ी नम्रता से भैरव ने कहा—"मैं तो कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मैंने तो कोई भी परीक्षा पास नहीं की है।

'तुम्हें किसी दफ्तर में नौकरी करनी नहीं है। पढ़ने-लिखने से क्या होता है? पढ़ने-लिखने से कोई क्या लिख पाता है? प्रेरणा से लिखोगे जो लिखोगे सोचकर नहीं देखकर। चलो अब देर हो रही है।"—ह्व ज

बोला।

चलो। —कहता हुआ भैरव जब बाहर आया तो उसने देखा एक स्वयंसेवक एक घोड़ा एक छत्र और एक चँवर लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। भैरव ने ५ ज की ओर देखा नेत्रों में एक प्रश्न लेकर।

'हाँ तुम्हारे लिए है इसमें चढ़कर जाना होगा। तुम हम सबसे विशेष ऊँची स्थिति पर हो। तुम्हें यह अभ्यर्थना स्वीकार करनी होगी।"

भैरव ज्यों ही घोड़े पर चढ़कर जाने लगा। एक दल कुछ लोगों का और आगे बढ़ा था वह शंख और घड़ियाल बजाने लगा कुछ भैरव के ऊपर पुष्प और अक्षत बरसाने लगे।

इस छोटे-से जलूस के साथ भैरव मातृ-मन्दिर के द्वार पर आ खड़ा हुआ। वहाँ अनेक सेवकों के साथ कई लोग हाथों में आरती लिए खड़े थे।

भैरव अभिलाषा भरे नेत्रों से उन लोगों के बीच में विभूतिनी को ढूंढ रहा था पर उसका कहीं पता न था। घोड़े से उतरने पर फिर एक बार शुभ्र शंख-ध्वनि हुई और उसने ५ ज के साथ मातृ-मन्दिर में प्रवेश किया।

एक चौक के बाद दूसरा दूसरे के बाद तीसरे चौक में ५ ज भी रुक गया। उसने भैरव से कहा— अब तुम अकेले ही जाओ पाँचवें चौक में तुम्हें माता जी के दर्शन होंगे।

भैरव ने चौथे चौक में प्रवेश किया। तीनों चौकों में उसका स्वागत और अभ्यर्थना करने वाले बहुत लोग थे। चौथा चौक बिलकुल शून्य ही था। पाँचवें चौक के प्रवेश-द्वार पर उसे वही विभूतिनी खड़ी दिखाई दी। उसने भैरव के गले में एक फूलमाला डाल दी।

भैरव बोल उठा—"तुम कहाँ खड़े हो? मैं कब से तुम्हें ढूंढ रहा हूँ।"

विभूतिनी ने अपने अधरों पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का संकेत किया। और धीरे से द्वार खोलकर कहा—"यहाँ आओ तुम्हारी प्रतीक्षा की जा रही है उस सामने के कमरे में।"

भैरव ने ज्योंही उस कमरे में प्रवेश किया त्योंही एक स्थूलकाय
ा उसे देखकर उठ गई। वह एक केसरिया रंग की रेशमी साड़ी पहने
थी। हाथों में सोने की एक-एक चूड़ी थी गले में एक रत्न हार
। नाक और कान आभूषण विहीन थे। माथे पर भस्म चन्दन की
एँ थीं।

भैरव ने माता के पैर छूने चाहे माता ने उसे उठा लिया। सारा
रा भाँति भाँति की सज्जा से परिपूर्ण था। बढ़िया गलीचे फर्श पर
छे हुए थे। दीवारों पर नाना देवों की चित्रकारी एक बहुत बड़ा दर्पण
र कार्निसों पर विविध मूर्तियाँ। द्वारों और खिड़कियों पर बढ़िया
दे लटक रहे थे। एक छोटे-से मेज पर रेडियो रखा था और एक कोने
सहारे बहुत-से भारतीय वाद्य-यन्त्र थे। अंगीठी के पास रखे हुए धूप
न में जलती हुई धूप से सारा कमरा सुवासित था।

भूमि पर तकियों के सहारे बैठने का प्रबन्ध था। एक ओर एक
ट भर ऊँचा तख्त बिछा था उसमें कुछ बढ़िया मखमली कालीन
छे थे। भैरव ने अनुमान लगाया वह माता जी का आसन होगा।
ताजी ने भैरव का हाथ पकड़कर उसी मसनद पर बिठा दिया और
ग खड़ी रह गईं।

भैरव ने लोगों की किंवदन्ती पर माता का जो स्वरूप बनाया था
समें कोई भी सादृश्य न पाकर उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उसने
ता जी से कहा—"आप भी बैठिए।"

'हम तुम्हारी सत्ता में लोक-चैतन्य का आविर्भाव करेंगे। जब तुम्हारे
ामने कोई भी न बैठ सकेगा तभी यह होगा।

भैरव माता जी की बात को समझने का प्रयास करने लगा।

माता जी बोलीं—"तुम अपने को इसी घड़ी से इस मठ का महा-
प्रभु समझो जो कोई बात तुम्हारी समझ में न आती हो उसे पूछ लो।"

"मेरी दीक्षा ?"

'तुम्हें कोई दीक्षा नहीं दे सकता तुम परमगुरु हो।"

मेरी परीक्षा ?
"तुम्हारी कोई परीक्षा नहीं ले सकता ।"
"वह भिक्षुणी कौन है ?"

माता जी क्षण भर चुप रहकर बोलीं— तुमसे कोई बात नहीं छिपाई जा सकती । वह लड़की बचपन ही से लड़कों के वेश में लड़के की तरह पाली गई है । कोई इस भेद को नहीं जानता । शंका अनेक रखते हुए भी रक्षा [करें । जब इस मठ से नारी का बहिष्कार किया गया तो वह लड़का समझकर ही यहाँ रहती चली आ रही है । किसी ने भी उसका विरोध नहीं किया लेकिन

"हाँ माता कहिए ।

"लेकिन तुम वह पहले व्यक्ति हो जिसने उसका रहस्य सबके सामने प्रकट कर रख दिया ।

"वह कौन है ?

"मेरी कन्या है ।

अब तो भैरव के काटो तो खून नहीं । वह चुप रहकर बैठा सोचने लगा—"अब यहाँ यह महाप्रभुताई नहीं चल सकती । ये लोग मुझे यहाँ युग-चैतन्य या योग चक्रम्य जो कुछ भी बनाते हों—मन शारदीय में यहाँ योग-चैतन्य । इसलिए अधिकारी है बात अभी ठीक हो जानी चाहिए ।

माता कुछ खिन्नता से बोलीं—"आप इसके सम्बन्ध में जो भी निर्णय देंगे मुझे मान्य होगा । यहाँ रहने की आज्ञा दें अथवा उसे निर्वासित कर दें ।

"विचार कर ही बताया जायगा ।"—बड़ी गंभीरता से युग-चैतन्य जी ने कहा । वे एकाएक अपनी उस मायाभवन पर अभी जमकर नहीं बैठ सके थे ।

कुछ देर दोनों चुप रहे । भैरव बोला—"अगर उन्हें हम पुरुष के वेश से नारी के रूप में रख दें तो क्या हम धार्मिक सत्य को प्रकट न

करेंगे ?"

"आपकी श्रद्धा सर्वोपरि है।"

"झूठ कहाँ तक छिप सकती है ?"

"लेकिन ... माता इतना ही कहकर चुप हो गई।

भैरव ने प्रकरण बदल दिया—"मेरे युग चैतन्य होने का क्या सबूत है ?"

"ज्योतिष में यह बात मानी गई है। आपको ऐसे प्रश्न कर अपनी महिमा नहीं घटानी चाहिए।"

"मेरा क्या कार्य क्रम होगा यहाँ ?"—भैरव ने पूछा।

"आपका यह प्रश्न भी आपके गौरव के अनुकूल नहीं।"

भैरव अब अपने आसन में जमकर बैठ गया। उसने कहा—"अच्छी बात है आप अब जा सकती हैं।"

माता जाने लगी—"आपकी सेवा के लिए यहाँ एक स्वयंसेवक नियुक्त रहेगा।"

"कौन ?"

जिसे आप कहें।

"वही त्रिवलिनी।

"लेकिन ..."

"युग चैतन्य के विधान में तुम्हें क्या कुछ कहने का अधिकार रहेगा ?"

"नहीं।"—माता चली गई।

१६

पुरुषत्व का तेज

भैरव मसनद पर से उठा। उसने एक सरसरी निगाह चारों ओर कमरे पर डाली। फिर वह बाहर आया। द्वार के पास एक मनुष्य एक तिपाई में बैठा ऊँघ रहा था। भैरव ने उससे कहा—"यहाँ ई ऊँघ क्यों रहे हो युग-चैतन्य के द्वार पर ?"

मनुष्य अचकचाकर उठ खड़ा हुआ उसने हाथ जोड़ लिए—"क्षमा हो।"

"कौन हो तुम ?"

"एक स्वयंसेवक हूँ, आपकी सेवा के लिए यहाँ पर नियुक्त हूँ।"

"तुम तो ऊँघ रहे हो तुम्हें देखकर मेरे भी नींद जोर मार रही। जाओ तो जाओ। युग चैतन्य किसी से बेगार नहीं लेता। जाओ पने मुखिया को भेजो।"

"मेरा अपराध क्षमा कीजिये।"—स्वयंसेवक गिड़गिड़ाया।

"यहाँ मेरी सेवा के लिये कई सेवक मेरे साथ ही हैं।"

"उनके आने तक।"

"वे आ गए हैं। अलग नहीं रहते ये हाथ-पैर, आँख-कान सब मेरे ाकर ही तो हैं।"

इसी में युग-चैतन्य की बड़ी महिमा है। उसकी जय हो। उसकी ाम से धरती में प्रकाश फैले।"

"तुम पढ़े लिखे ही स्वयंसेवक जो कहा गया है वही मानो।"

स्वयंसेवक चला गया। भैरव को एक ही क्षण प्रतीक्षा करनी ी कि वह त्रिपुरसुन्दरी आ पहुँची। भैरव मोह-स्तब्ध रहकर उसे

देखता ही रह गया।

उसने एक हाथ से त्रिशूल ऊँचा कर एक हाथ छाती पर रखा फिर सिर झुकाकर कहा—"आदेश।"

इधर से कहीं को रास्ता है ?

"नहीं।"

"तब तुम जहाँ से आई हो उस द्वार को बन्द कर दो।

त्रिगुणिनी ने नीची नजर कर कुछ संकोच दिखाया।

भैरव बोला—"मेरी आवाज को माताजी ने इस मठ में सर्वोपरि
नाया है। क्या तुम उनकी इच्छा और मेरी आज्ञा का तिरस्कार
करोगी ?"

त्रिगुणिनी ने द्वार बंद कर लिए।

"अब यहाँ कोई नहीं आ सकता ?

त्रिगुणिनी बोली—"यहाँ कोई नहीं आ सकता। लेकिन ऐसा करने
जरूरत क्या है ?"

"माताजी भी तो यहाँ किसी को नहीं आने देती थीं।"

"कीमती रत्न को बहुत छिपाकर कई तालों में बंद कर रखना
है। बाहर जो लोगों का कौतूहल पैदा होगा उसी की बिजली से
भीतर प्रकाश पैदा होगा। तभी तो यह इतनी मोटी किताब लिखी
ी इसके इतने पेज रँगने हैं। —भैरव ने अपने कमरे का परदा
र त्रिगुणिनी को मखमल पर रखी हुई वह कोरी पुस्तक दिखाई।
स एकांत में एक पाप की उपस्थिति में उस पुरुषवेशिनी को अपना
भूला न रह सका। उसके कपोलों पर लालिमा दौड़ गयी आँखों
र और कंठ रुक गया।

व ने पूछा—"इस चौक के इन बाकी कमरों में कौन रहता है ?"
कोई नहीं। ये सब तुम्हारे लिये खाली करा लिए गए हैं।"
से कौन रहता था ?"

तुम्हारे कमरे में माता जी सामने वाले में मैं और इन

कमरे में घतरम सभा के अधिवेशन होते थे।

"वे अब कहाँ रहती ?

"चौथे चौक में।

और तुम कहाँ रहोगी ?

अपनी भाषा ठीक करो तभी उत्तर दूँगी।

'यहाँ कौन है सुननेवाला ? किसकी बदनामी का डर है ? हम दोनों ही तो हैं भैरवी ! तुम्हें निर्भय होना चाहिए।

'नहीं !"

'मैं शब्दों का अशुद्ध प्रयोग नहीं करूँगा। सत्य को स्पष्ट ही कहना चाहिए। नहीं तो वह अपनी मार्मी किताब कैसे लिख सकेगा ? उसमें कहानी नहीं लिखनी है। जीवन के सत्य का वर्णन लिखना है। भैरवी ! तुम्हारे कपड़ों से कोई और भोग्या भाव मैं नहीं चाहूँगा—मैं युग चैतन्य हूँ।

'चुप रहो चुप रहो ! तुम क्या मुझे नारी-संबोधन देते हो ? मैं इसका अभ्यस्त नहीं हूँ।

'नया अभ्यास हो जाएगा धीरे-धीरे।

'मैं नारी नहीं हूँ। —तीव्र प्रतिवाद में वह चिल्लाती चली।

"तुम्हारे जैसा आचरण है इस चैतन्य धरती पर वे सब दम्भों को तोड़ने के लिये तमाम भ्रमों को नष्ट करने के लिये और प्रत्येक अंधविश्वास को उखाड़ देने के लिए यहाँ आता है।

भिक्षुणी बोली— 'धीरे-धीरे बोलो।"

'नहीं और भी ऊँची आवाज से सारी धरती पर इसे प्रतिध्वनित करता है। यह देश-देश की कथा है घर घर की कहानी है। क्यों भैरवी ?"

'तुम्हारे इस संबोधन से मुझे मर्मान्तक व्यथा पहुँच रही है।

"यह सत्य को दण्ड देने का पाप है इसे प्रायश्चित देना ही होगा। चलो मेरे कमरे में।"

दोनों ने उस कमरे में प्रवेश किया। भैरवी ने उस त्रिशूल को दो खूंटियों पर तिरछा रख दिया।

"क्यों भैरवी तुम तो कहती थी यह त्रिशूल धरती पर नहीं रखा जाता। इन खूंटियों पर रख देने से क्या इसे भूमि का स्पर्श प्राप्त नहीं हो गया?"

"नहीं ये खूंटियां विशेष प्रकार की नहीं देख रहे हो तुम ?

"रबर से मढ़ी हुई हैं—क्यों?"

"रबर से होकर बिजली धरती में नहीं चली जाती इसलिये।

"खूब! तुमने पश्चिम के साइंस और पूर्व की आत्मा का समन्वय किया है। और पैरों की राह से जो बिजली पाताल को चली जाती होगी?"

"नहीं मेरे चप्पल भी रबर के हैं।"

"मैं समझ गया।" भैरव आसन पर बैठ गया अपना जूता खोल कर—"आओ तुम भी आओ।

"नहीं इस पर और कोई नहीं बैठ सकता।—त्रिशूलिनी भूमि के एक अलग आसन पर बैठती हुई बोली।

"यह पुराना विधान होगा। नए विधान में एक कोई अर्थ नहीं रखता। वह विडंबना है धोखा है। नया विधान जड़-चैतन्य का विधान है। धन के माने ही के हैं। बिजली के लिए ऋण और धन दोनों चाहिए, तभी प्रकाश पैदा होगा। और तुम्हारे त्रिशूल में तो तीन कांटे हैं।

"मुझे माता जी से पूछना पड़ेगा।"

"अच्छा बैठो जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।

भैरवी बड़े संकोच और भय में रुककर एक तरफ बैठ गई। भैरव उठकर कमरे में घूमने लगा—"इन संदूकों में क्या है?"

"माता जी का सामान।

"लेकिन उन्होंने कहा है इस सब सामान आश्रित हैं ये।" कहते हुए

एक सन्दूक खोलकर देखा— इसमें उसके कपड़े हैं। भैरव ने एक साड़ी और एक चोली बाहर निकाल ली।

'ये कपड़े क्यों निकालते हो?'

'इन्हें मैं पहनूँगा।'

'छी! छी! तुम क्यों पहनोगे?'

'तुम्हारा श्रृंगार करने के लिए। अगर तुम्हें यह ठीक नहीं जान पड़ता तो तुम पहन लो इन्हें। और चोली पैर के लिए इस दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख लो तो फिर फैसला करना—कौन अधिक सुन्दर है या कम?'

"नहीं आज नहीं।

इसी समय बाहर के द्वार को खटखटाने की आवाज आई। भैरव बोला— 'जाओ देखो कौन है?

भैरवी ने द्वार खोले। उसकी माता थी वह। उसने कहा— 'क्यों द्वारों पर साँकल क्यों लगा दी?

भैरव भी वहीं पर आ गया था। उसने उत्तर दिया— 'यह भग-चैतन्य की इच्छा है।' आपने कहा था इस मठ में उसकी इच्छा सर्वोपरि रहेगी। तभी तो उसे प्रकाश प्राप्त होगा।"

माता निरुत्तर रह गई। उसने फिर भैरव से कहा— 'अभी इसके खाने-पीने का भार तुम्हारे ही ऊपर है और दीपक जलाने का समय हो गया।"

दोनों साथ-साथ चले गए, भैरव अपने कमरे में लौट गया। पलंग पर लेट कर विचार करने लगा— 'कहाँ विचित्र भूल-भुलैयाँ में आकर फँस गया हूँ। यह अनोखे ग्रन्थों से भरा अघोरपंथियों का संघ मेरी समझ ही में नहीं आ रहा है। इनकी यह भग-चैतन्यता तो मेरे मस्तिष्क में कोई स्पष्ट रेखा नहीं बनाती। हाँ यह त्रिपुरिनी—अगर इसको वेद बरता पा सके तो जरूर काम बन सकता है।

माता ने लड़की से पूछा—"भग-चैतन्य ने द्वार बंदकर साँकल लगा

देने को कहा ?"

"हाँ।"

माता सोच-विचार में पड़ गई।

"मैंने विरोध किया था पर उन्होंने कहा— मेरी आज्ञा का विरोध किया जायगा तो फिर मैं अपने पद से गिर जाऊँगा।

माता बोली—"जान पड़ता है ज्योतिष में कुछ भूल हो गई।

"नहीं माँ कुछ भूल नहीं हुई।"

"कैसे कहते हो ?

"मुझे उस नग्न-पुरुष के भीतर एक दिव्य तेज दिखाई देता है जो अवश्य ही संसार के सारे पाखंड और अन्धविश्वासों की जड़ हिला देगा।"

"लेकिन उनका यह द्वार बंद कर मौन साध लेना अन्धविश्वासों का निर्वाण है या निर्माण ?

"वे कहते हैं जब मुझे बाहरी दुनिया से छिपाकर यहाँ रखा गया है तो मैं भीतरी दुनिया से भी छिप जाऊँगा।

"अकेले में छिप सकते हैं। किसी के साथ नहीं।

"उनके द्वार पर एक स्वयंसेवक तो चाहिए ही।

"सो है वही रहेगा।

"वे उसे नहीं चाहते। मेरा कमरा तो नहीं है।"

"लेकिन द्वार बंद नहीं होना चाहिए।

"मैं कह दूँगा उनसे।"

"कौशल से कहना पड़ेगा। जल्दी मत करो। तुम कहते हो ज्योतिष की गणना में भूल नहीं हुई।

"नहीं भूल तो बिलकुल नहीं हुई है।"

"उन्होंने उस पुस्तक का कोई पेज लिखा था ?"

"नहीं लिखने की बात कहते तो हैं।"

"एक पेज भी लिखा जाए तो ज्योतिष की बात का पता चल

जाएगा।"

'किस तरह ?

"ज्योतिष के द्वारा यह लिखा हुआ पेज हमारे पास रखा है। अगर यह उनके लिखे पेज से मिल गया तो फिर हमें कोई भय नहीं है।

"मिल जाएगा जरूर मिल जाएगा।

अच्छा जाओ तुम दीपक लेकर जाओ अन्धकार बढ़ रहा है।

भैरवी दीपक जलाकर भैरव के कमरे को ले चली। उसकी माता ने उसे रोककर कहा— 'ठहरो यह एक चादर ओढ़ लो।

"क्यों माँ ?

"चादर की ओट हवा से दीपक की रक्षा करेगी। इसके सिवा तुम इसे गले में बांधकर लिए रहना।

"क्यों ?

पुरुष भी चादर ओढ़ते हैं।

भैरवी दीपक को चादर की ओट में कर जब भैरव के पास पहुँची तो वह कहने लगा— 'मेरी इच्छा की भावी पूर्ति कर तो तुम ले ही आई हो।"

मैं नहीं समझी।

"यह चादर ! द्वार बन्द कर सांकल चढ़ा दो।"

"अभी तो तुम्हारे लिए भोजन लाऊँगी। —कहकर भैरवी भोजन लेने गई।

अपना भोजन कर और गुरु-चैतन्य का भोजन लेकर जब वह जाने लगी तो माता ने उसे फिर सचेत किया— 'द्वार में सांकल न लगाना और ज्यादा देर उनके कमरे में न बैठना।"

"लेकिन उनकी इच्छा का भी ठुकराना नहीं है।

"हाँ कौशलपूर्वक।"

भैरवी जब भोजन लेकर भैरव के कमरे में पहुँची तो वह उस पुस्तक के पहले पेज में कुछ लिख रहा था। खाना तिपाई पर रखकर

वह बोली— तुमने तो इस पुस्तक में लिखना शुरू कर दिया ?

भैरव ने पुस्तक बन्द कर दी— लेकिन अभी तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं। लो अब यह साड़ी पहन लो।

"माता जी नाराज होंगी।"

"द्वार पर साँकल लगा दो मेरी आज्ञा है।"

भैरवी द्वार पर साँकल लगा आई। भैरव ने फिर उसकी ओर साड़ी बढ़ाई। वह उसके आग्रह का विरोध न कर सकी। उसने उसके भीतर जिस नारी को जगा दिया वह विवश होकर अपने वेश के लिए अधीर हो उठी। वह साड़ी लेकर बोली— मैं अपने कमरे में जाकर बदल आती हूँ।"

तुरन्त ही वह साड़ी बदल कर आ गई जब उसने दर्पण में अपने को देखा तो भैरव ने कहा— तुम अभी नवल-माधुरी नारी हो मैंने ही तुम्हें सबसे पहले यह चेतना दी। जिस कारागार से निकालकर मैंने तुम्हें मुक्ति की ज्योति में रख दिया। कीड़े का जाल काट कर रंगीली तितली बनी हो। अब आगे क्या होगा ?"

"फिर अपने कपड़े बदल त्रिशूल हाथ में ले लूँगी।"

"नहीं अब उस कारागार में नहीं जाने दूँगा मैं तुम्हें। —भैरव ने उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया।

सिहर उठी भैरवी—"तुम गुरु-चैतन्य हो।"

"नहीं मैं उस पद को नमस्कार करता हूँ तुम मेरी सबसे बड़ी चेतना हो। चलो हम दोनों इस रात में भाग चलें।"

"किस मार्ग से ? द्वार चारों चौकों पर स्वयंसेवक हैं।"

"छत पर चढ़कर। माता जी की दो-तीन साड़ियाँ बाँध कर छत से नीचे लटका देंगे और उनसे उतर कर इस चाँदनी रात में रात-ही रात हम दूर निकल जायेंगे। तुम चलने को तैयार हो ?

"हाँ मैं चलूँगी।"

"अब इस बार तुमने ठीक भाषा बोली। कुछ देर ठहर जायें।

सबको सो जाने दें। तब तक मैं छत पर से कमन्द खींचकर नीचे लटका देता हूँ।" —कहकर भैरव ने माता जी की दो साड़ियाँ बाहर निकालीं और ऊपर छत पर चढ़ गया।

भैरव ने दोनों साड़ियों को आपस में जोड़कर छत पर की एक मुँडेर से बाँध दिया और नीचे उतर आया। भैरवी अपने नए वेश को दर्पण में देख-देखकर मगन हो रही थी।

भैरवी! सत्य कितना सुन्दर है। इन लोगों ने किस तरह उसे अन्धकार में ढक दिया है। इन पशुओं के बीच में एक क्षण नहीं रहना चाहिए।

भैरवी बोली— "निकुञ्ज भी ले चलूँ ?"

"नहीं, उसमें पहचाने जायेंगे। बोझा कुछ भी साथ नहीं ले जाना है।"

"कहाँ चलेंगे ?"

"तुम्हें पाकर जगत में मंगल जाग उठेगा, मरु-भूमि हरी हो जाएगी चलो।

"माता जी बड़ी देर में सोती हैं।"

"कब तक प्रतीक्षा करें उनके सो जाने की ?

"इसकी आवश्यकता क्या है ? जब हम दोनों के मन एक हैं तो फिर कौन पकड़ सकता है हमें ?"

"कोई नहीं पकड़ सकता।"

"जाने के लिए कोई दिशा तो जाननी पड़ती।

"तुम्हें रास्ते मालूम हैं ?"

"मैं पहचाने रास्तों से जाने में डरती हूँ।"

"पर तुम बिलकुल बदल गई हो मैं भी अपने कपड़े बदल लेता हूँ।"—भरत ने पुण्य-चैतन्य के कपड़े खोल दिए और एक सफेद धोती चादर पहन ली एक सफेद साफा सिर पर लपेट लिया।

"लेकिन मुझे पहचान लेगा कोई।"—भैरवी ने दर्पण में मस्त

देखते हुए कहा।

"कल घूँघट काढ़ लिया जाएगा घटके की जगहों पर। चलो हम भारत को ही चलें।"

"तुम्हारे घर ?"

"नहीं घर पर मेरे बहुत-से दुश्मन हैं।—भैरव ने कुछ सोच विचार कर कहा।

"फिर कहाँ ?"

"तुम्हारे और मेरे इन दो घरों को छोड़कर और कहीं भी। इस समय तो हम चलें हमें अभी विचार का कर्म का रूप देना है। चलो द्वार बन्द है न ?"

"हाँ द्वार तो बन्द है।"

"फिर खुला क्या है ?"

"कमरों के नीचे की सुरंग।"

"उसे भी बन्द कर दें।"

"वह बन्द नहीं हो सकती। एक इशारे पर घूमती और बन्द होती है।"

"जल्दी करो फिर। छत से नीचे कर जाने की बात है फिर कौन पकड़ सकता है हमें ?"

"दिया बुझा दूँ ?"

"नहीं।"—भैरव ने अपनी पुस्तक का वह पहला पेज खोलकर दीपक के निकट रख दिया।

"तुमने पुस्तक लिखनी शुरू कर दी क्या ? पढ़ूँ तो।"—भैरवी उसे पढ़ने लगी।

"यह वह पुस्तक नहीं है। इसमें हमारे जीवन का पहला पृष्ठ है।"

भैरवी पढ़कर हँस पड़ी। दोनों के पैर बड़ी सावधानी से छत पर पड़ गए।

भौतिक जगत की स्थूल घटनाओं में चलती फिरती छायाओं और

भावनाओं से बारीक जो मन की लहरों के झटके हैं उनकी कोई परवा नहीं करता। माता जी को न जाने क्या सूझा। अपने कमरे में बैठी-बैठी वह उठी। ठीक उसी समय जब भैरव और भैरवी छत पर बढ़ रहे थे।

माता ने द्वार खटखटाकर कहा—'भैरव द्वार खोलो।

किसी ने नहीं सुना उत्तर कौन देता? माता को कुछ खटका हुआ और वह तुरंत लौटकर पाँचवें चौक में जा पहुँची तुरन्त ही। वहाँ जाकर उसने देखा युग चैतन्य का कमरा खुला था पर उसमें प्रकाश जगमगा रहा था।

वह तुरन्त कमरे में घुस गई। वहाँ किसी का पता न था। पुस्तक का पहला पेज दीपक के प्रकाश में खुला था। तत्क्षण उसे पढ़ा—

"बड़ा भारी यह युग-चैतन्य का बोझ मेरे सिर पर लाद दिया है। जरूर तुम्हारे ज्योतिषी ने गणना में भूल की है। और भूलें होती रहती हैं। इस भूल को मैं नहीं सुधार सकता लेकिन एक दूसरी भूल जो तुम्हारे मठ में बहुत दिनों से चली आ रही थी उसे मैंने ठीक कर दिया। अर्थात् तुम्हारा भैरव जो असल में एक नारी का अस्तित्व रखता था मैंने उसमें नकली कपड़ खोलकर उसे भैरवी बना दिया। इसके पारिश्रमिक स्वरूप मैं उसे ही लेकर जाता हूँ। उसे ले जाने का एक कारण और भी है—अब तुम जिसे भी युग-चैतन्य की पदवी पर बिठाओगी—वह बेरोक-टोक बन जाएगा क्योंकि उसके मार्ग के काँटों को मैं अपने गले का हार बनाकर ले चला। धन्यवाद!

'माता जी की जय!

विनीत
भैरव।"

पुनश्च—एक-दो पंक्तियाँ इस के लिए लिखनी जरूरी हैं क्योंकि इस मठ का संचालन मुझे उसी की कृपा से मिला

"खतरे का भय है ! जान पड़ता है, हमारे भागने की बात खुल गई !"

"अब भी समय है। तुम पकड़कर उतरो मैं कूद पड़ता हूं !"—कहकर भैरव धरती पर कूद गया लेकिन भैरवी दुविधा में पड़ी वहीं खड़ी रह गई।

इतने ही में माता छत पर चढ़ गई थी। उसने भैरवी का हाथ पकड़ लिया। भैरवी माता की आहट पाकर जोर जोर से रोने चिल्लाने लगी थी। माता के हाथ पकड़ते ही उसकी छाती से चिपट गई—"माँ ! माँ ! बचाओ यह मुझे जबर्दस्ती भगाकर ले जा रहा था।

जबर्दस्ती भगा ले जा रहा था ? तुमने ये कपड़े क्यों बदले ? —माता ने कुछ रोष में भरकर पूछा।

"उसने छुरा दिखाकर मुझे मार डालने की धमकी दी।

"कहां है वह ? जरूर गणना में भूल हो गई ! —माता ने कहा।

चारों ओर स्वयंसेवक लोग पाँचों चौकों की छतों पर अस्त्र-शस्त्र लेकर जमा हो गए थे। वे चिल्ला चिल्लाकर पूछने लगे— माताजी आज्ञा दीजिए।

माता ने भैरवी से पूछा—'बताती क्यों नहीं कहां है वह ?

'भूमि पर उतर गया।

माता ने पुकार कर कहा—'चोर भागा जा रहा है नीचे छत पर से कूद कर उस पर गोली चलाकर उसे मार डालो।"

कुछ स्वयंसेवक उस गली की राह नीचे उतर गए। कुछ ने वहीं से छत पर से उस छिटकी हुई चाँदनी में गोलियां चला दीं।

माता ने तराय कहा—"उसको मार डालो नहीं तो वह हमारा सारा भेद बाहर दे देगा।"

जो स्वयंसेवक नीचे उतर गए थे वे चारों ओर को दौड़ गए, मगर किसी को भी कुछ नहीं मिला था। दौड़ने से कर्तव्य की पूर्ति होगी इसीलिए वे दौड़ते चले गए।

नीचे दबाकर भैरव सिर पर पैर रखकर भागा। उसने मन में सोचा—नियति सहायक नहीं हुई ! जितना ऊँचा उठा था वह तो उतना ही नीचे गिर गया।

मकान की छाया में दौड़ता गया वह कोई न देख सका उसे। दौड़ते दौड़ते वह नदी के किनारे आ गया। जल में ऐसी ठसक तो कुछ थी नहीं। जाड़ों में अधिक वर्षा नहीं हुई थी जो कुछ हुई वह बह चुकी थी। धारा में तीव्रता थी पर गहराई नहीं। अधिक से अधिक उसके घुटनों तक पानी होगा। उसी ओर उसे सुरक्षित पथ जान पड़ा।

भैरव नदी में कूद गया। वह तैरना जानता था लेकिन तैरने की जरूरत पड़ी नहीं। नदी पार कर वह कुछ दूर तक रेत में दौड़ा। उसके कपड़े पत्थर ने किसी की दृष्टि नहीं खींच सका वह। फिर वह जंगल की हरियाली में मिल गया।

२०

गूँगा यात्री

रात भर भागता ही रहा भैरव। न-जाने कितने झाड़-झंखाड़ गिरि-नद नदी-नाले पार कर गया वह। प्राणों के त्राण के आगे न उसकी कठिनाई ही उसके विचार में आई न उसकी गिनती। माता जी की उसे मार डालने की आज्ञा उसने सुन ली थी उसी से उसे भाग जाने का बल मिला।

कहाँ किस ओर वह जा रहा था? इसका कुछ भी ज्ञान नहीं था उसे। चाँदनी ने सुबह तक उसका साथ दिया। इसे उसने भगवान् का वरदान समझा। रात-ही रात में वह कम-से-कम बीस-पच्चीस मील चला गया होगा और ऊँचाई?—इसका कोई अन्दाज ही नहीं।

प्रभात की ज्योति में उसने पेड़-पौधों को देखा, भूमि की बनावट को देखा। उसने मन में निश्चय किया वह भारत की ओर नहीं बढ़ रहा है, अवश्य ही किसी नए देश और राज्य में चला गया है।

एक स्थान पर बैठकर उसने मन में सोचा—"अब मेरा पीछा करने वाले नहीं पकड़ सकते मुझे। मैं उनकी पहुँच से बहुत दूर आ गया हूँ। कहाँ आ गया हूँ? रात भर जिस पथ से आया हूँ वह मेरी [illegible] से नहीं हुआ। उन जंगलों का ध्यान कर मेरे प्राण काँपते हैं। यह कैसा अद्भुत संयोग है, किसी भी जंगली पशु से मेरा सामना हो जाता तो क्या होता। लेकिन भगवान् को मेरी रक्षा करनी थी। अब क्या होगा? अब तो न राह मालूम है न राह का भोजन ही पास में।"

वह फिर उठकर चला। अचानक उसे कुछ जानवरों के पैरों की आवाज और मनुष्यों की बात-चीत सुनाई दी। वह तेजी से उधर चला

गया। वहाँ जाकर उसने अपने को एक मार्ग में पाया। उसमें बहुत से व्यापारी अपना सामान खच्चरों पर लादे हुए जा रहे थे।

बड़े धीरज से वह उन लोगों के साथ चलने लगा। एक व्यापारी ने उससे कुछ पूछा। लेकिन वह उसकी समझने योग्य भाषा न थी। उसने कोई उत्तर न देकर इशारा किया।

वह व्यापारी सिक्कम की राजधानी गंगतोक और ल्हासा के बीच में व्यापार करता था। हिन्दी टूटी-फूटी बोल लेता था। उसका वेश देखकर उसने उसे भारतीय समझकर पूछा— कौन हो तुम? कहाँ से आए हो? और इधर कहाँ जा रहे हो?

भैरव को एक उपाय सूझा। उसने मन में निश्चय किया अगर इनसे कुछ कहता हूँ तो फिर सारी पोल खुल जायगी और न जाने सच हो जाने से वह क्या सोचे? इसलिए उसकी दया आकर्षित करने के लिए भैरव गूँगा बन गया। उसने पेट बजाकर कुछ अजीब तरह के इशारे किए।

व्यापारी बोला— "हुक्म है तुम्हारे पास इस मुल्क के राजा का।"

भैरव ने फिर अपना पेट बजाया और रोने का अभिनय करने लगा।

"यहाँ दूसरे मुल्कवाले को बिना परवाने के घूमने की इजाजत नहीं है।"

लेकिन भैरव उस व्यापारी के साथ चलता ही रहा। व्यापारी के कंधे पर एक थैले का बोझ था जो उसने किसी बीमार बकरी को मदद देने के लिए अपने कंधे पर रख लिया था। भैरव ने उसके कंधे पर से वह थैली का बोझा अपने ऊपर ले लिया।

व्यापारी हँस पड़ा और उसने अपने सत्तू के संग्रह में से कुछ उसे दे दिया। भैरव ने सत्तू फाँककर पानी पी लिया और फिर उसी व्यापारी के साथ चलता रहा।

व्यापारी कहने लगा—"तुम्हें इस तरह खाने-पीने और साथ की मदद देने से हमारे ऊपर भी आफत आ जायगी इसलिए अपनी चौकी

तुम्हें हमारा माल छोड़ देना होगा।"

भैरव फिर रोने लगा—"हूं ! हूं !"

व्यापारी ने अपने साथियों से कहा—"यह अच्छा रोग साथ लग गया। क्या करूँ? इसकी दशा देखकर दया भी आती है। काम करने को तैयार है यह लेकिन चौकीवाला को क्या जवाब दिया जायगा?"

एक साथी व्यापारी ने कहा—"एक तरकीब मैं बताता हूँ। बिचारा परदेसी बेजबान बोलने से लाचार। हमें इस पर दया करनी चाहिए। मेरे पास एक पुराना छाता है मैं इसे दे देता हूँ। यह गरम मुल्क का रहनेवाला अब बहुत ऊँचे पहाड़ों पर आ गया है। जाड़े में भी इसकी हिफ़ाज़त हो जायगी और एकाएक परदेसी समझकर कोई सरकारी नौकर इस फिक्र भी न कर सकेगा।"

दूसरा कहने लगा—"जो दया हम इस पर करेंगे वह इसी जन्म में वसूल हो जायगी। सिर्फ़ जीभ कटी हुई है इसकी हाथ-पैर तो दुरुस्त ही हैं। हमारे जानवरों को चारा लाया करेगा। उनके बाँधने-खोलने में मदद करेगा। घास-पानी का सहारा हो जायगा इसमें।"

उस व्यापारी ने एक गधे के बोझ के नीचे उस पैसे और फटे छाते को रख रखा था कि जानवर के पीठ न लगे। मिट्टी के तेल के दो भरे कनस्तर लदे हुए थे उसके इधर-उधर। उसने इशारा कर भैरव को बुलाया और एक तरफ़ से सहारा देकर वह कनस्तर नीचे उतारने को कहा।

कनस्तरों के नीचे उतर जाने पर व्यापारी ने अपना छाता निकाल लिया। गधे पर का बोझ फिर वैसे ही रख दिया गया।

भैरव को जब वह छाता पहनाया गया तो उसकी शक्ल बहुत कुछ बदल गई। अब एकाएक सरसरी निगाह से देखने पर किसी को भी उसके ऊपर शक होने की बात नहीं थी। व्यापारी की एक चमरी के गले में पोतमैन के मनके और नीले बड़े-बड़े दानों की एक माला बंधी थी। बीच में एक सींग का चप्पा था।

उसने उस माला में से सिरों पर से छः दाने निकालकर एक तागे

में पिरोकर भैरव के गले में पहना दिए। गूँगे ने बहुत खुशी दिखाई और प्रसन्न होकर उन व्यापारियों के साथ उनका-सा होकर चलने लगा।

शाम को पड़ाव पर वह जानवरों की पीठ पर से बोझ उतारता जानवरों को ले जाकर चराता उन्हें पानी पिलाता और समय पर पड़ाव पर ले आता। वह सबका ही काम कर देता पर जिस व्यापारी ने उसे छुड़ा लिया था उसकी वह विशेष प्रीति से सेवा करता।

वह तम्बू ठोकता सामान ठीक जगह पर लगाता पानी भरता घास जमाता और जो कुछ वे लोग इशारों द्वारा उससे कहते सबका हुक्म बजा लाता।

ल्हासा पहुँचते-पहुँचते भैरव उन व्यापारियों के साथ बहुत घुल-मिल गया। तिब्बत की नमकीन चाय में सत्तू घोलकर पीते हुए अब उसे सात-आठ दिन हो गए थे।

दिन-भर उन व्यापारियों के साथ मुँह सीकर चलना पड़ता था बस। पहले बड़ा चौकन्ना होकर रहता था। कहीं भूल से कोई शब्द मुँह से निकल जाने पर उसका सारा षड्यन्त्र खुल पड़ता पर भगवान् ने उसकी रक्षा की। फिर उसकी आदत हो गई।

इस प्रकार से सिर पर आ पड़े मौन-व्रत द्वारा भैरव की विचार शक्ति का विकास होने लगा। बोलना मनुष्य की बहिर्मुखता है, उसकी धारा बन्द हो जाने पर विवश होकर उसे अन्तर्मुख होना पड़ा।

भूत काल बहुत स्पष्ट होकर उसके मानस में उभर आता। कभी वह बालों को सोचता और कभी भैरवी को। भैरवी को पाने पर वह बालो को विश्वासघातिनी समझ उसे भूल गया था। अब भैरवी को भी वह उसी की कोटि में गिनता है। दोनों के चित्र जब कभी उसकी स्मृति में उदित होते हैं तो वह बड़ी घृणा से उन्हें मिटाने की चेष्टा करता है। लेकिन इन चित्रों पर वह अपना बस नहीं समझता।

ल्हासा में कुछ दिन का पड़ाव रहा उनका। कुछ भारतीय बाजारों का माल उन्हें वहाँ उतारना था और कुछ माल ल्हासा के लिए भरना

था। इसके सिवा कुछ व्यापारियों की रिश्तेदारी भी थी वहाँ।

भैरव सुबह कुछ खा-पी सत्तू बाँध जानवरों को चराने चला जाता। दिन भर जंगलों में ही बिता देता और संध्या समय घरों को लौटता।

एक दिन वह जंगल में एक टीले के ऊपर आराम करता हुआ सपने को देख रहा था—'आगे क्या होने वाला है? कहाँ को चली जा रही है यह जीवन की नाव? वाणी के समान अत्यन्त उपयोगी माध्यम की हानि देकर उसने यह जो मोल खाया है कहाँ जाकर इसका अन्त होगा?

'माता पिता कहाँ हैं? घर-द्वार कहाँ?—इतनी दूर आ जाने पर अब उसे जननी-जनक और जन्मभूमि का अनुराग बेचैन करने लगा।

'माता पिता जैसी दुर्लभ निधि का तिरस्कार कर क्यों घर से भाग आया? निस्सन्देह यह उसी पाप का दण्ड है जो मुझे भरना पड़ रहा है। कैसे यह प्रायश्चित पूरा हो और कैसे मैं भारत को लौटूँगा?"

व्यापारी लोग आपस में तिब्बती भाषा में बोलते थे जिसका वह एक शब्द भी नहीं समझ सकता था। इसलिए वह और भी उनके साथ की अपनी परिस्थिति का कोई अन्दाज नहीं लगा सकता था।

वह उसका अपना व्यापारी कभी-कभी उसके साथ दो चार शब्द हिन्दुस्तानी के बोलता था। उन्हीं के आधार पर भैरव ने यह अनुमान लगाया था कि कुछ दिन बाद वह ल्हासा जाकर फिर सिक्किम को लौटेगा। वहाँ से सम्भवतः कालिम्पोंग और दार्जिलिंग तक भी।

यही दिवा-स्वप्न देख रहा था वह उस दिन। सिक्किम की सीमा पर भयंकरवादियों से भेंट की बातें सोच रहा था। कभी उनके द्वारा पकड़ा जाकर अपनी दुर्दशा देखता और कभी उनके मठ की सूचना देकर पुलिस को वहाँ ले जाने की कल्पना करता।

इसी समय उसने घोड़े की टापें सुनीं। एक घोड़े में एक सुसज्जित घुड़सवार ऊपर से आ रहा था। उसकी दृष्टि चारों ओर भटक रही थी ऐसा जान पड़ता था मानो वह कोई चीज ढूँढ़ रहा था। भैरव उठा और संभलकर बैठ गया

दूर से उसे देखकर वह घुड़सवार वहीं पर आ गया और उसने तिब्बती भाषा में भैरव से कुछ कहा।

भैरव कुछ नहीं समझा और उठकर खड़ा हो गया।

घुड़सवार ने फिर कुछ कहा। भैरव न बोला—केवल चुप रहना मूर्खता है। उसने अपनी गूंगी भाषा में कहा—"हूं! हूं! हूंऽऊं! ऊं! ऊं!"

अफसर ने न-जाने अपना क्या अपमान समझा वह घोड़े से उतरा और उसने भैरव की कनपटी पर एक तमाचा जड़ दिया।

उस चांटे की पीड़ा से भैरव की आंखें डांवाडोल हो गईं उसके इतने दिन से पाला गया मौन-व्रत भंग हो गया। अचानक ही उसके मुंह से उस चांटे के प्रतिकार में निकल पड़ा—"अरे बाप रे!

तिब्बती वेश के भीतर विदेशी शब्दों को निकलते हुए देखकर वह अफसर और भी ताज्जुब में पड़ गया। उसने दार्जिलिंग के एक स्कूल में शिक्षा पाई थी। वह खूब अच्छी तरह हिन्दुस्तानी जानता था। उसने भैरव से पूछा—"कौन है तू?

भैरव ने फिर अपना मौन-व्रत ओढ़ लिया और वह इधर-उधर के इशारे कर ऊँ ऊँ मूं-मूं करने लगा।

"बहुत चालाकी मत कर, सच बता कौन है तू?"

भैरव फिर वैसा ही करने लगा।

अफसर बोला—"काला घोड़ा देखा है एक?"

भैरव ने इशारे से एक ओर दिखाया।

अफसर ने कहा—"ले आओ इधर।"

भैरव दौड़कर काले घोड़े को ले आया। अफसर का अपना खोया घोड़ा मिल जाने से कुछ क्रोध तो जाता गया था पर भैरव पर जो उसका संदेह हो गया था उसे मिटाने की उसकी बेचैनी बढ़ गई थी। उसने भैरव से कहा—"इस घोड़े को लेकर मेरे साथ चल।"

भैरव ने अपने जानवरों की ओर इशारा किया। अफसर

थामा और बलपूर्वक भैरव को अपने साथ ले गया। अपने घर आने के बाद उसने भैरव से कहा—"बस कहाँ रहता है तू ?"

भैरव उसे अपने व्यापारियों के तम्बुओं पर ले गया। अफ़सर ने एक व्यापारी से पूछा—"यह कौन है ?"

व्यापारी ने कहा—"कोई नहीं है हुजूर एक गूँगा भिखारी है, हमारे जानवरों की देख रेख करता है।"

अफ़सर ने प्रतिवाद किया—"गूँगा नहीं है कोई जासूस है।"

सभी व्यापारी हँस पड़े—"नहीं साहब जासूस नहीं है। बड़ी बुरी दशा में से हमने उबारा है इसे।"

"कहाँ का है ?"

"नेपाल का है या सिक्किम का।"

"लेकिन शक्ल नहीं मिलती।"

"अपना काम करें आप वहम में न पड़ें।"

"मैंने इसे साफ़-साफ़ बोलता सुना तुम इसे गूँगा कहते हो।"

"यह हफ़्तों से हमारे साथ है और हमने कभी इसका एक शब्द भी नहीं सुना। आपके कानों में कोई गड़बड़ पैदा हो गई। आँखों को भी धोखा होता है और कानों को भी।"

अफ़सर फिर भी नहीं माना उसने अपनी डायरी में उसका नाम लिख लिया और भैरव से बोला—"क्या है तेरा नाम ?"

भैरव ने उसे अँगूठा दिखाकर जीभ बाहर निकाली। यह विचित्र मुद्रा उसने तिब्बत के भिखारियों को देखकर सीख ली थी।

व्यापारी ने कहा—"भिखारी का भी कहीं कुछ नाम होता है ?"

अफ़सर ने उसके अँगूठे में कुछ स्याही लगाई और उसकी छाप अपनी डायरी में ले ली और व्यापारियों से कह गया—"इस पर खास निगरानी रखना। विरोधियों के कुछ जासूस आए हैं इधर।"

अफ़सर के जाने पर सब व्यापारी हँसने लगे। एक ने कहा—"इसे बहुत तेज़ नशा चढ़ आया है।"

भैरव मुंह बनाकर सामने खड़ा था। उसके मालिक ने पूछा—'कहां है जानवर ?

भैरव ने जगल का इशारा किया।

'जाओ ले आओ उन्हें। अफसर को क्यों नाराज कर दिया तुमने ?

भैरव ने कई तरह से उसके खोए हुए काले घोड़े का बोध कराना चाहा लेकिन पर सफल न हुआ। अन्त में हार मानकर जंगल को चला गया।

जब तक वे लोग झांसी में रहे तब तक भैरव रोज उस मोटे-ताजे तिब्बती अफसर को अपने सामने खड़ा ही पाता और मन में यह समझने की चेष्टा करता—"आखिर मैंने उस दिन उसका क्या कसूर किया ?"

चौथे दिन वे लोग झांसी से ल्हासा को रवाना हुए। सात आठ दिन की यात्रा के बाद जब एक दिन उनका पड़ाव करीब और सांपो नदियों के संगम में पड़ा था तब फिर एक बड़ी विचित्र घटना हो गई।

भैरव को उस दिन एक बकरी के रास्ते में मर जाने के कारण उसके बोझ का एक भाग ढोना पड़ा। कभी जीवन में उसने बोझा तो ढोया था नहीं। घर पर जब रहा तो अनेक नौकर-चाकरों की सेवा पर ही रहा और सर्वंकरवादियों के मठ में तो युग-चैतन्य ही बनने को था।

दिन भर कई हफ्तों से पैदल यात्रा और कंधे पर बोझ। खाना खाते ही उसे नींद आ गई। एक-दो व्यापारी अभी जाग रहे थे कुछ हिसाब किताब पर उनमें बहस हो रही थी। उसी तंबू के एक ओर भैरव भी पड़ा था। कहां भारत का समुद्र तल और कहां यह ऊंचाई दस हजार फुट से भी ऊंची ! कुछ उस अनभ्यस्त हलकी हवा का भी असर था।

सोते हुए वह सपना देख रहा था। सपने में जब माता पिता वह दासी—भैरवी—ये सब मिट चुके थे अब तो उसे वही तिब्बती अफसर

दिखाई देता था। वह मोटा-ताजा विचित्र वेश-भूषा में। लम्बी चोटी कानों और गले में कीमती आभूषण पहने। वह उसका अंगूठा छापकर अपनी डायरी में ले गया था। वही फिर उसके स्वप्न-राज्य का द्वार खटखटाकर घुस आया उसके मन के भीतर।

भैरव ने सोते-सोते देखा अफसर के साथ बासो और भैरवी भी थीं। अफसर ने उन्हें दिखाकर उससे पूछा—"पहचानते हो इन्हें ?

भैरव ने फिर वही गूंगे का अभिनय करना शुरू किया।

अफसर ने अब बासो से पूछा— तुम पहचानती हो इसे कौन है यह ?"

'हाँ मैं पहचानती हूँ। यह बड़ा बदमाश है। मुझे भगाकर बम्बई ले गया और वहाँ इसने मुझे बेच दिया।

'यह गूंगा तो नहीं है न ?"

'नहीं गूंगा नहीं है बन रहा है। अभी इसकी पीठ में दो चार कोड़े जमाइए यह बोलने लग जाएगा।

अफसर ने फिर भैरवी की ओर मुड़ कर पूछा— 'तुम भी पहचानती हो इसे ?

"हाँ यह अच्छा आदमी नहीं है। मेरी माता ने मुझे इसकी सेवा में रखा और यह मुझे भगाकर ले आया। जब माता को यह बात मालूम हो गई तो यह मुझे छोड़ भागा बड़ा विश्वासघाती है यह। —भैरवी ने कहा।

अफसर ने फिर उससे भी पूछा— 'यह गूंगा है क्या ?

"गूंगा नहीं है। यह तो ऐसी बातें करता है कि सारा आकाश गूंज उठता है।

अफसर ने भैरव की ओर मुंह किया—"क्यों रे, सच-सच कह दो गवाही तो ये हैं और तीसरा तेरा अंगूठा छपा हुआ मेरी नोट-बुक में है। बोल क्या तू सचमुच में गूंगा है ?"

भैरव ने प्रतिवाद किया—"भगवान् साक्षी है मैं सचमुच में

गूँगा हूँ ।"

भैरव ने यह अभिनय पूरी ताकत से किया । वह स्वप्न के पर्दे को चीरकर उस समय भी गूँज उठा । दोनों व्यापारियों ने उसे सुना और दोनों चौंक पड़े ।

भैरव का भाग्यदाता व्यापारी तुरन्त ही भैरव के निकट गया और उसे उठाकर बोला— गूँगे उठ ! यह भगवान् की तेरे ऊपर कृपा हो गई क्या ? तेरी आवाज कब आई ! या तू ने हमें आज तक बेवकूफ बनाया है ?"

भैरव आँखें मसलता हुआ उठा ।

व्यापारी ने फिर उससे कहा— "क्या बात है ?"

भैरव फिर अपने पुराने इशारों पर चलने लगा ।

व्यापारी ने कहा—"तू अभी बोल रहा था ।"

भैरव ने इधर उधर देखकर अपना अचरज जाहिर किया । व्यापारी ने दूसरे के मुँह की तरफ देखा ।

दूसरे व्यापारी ने कहा—"गूँगा बनने क्या लगा यह इससे क्या फायदा हुआ इसे ? झूठ ही अपनी एक इन्द्रिय खो देना कौन चाहता है ?"

"मैं तो समझता हूँ यह जन्म का गूँगा नहीं है ।"

दूसरा बोला— "इससे पूछो तो सही ।"

पहले ने पूछा—"क्या जी क्या तुम जन्म के गूँगे हो ?"

भैरव ने सिर हिलाकर नहीं कहा फिर हाथों बढ़ाकर आसमान की तरफ उँगली उठाई ।

व्यापारी ने दूसरे से कहा—"शायद किसी बीमारी के सबब बाद को इसकी जबान बन्द हो गई ।"

भैरव का भाग्यदाता बोला— "लेकिन इस बिचारे को जरा भी होश नहीं है कि अभी इसके मुँह से साफ-साफ शब्द निकले थे ।"

"तुम किसी तरह इसे इसका विश्वास दिला सकते हो

अभी खुल जाती।"

दूसरा व्यापारी भैरव से कहने लगा—"तुम अभी बहुत साफ शब्दों में बोले थे नींद में। जरा कोशिश करो तो जागते में भी बोल सकते हो।"

भैरव के मुख पर एक पहेली-सी अंकित होकर रह गई।

व्यापारी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"कोशिश क्यों नहीं करते तुम बोल सकते हो। बोलो बोलो।

भैरव ने अभिनय करना शुरू किया। बहुत जोर लगाकर बोलने लगा वह—'लत् ललन् लहल्!

व्यापारी उसकी पीठ ठोककर उसका उत्साह बढ़ाने लगा—"शाबाश! और जरा कोशिश करो।

भैरव के फिर वही समस्या आ उठी। वह सोचने लगा—अगर अपनी जबान खोलता हूँ तो कुछ शाबाशी तो जरूर हासिल होगी। लेकिन शायद उससे बड़ी आफत में फँस जाऊँगा। अपने ठौर ठिकाने का क्या पता दूँगा?" अन्ततः उसने जड़-पत्थर की तरह मूक रह जाना ही निश्चय किया।

व्यापारी उसका उत्साह बढ़ा ही रहा था अभी। भैरव ने भी उसको सन्तोष देने के लिए फिर जोर लगाया—"लप्पप् ल लहल्!

व्यापारी निराश होकर बोला—"अहूँऽ अभी बोले थे तुम बहुत साफ! नींद में जब बोले हो तो जागते हुए और भी ठीक बोल सकते हो।"

उसका साथी बोला—"महात्मा चलकर किसी वैद्य को दिखा देना कोई दवा खाकर ठीक हो जायगा।

"मैं तो समझता हूँ यह दवा के बस का रोग नहीं है। अभी बोला और अभी जबान बन्द! ताज्जुब है! मैं तो समझता हूँ इसे कोई भूत लगा है।"

"क्या ताज्जुब है!

"ताज्जुब तो कुछ नहीं खतरा जरूर है। इसके साथ-साथ चलने-

जाता वह मूल धमर किसी दिन हमारे पीछे लग गया तो फिर बड़ी मुश्किल हो जायगी। इसके तो आगे-पीछे कोई नहीं हम बाल-बच्चे वाले क्या होगा ?

दोनों कुछ देर तक चुप रहे। भैरव ऊँघने लगा था। उन्होंने उससे सो जाने को कहा और खुद भी दोनों सो गए।

दूसरे दिन से भैरव और भी परिश्रम से अपना काम करने लगा कि जिससे उसकी वह दुबलता छिप जाय। उसका आश्रयदाता उसकी विवशता देखकर द्रवीभूत हो उठा और उसकी स्वामिभक्ति का उस पर और भी गहरा असर पड़ गया।

पाँच-छः दिन में वे लोग ल्हासा पहुँच गए। भैरव के आश्रयदाता का वहीं मकान था और वहीं उसके बाल-बच्चे थे।

ल्हासा में एक महीने का पड़ाव था। नए साल का त्योहार निकट था। ल्हासा का वह सबसे बड़ा उत्सव था। उसके बाद ही जाने का निश्चय था।

व्यापारी की पत्नी और दो बच्चे थे। भैरव जानवरों का सामान खोल-खोलकर जमा कर रहा था। व्यापारी एक दूसरे व्यापारी पड़ोसी से बातें करने लगा था। उसकी पत्नी और दोनों बच्चे बहुत दिन बाद परदेस से लौटे हुए पति और पिता के सामान की ओर सहज ही आकृष्ट हो गए थे।

उन्होंने भैरव को उसके कपड़ों के कारण बहुत दूर का परदेसी नहीं समझा था। पत्नी ने तिब्बती में उससे पूछा—"मेरी चीजें लाए हो या नहीं ?"

भैरव ने इशारे से कहा— मैं नहीं जानता।"

व्यापारी का छोटा लड़का बोला— "और मेरे खिलौने ?"

भैरव की समझ में उनकी बोली कुछ भी नहीं आई। समझ में आने पर भी वह क्या जवाब देता ? उसने फिर पहले की ही तरह हाथ हिलाया।

अन्त में व्यापारी की लड़की बोली—"और मेरे कपड़े ?

भैरव ने फिर अपना हाथ हिलाया डुलाया। तीनों अपनी-अपनी मों की पूर्ति न होने से इतने दुखी न हुए, जितना उसके अभिलाषी से एक भी शब्द न निकलने से खिन्न हुए। उन्हें क्या मालूम असली त क्या था ?

व्यापारी के पास पर उन सबने उससे अपने-अपने प्रश्न किए और उसने सन्तोषजनक उत्तर पाया।

उसकी पत्नी ने पूछा—"यह कौन है ?

व्यापारी बोला—"यह भी ऐसा ही है। बड़ा परिश्रमी है।

उसकी लड़की बोली—"बड़ा घमण्डी जान पड़ता है।"

"नहीं बड़ा सीधा है।

पत्नी ने फिर पूछा—"कहाँ का रहनेवाला है ?

व्यापारी ने बात को कुछ छिपाकर कहा—"नेपाल और भारत की सीमा का।

"इसे तिब्बती नहीं आती ?

"तिब्बती क्या ? कोई भी भाषा नहीं आती।

"बड़ा अजीब जानवर है।

"गूँगा है।"

तीनों व कौतूहल से उसकी तरफ देखने लगे। उसके लिए जो घृणा उन्होंने अपने मन में पैदा कर ली थी वह टूटकर बह गई।

व्यापारी बोला—"लेकिन दिन भर काम में ही लगा रहता है जो एक बार समझा दो उसे कभी नहीं भूलता।"

पत्नी ने पूछा—"तनखा क्या लेगा ?"

"तनखा कुछ नहीं।"

"वनमानुष है क्या ? तनखा क्यों नहीं लेगा ? बकरी है या भेड़ ?"

"कुछ-कुछ ऐसा ही समझो" व्यापारी ने कहा—"एक जंगल से ही पकड़ लाए हैं हम इसे। भूखों मर रहा था। यही उपकार क्या

कम है। फिर पैसे से क्या करेगा यह ? खाना-कपड़ा हम देते ही हैं इसे।

वे तीनों बड़ी दया से उसकी तरफ देखने लगे। एक-एक कर तमाम जानवरों का सामान खोलकर उसने मकान के आँगन में जमा कर लिया था। सभी जानवर मानो उसके एक-एक इशारे को पहचानते थे ऐसा जान पड़ा।

सबका सामान उतर जाने पर उसने बड़ी जिज्ञासा लेकर व्यापारी की ओर देखा। व्यापारी ने एक कोठे की तरफ इशारा किया और वह तुरन्त ही समझ गया। उसने कुछ ही देर में सबको वहाँ बाँध दिया। जो खुले रहने के थे वे खुले ही छोड़ दिए।

उसके बेटे ने पूछा—"इसका नाम क्या है ?"

व्यापारी हँसा—"जो भी रख लोगे इस किसी से इन्कार न होगा।

'तुम किस नाम से इसे पुकारते हो ?

'हम तो इसे बाहु के नाम से पुकारते हैं।

किसने रखा यह नाम ?"—उसकी लड़की ने पूछा।

"कभी-कभी यह इस प्रकार का उच्चारण करता है इसी से।" स्वर में व्यापारी कुछ गम्भीर होकर बोला— लेकिन एक रात को यह बिलकुल साफ-साफ बोला था।"

'फिर ?"—पत्नी ने पूछा।

"फिर वैसे ही हो गया। इसी से मैं सोचता हूँ इस कोई भूत लगा है।

उसकी पत्नी तीनों बच्चों का हाथ खींचकर अपने मकान की दूसरी मंजिल पर चढ़ने लगी।

व्यापारी बोला—"पर भय की बात नहीं है। मैं आज ही जाकर इसके इलाज का इन्तजाम करता हूँ। मनुष्य का बेटा है आखिर हमारी जात का हमारे देश का नहीं भी है तो क्या हुआ ? हमारी सेवा करता है बड़ी लगन से।"

पत्नी ने कहा— जरूर इसकी मदद करनी चाहिए। लेकिन जब तक इसका भूत नहीं निकल जाता इसे जानवरों के साथ कोठे में ही

व्यापारी भैरव को वहीं छोड़ गया। कुछ देर में वैद्य का एक चेला आया। चेला भैरव को लेकर एक लुहार की दूकान में गया। वहाँ वह लोहा गरम कर रहा था।

चेले ने भैरव को भूमि पर बैठ जाने की आज्ञा दी और संड़सी से एक गरम लाल लोहे की सीख उठाई और भैरव से मुँह खोल जीभ बाहर करने को कहा।

भैरव उठकर भागा। चेला दौड़कर फिर उसे पकड़ लाया। इस बार लुहार ने उसे मजबूती से अपनी बलिष्ठ बाँहों में कस लिया। चेले ने फिर वही लोहे की छड़ आग में से निकालकर भैरव की जीभ को दागने के लिए बढ़ाई।

भैरव चीख उठा—"ठीक हो गया! मेरी जबान खुल गई!

चेला उसकी भाषा न समझने पर भी अपने कौशल पर बहुत खुश हो गया। लुहार ने भी उसका लोहा मान लिया। लेकिन भैरव की भाषा सुनकर उसके एक शक हो गया। उसने वैद्य के चेले से पूछा—'जबान तो खुल गई जान पड़ती है पर यह बोली कौनसी है?

'जबान के खुलने से मतलब है बोली कोई भी हो। चेले ने भैरव का हाथ पकड़ लिया। उसके मन में यह बात पैठ गई थी कि अगर वह गूँगा बनने पर भी काम देगा तो वह अपने गुरु के सामने अपनी अकल का सबूत और कैसे दे सकेगा? उसने जाते हुए लुहार से कहा—'मुझे भी कुछ दक्षिणा दिया दूँगा क्योंकि तूने बीमार को पकड़ा तो तेरी लड़की ने दवा को थामे रखा।"

भैरव का हाथ खींचकर वह चला चला और गुरु के सामने पेश कर बोला—"मैं ठीक कर लाया इसे।

गुरु ने भैरव की ओर देखकर पूछा—"क्यों?"

भैरव को फिर एक चरम सूझ गई। वह फिर गूँगे का अभिनय करने लगा—"ह्ह्हु तत् तत्!

गुरु ने चेले की ओर नजर की। चेला बोला—"दाम देने के भय

से वह ऐसा कर रहा है। वह साफ़-साफ़ बोलने लगा था।

गुरु ने भैरव का मुँह खुलवाकर उसकी जीभ देखी और कहा—"इसकी जीभ की जड़ काटनी पड़ेगी नीचे से।"

भैरव कुछ न समझकर भी बहुत समझ गया। उसने रानी सी सूरत बनाकर अजीब तरह के इशारे किए और बाहर को जाने लगा।

चेले ने उसे ज़ोर से पकड़ रखा था। वह बोला—गुरु जी आप भी कहिए, मैं आपके सामने फिर इसकी ज़बान खोल देता हूँ।

गुरु जी एकदम चेले का ऐसा उत्साह भी नहीं बढ़ाना चाहते थे। कहने लगे—'ज़बान बन गई होती तो क्यों इसे मुझ जैसे की ज़रूरत होती? जाने की ज़िद कर रहा है यह जान लो कोई ज़रूरी काम होगा। मुमकिन है जल्दी जाने का काम हो। रोको नहीं इसे। कीमत की कोई चिन्ता नहीं। मैं इसके मालिक को बरसों से जानता हूँ। नकद न भी होगा तो मैं मालिक की बहुत-सी दवाएँ उसके मारफ़त मँगवा लूँगा। लेकिन जब फ़ायदा हो तभी तो न।"

"फ़ायदा हो गया है गुरुदेव! यह बोला था।"

"क्या बोला था?

मैं समझा तो नहीं।"

'इससे वह तो बन जाए।"

चेले ने उससे तिपाही में कहा—'कल आना अपने मालिक को भी साथ ले आना।"

भैरव छूमन्तर भागा। किधर जाए? परिक्रमा की सड़क छोड़कर वह नदी के पुल पर आया। बड़ी प्यास लग रही थी उसे। पानी पीकर उसने दिल और दिमाग़ ठंडा किया। फिर सोचने लगा—"अब यहाँ नहीं रहना चाहिए। मालिक पकड़कर मेरी ज़बान खुलवाकर ही छोड़ेगा और ज़बान खुल जाने पर फिर मेरी ख़ैर नहीं है।"

वह पुल पार कर जो सड़क मिली उस पर से दौड़ता हुआ चला गया—बड़ी तेज़ी से। शाम तक चलकर वह बीस मील से अधिक ही पार

दिन भर माता के साथ बातचीत करता। उसकी सेवा और स्नेह से माता गद्गद हो उठी। भावना का एक अजीब स्रोत उसके हृदय से फूट निकला। भाषा उसको स्पष्ट करने के लिए एक अत्यन्त दुर्बल माध्यम थी।

एक चमत्कारिक रीति से कुछ समय में भैरव के भीतर माता की भावना को समझने के लिए भाषा का जन्म हो गया और फिर कुछ दिन बाद उसे समझा सकने योग्य बोली उसको प्राप्त हो गई।

अब माता के तमाम संशय भैरव ने हर लिए। यही नहीं वह पास पड़ोस में भी आता-जाता और किसी को उसके ऊपर कोई शक न होता।

एक दिन माता के परिचित मठ का एक महन्त माता की खोज खबर करने आया। उसने भैरव को देखकर कहा— कौन हो तुम ? पहले तो मैंने तुम्हें यहाँ कभी नहीं देखा। कहाँ से आए हो तुम यहाँ ?"

"ऐसे ही घूमते-घामते आ गया।"

"बुढ़िया से क्या तुम्हारा कुछ रिश्ता है ?

"हाँ यह मेरे पूर्वजन्म की माता है।

"कहाँ है वे ? बुला दो उन्हें। कहना मठ का महंत आया है।"

भैरव जाकर माता को बुला लाया।

महन्त बोला—"माँ मैं बीमार हो गया था। कई महीने तक पड़ा रहा इसी से नहीं आ सका। तुम्हारे पास है या नहीं ?"

माता ने उत्तर दिया—"मेरा बेटा आ गया अब मेरे कोई कमी नहीं रही। यह इधर-उधर गाँवों में दौड़-धूप कर सब कुछ ले आता है। तुमने देखा नहीं उसे ?"

महंत बोला— "हाँ देखा है।"

"और इसने मेरा तमाम कारोबार सम्भाल लिया है। मेरे जानवर भी खूब मोटे-ताजे हो गए हैं। मेरी खेती भी हरी हो गई। इस फसल में मेरे काफी जौ हो जाएँगे। फिर मुझे किसी चीज की कमी

नहीं रहेगी।"

महंत बहुत सन्तुष्ट होकर बोला—"उस भगवान् की बड़ी महिमा रहा है।

माता ने कहा—"अब तुम्हें मेरी कभी भी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।"

"फिर भी कभी कोई आवश्यकता होने पर तुम अपने बेटे को हमारे मठ में भेज सकती हो। अब तो तुम्हारी इच्छा का यह बालक तुम्हें मिल गया।"

महंत चला गया और भैरव से एक दिन मठ देखने को आने के लिए कह गया।

भैरव को बुढ़िया की सेवा में रहते रहते प्राय एक साल हो गया अब तो उसकी टोली में किसी को भी उसके प्रति परदेसी होने का शक नहीं रहा।

अचानक एक दिन बुढ़िया ने भैरव से कहा—"बेटा बहुत यह दुनिया देख ली अब तो किसी तरह भगवान् उठा लेता तो ठीक था।"

"क्यों माँ ऐसा क्यों कहती हो? तुम्हारे कारण ही मेरा यहाँ मन लगा है। तुम ऐसा क्यों कहती हो?"

"नहीं तो क्या कहूँ बेटा? अगर मेरी आँख होती तो मैं कहीं-न-कहीं से तुम्हारे लिए एक बहू ढूंढ लाती। यही एक इच्छा मेरी बाकी रह गई है।"

"इच्छाओं का कहीं अन्त नहीं है।"

"तुम्हारे मन में ऐसा वैराग्य क्यों उपजा है?"

भैरव को आशो और भैरवी फिर याद आईं। वह बोला—"माँ! वैराग्य में शान्ति है।"

"नहीं है। मैं कहती हूँ वे मठों के महंत जो आ-जीवन अविवाहित ही रहने का व्रत करते हैं। क्या इन्होंने नारी से जन्म नहीं पाया है? देखो मैं जब तक तुम्हारे लिए एक बहू न ले आऊँ तब तक मैं सुख से

नहीं मर सकूँगी ।"

"तुम्हारी सेवा को मैं हूँ तो सही ।"

"अपने स्वार्थ के लिए धिक्कार है ! मुझे तुम्हारे मतलब की चिंता क्यों न हो ?"

भैरव उस ऊँचाई पर जानवरों को चराते हुए और अपनी पर खेती करते हुए अक्सर सोचता—"मैं कहाँ-से-कहाँ आ गया ? मनुष्य की आकांक्षा पर किसी अदृश्य देव का हाथ जरूर है । ऐसी एक उसकी भावना दृढ़ हो गई ।

उस एकान्त में वह कर्मचारी से भाग्यवादी बन गया अब वह अपनी इच्छा-शक्ति को भी कोई महत्त्व न देता । 'भगवान् का एक सुदर्शन है उसी चक्र में हम घूम रहे हैं । —कभी-कभी ऐसा सोचते हुए वह अक्रिय बन गया और किसी प्रकार समय बिना देव को ही जीवन का सत्य मानने लगा ।

'जीवन की ये तमाम महत्त्वाकांक्षाएँ सिर्फ अफीमचियों के स्वप्न के समान हैं । सारी कर्तव्य की प्रेरणाएँ अपने अपने दृष्टिकोण पर अवलंबित हैं ।"—ऐसे विचारों में भैरव अपने व्यक्तित्व को खो बैठा और भाग्य के किसी परिवर्तन के लिए हर वक्त तैयार होने लगा ।

अचानक एक दिन बुढ़िया बीमार हो गई । उसने भैरव से कहा—"बेटा जान पड़ता है अब मेरा समय आ गया है ।"

"नहीं माँ ऐसा न कहो ।"

"बेटा एक दिन तो जाना पड़ता ही ।"

भैरव ने मन में सोचा—"यह सनातन सत्य है ।"

माता फिर कहने लगी—"सभी को जाना पड़ता है बेटा ।

"क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

"तुम्हारे विवाह के लिए ही इतने दिन ठहरी रही । अब नहीं ठहर सकती ।

"विवाह कर क्या होगा ? तुम समझ लो मैं विवाह कर चुका ।

"नहीं बेटा, तुम अगर विवाह नहीं करोगे तो मेरी आत्मा यहीं मँडराती रहेगी।"

भैरव ने उसकी इच्छा की गंभीरता सोचकर कहा— "अच्छा माँ, तुम अच्छी हो जाओ तो मैं कहीं से लड़की ढूँढकर विवाह कर लेता हूँ।"

माता ने कहा—"अच्छा मैं अच्छी हो जाऊँगी, तुम कल मठ के महंत से दवा माँग लाओ।"

दूसरे दिन भैरव महंत के पास से दवा माँग लाया लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। माता की हालत दिन-दिन खराब होती गई। अन्त में माता ने भैरव का हाथ पकड़ कर कहा— "बेटा, तुम प्रतिज्ञा करो मेरे मरने के बाद तुम विवाह कर लोगे।"

भैरव ने प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन माता का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद भैरव का मन कहीं नहीं लगा। दिन-भर जानवरों के साथ घूमता रहता। शाम को घर न आता तो और कहाँ जाता? रातें काटनी बड़ी दूभर हो गईं। जरा देर के लिए आँखें लगतीं फिर वही अँधी माता का करुण और रोग से विकृत भयानक मुख उसे दिखाई देता— बहुत साफ और नजदीक!

भैरव की इच्छा होती वह यहाँ छोड़कर चला जाय। परन्तु कैसे? कई भेड़ों, बकरियों और चमरियों की जिम्मेदारी थी उसके ऊपर। उन्हें ऐसे ही छोड़कर कहाँ चला जाता? दे भी देता तो किसे?

माता की मृत्यु के पाँचवें दिन की बात है। रात को जब वह सो रहा था। सोते-सोते उसने एक भयानक सपना देखा। कुछ घोड़ों की टापों की आवाज से उसकी नींद खुल गई। माता उससे विवाह कर लेने की प्रतिज्ञा करा गई थी। पर भैरव विवाह के लिए जरा भी तैयार न था। वह समझा इसी दण्ड देने के लिए आज माता का भूत उठा है।

भैरव चुपचाप बिस्तर में पड़ा दुबक गया। भूत के लिए दीवाल, द्वार-तालों का बंधन कुछ भी बाधा नहीं है—इस बात को वह जानता था। बाहर कई लोगों को बातें करते हुए उसने सुना। उनमें उनके

बोली समझने की कोशिश की, एक भी शब्द नहीं समझ सका।

फिर उन लोगों ने जब उसके द्वार खटखटाने शुरू किए तो उसका विचार भूत पर से हट कर दूसरी बात पर चला गया। वह उसका निर्णय कर ही रहा था कि उन लोगों ने पत्थरों से दरवाजे तोड़ने शुरू कर दिए।

भैरव चुपचाप उठा और खिड़की की राह भाग जाने की सोचने लगा। उसने ज्यों ही धीरे-धीरे खिड़की खोली तो देखा कई घुड़सवारों ने उसका घर घेर लिया है। खिड़की से कूदकर भाग जाना उस रात में उसके लिए संभव नहीं था।

उसने खिड़की बन्द ही की थी। इतने ही में पत्थरों की चोटों से उसका दरवाजा टूट गया और दो-तीन आदमियों ने भीतर घुसकर उसको पकड़ लिया, उनमें जो प्रधान था। उसने कहा— "जो कुछ माल है निकाल कर सामने रख दो।"

"माल ? इस गरीब किसान के घर में कहाँ से आया है ?"

"ये बातें और बहाने राम जो हम लोग सब समझते हैं। हम लोगों को माल ढूँढ़ने में जो तकलीफ होगी हम उसे पूरी-की-पूरी तुमसे वसूल कर लेंगे।"

"भगवान् साक्षी है, तुम देश को खबर नहीं, कुछ भी मिल जाय तो मुझ पानी में बहा देना।"

"नहीं, हम नहीं मान सकते यह बात। तुमने कहीं मन में गाड़ रखा होगा।"

"सब आया कहाँ से ? एक अकेली बुढ़िया रहती थी यहाँ हाय-हाय में लाचार—अभी मर गई बिचारी। एक मैं मन-मर्जी कमाकर उसके दुःख से दिन का गुजारा—कोई खेती नहीं, व्यापार नहीं, नौकरी नहीं।"

"हमें सब मालूम है। मेला में नौकर थे तुम, लूट में बहुत-सा सोना और जवाहरात तुम्हारे हाथ लगा है।"

वह बुढ़िया का बेटा था नौकर, वह तो कभी का मारा गया। यहाँ

की लूट उसके हाथ लगती ?

"तुम कौन हो बुढ़िया के ?"

"कोई नहीं। ऐसे ही एक बिना घर-द्वार का मैंगता मैं भी हूँ। यहाँ बुढ़िया को उसकी राह दिखाने को किसी हाथ की जरूरत थी और मुझे भी रात को कहीं सिर रखने के लिए ठौर चाहिए थी। —भैरव ने बिना किसी बनावट के सच्ची-सच्ची बात उनके सामने रख दी।

लेकिन ये डाकू बड़ा पत्थर का उनका कलेजा था। आपस में बात चीत कर कुछ फैसला करने लगे थे। भाषा में उनका ठिगविदियों से बहुत कम साम्य था और बोली में भी कुछ अन्तर था। बहुत देर तक उन्होंने बातें कीं। साथ की मशालों से मकान में इधर-उधर बहुत कुछ खोज भी की।

अन्त में फिर एक भैरव के सामने आया और बड़ी दयापूर्वक उससे कहने लगा—"भाई मैंने बहुत कहा इनसे। ये माननेवाले नहीं हैं। ये तुम्हारी बातों को बिलकुल बेबुनियाद समझ रहे हैं।

"तो क्या करना चाहते हैं ये ?"

"तुम्हें मार-पीटकर छिपा हुआ धन प्रकट करना।"

कहाँ बताऊं मैं ? ठंडी साँस भरकर भैरव ने कहा।

डाकुओं के सरदार ने अपने साथियों से भैरव को मकान की एक थम्भी पर उलटा लटका देने को कहा।

तुरन्त ही उसकी आज्ञा का पालन किया गया। भैरव चुपचाप उस पीड़ा का सहन करने लगा।

सरदार की आज्ञा उस पर प्रकट की गई—"क्यों अभी और कितनी देर तक नहीं बताओगे ?"

भैरव चुपचाप आँसू बहाने लगा पर सरदार का दिल नहीं पसीजा। घर में कुछ कण्डे रखे थे। सरदार ने उन्हें भैरव के सिर के नीचे रखवा कर उनमें आग लगवा दी।

धुएं से भैरव का हाल खराब हो गया। उसकी आँखों से और

से पानी निकलने लगा। वह ज़ोर-ज़ोर से चीखने चिल्लाने लगा। जब कहीं कुछ था ही नहीं तो वह बताता क्या ?

अब तो भैरव की यह दयनीय दशा देखकर कुछ डाकुओं के मन में दया उमड़ उठी। लेकिन किसी की हिम्मत सरदार की मूंछ के खिलाफ बोलने की न थी।

एक ने सरदार से कहा— 'सरदार मुझे एक बात सूझती है। हमारे एक साथी के मर जाने से एक घोड़ा खाली हो गया है। उसको ले जाना हमारे लिए एक मुश्किल सवाल हो गया है।

सरदार बोला— 'तो क्या उसकी खाली पीठ पर तुम इसे बिठाना चाहते हो कि यह आसानी से भाग जाय।

"भाग कर कहाँ जायगा ? हम इसको बीच में रख देंगे। दूसरी बात जब इसके यहाँ कोई नहीं है तो क्यों न यह हमारे गिरोह में शामिल हो जाय ? हम इसे हमेशा कुछ दिन तक एक कैदी की तरह से रखेंगे। बाद को जैसा भी हो।"

सरदार को बात सूझी। उसने भैरव को बुलवाकर अपने सामने खड़ा कराकर कहा— तुम्हारे पास एक कानी कौड़ी भी नहीं है क्या ?

"नहीं।

"तो फिर तुम हमारे साथ चलो।"

वहाँ क्या करूँगा ?"

"जो हम करते हैं।"

भैरव कुछ सोचने लगा। डाकू सरदार ने फिर कहा— 'हम ऐसे डाकू नहीं हैं। समाज ने जमा किया पैसा जहाँ है हम उसे ही लूटते हैं। हमारे दया भी है धर्म भी है। हम बहुत से मठों की सहायता करते हैं।

भैरव ने मन में सोचा—"क्या हानि है इनके सम्पर्क आने से इनके ही साथ क्यों न चला जाऊँ ?"

डाकुओं के सरदार ने पूछा— 'क्या तुम्हें घोड़े पर चढ़ना आता है ?"

भैरव ने उत्तर दिया— 'हाँ कुछ-कुछ आता है।"

"चलो फिर।"

भैरव बोला—"मेरे आश्रम में कुछ जानवर हैं।"

"उन्हें खोल दो किसी गाँव की ओर हाँक दो।"

ऐसा ही किया गया। सुबह होते-होते भैरव उस खाली घोड़े पर सवार होकर उनके साथ चल गया। उसके हाथ-पैरों में उन लोगों ने जंजीरें बाँध दी थीं। इस प्रकार कि वह घोड़े की सवारी आसानी से कर सके पर भाग न जाय।

सब मिलाकर दस घोड़े और दस आदमी थे उस गिरोह में भैरव सहित। उनके साथ वह कहाँ और किधर जा रहा है कुछ पता नहीं था चले। सूर्योदय हो रहा था। सूर्य की अवस्थिति से कुछ अन्दाज लगाया उससे वे सब बराबर उत्तर की ओर ही बढ़े जा रहे थे। मार्ग बिलकुल मैदान से होकर था इसलिए गति में तेजी थी। सूर्य सिर पर चढ़ने को आए और वे लोग एक तालाब के निकट पहुँच गए।

सरदार की आज्ञा से घोड़े रोक दिए गए, सब उतर पड़े। वहीं पड़ाव डाला जाना निश्चित हुआ। घोड़ों पर से सामान और जीनें उतार ली गईं और उन्हें चरने के लिए छोड़ दिया गया।

तालाब के एक ओर बालू हटाकर गड़ा हुआ सामान निकाल लिया गया। सरदार के लिए एक तम्बू तान दिया गया उनके विश्राम के लिए। वे विश्राम करने लगे।

भैरव के हाथ-पैरों की जंजीरें कुछ कसकर बाँध दी गई और शेष लोग खाने-पीने की व्यवस्था में लग।

भोजन के उपरान्त सभी लोग विश्राम करने चले। अब भैरव को एक और जंजीर से एक झाड़ी में बाँध दिया गया। उस समय उसने कुछ नहीं कहा।

सब लोग सो गए, केवल एक भैरव ही जाग रहा था। वह अपने मन में सोचने लगा— इस तरह बन्धन में इन लोगों के साथ कब तक दिन कटेंगे? मैं अगर इनका साथ छोड़कर कहीं भागना चाहूँ तो कहाँ

को जाऊँगा ? बिल्कुल अपरिचित यह देश अब कहीं नहीं जाय सकता तो क्यों न मैं इनका भक्त होकर अपने को मुक्त कर लूँ ?"

संध्या समय जब सरदार जाग उठा तो भैरव उसके समीप गया और बोला— मेरी एक प्रार्थना है।

सरदार बोला— क्या है ?

'मेरे लिए यह देश बिलकुल नया है। मैं कहीं नहीं जाय सकता इसलिए मेरे बन्धन खोल दिए जाएँ।

तुम हमारे साथ कोई द्रोह नहीं करोगे ?

नहीं बिलकुल नहीं।

सरदार ने हँसकर कहा— 'अच्छी बात है हम विश्वास कर लेते हैं तुम्हारा।" तुरन्त ही उसने भैरव की जंजीरें खोल देने की आज्ञा दी और वह मुक्त कर दिया गया।

भैरव ने सरदार के प्रति बड़ी कृतज्ञता से देखा।

सरदार हँसा और कहने लगा— क्या नाम है तुम्हारा ?"

भैरव बड़ी चिन्ता में पड़ा सोचने लगा।

'नाम क्या इतनी देर तक सोचा जाता है ?"

भैरव को शीघ्र स्मरण आ गया वह बोला— 'मेरा नाम दरद है।

'दरद ! अगर हम तुम्हें यहाँ न छोड़ें तुम अपने घर पहुँच जाओगे ?"

'कहाँ है मेरा घर ?"

"वहीं जहाँ से हम तुम्हें लाए हैं।"

नहीं वहाँ मेरा घर नहीं है।"

फिर कहाँ है ?

कहीं नहीं है। कहीं न होने से ही मैं तुम्हारे विद्रोह में सबके साथ शामिल हो गया।"

सरदार ने भैरव का विश्वास करना प्रारम्भ किया यह प्राकृतिक ही था कि भैरव भी बड़ी निश्छल भक्ति से उसकी सेवा करने लगा।

'कोशिश तो यही है हमारी।"

'एक तुम्हारी कोशिश से क्या हो सकता है? जान पड़ता है प्रकृति इस प्रेत के ही पक्ष में है।

'प्रकृति तो इस ऊँचाई पर व्याप्त शीत के भी पक्ष में है। तो क्या तुम जीवित रहने के लिये आग नहीं जलाते। अभी से निर्जीव इस देह में ताप नहीं लाते? प्रकृति किसी पक्ष में नहीं होती। उसने मनुष्य को बुद्धि दे रखी है कि वह उसका उपयोग करे।"

भैरव हँसा और उसने पूछा— 'हम यह किस ओर जा रहे हैं?"

"आगे मठ के मकान में।

"वहाँ है कोई रहनेवाले ?

'कोई नहीं। वह जनशून्य स्थान है।

"फिर वहाँ जाने से मतलब ?"

'जो कुछ माल लूटकर ले जाते हैं वहीं जमा करते हैं।"

"वहाँ कौन है?

'मेरे परवाले।"

"इस निर्जन और शीत में क्या रहते हैं?

'हमारा एक मठ भी है वहाँ उस मठ की रक्षा के लिये।

"मठ में कौन है?"

'हमारे गुरुदेव वे वहाँ तपस्या करते हैं अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये नहीं समस्त संसार के कल्याण के लिये।

'उस कल्याण की साधना कैसे होती है?

बताऊँगा। प्रकृति में जो कानून की पकड़ से सबकी एकता बना देने की बात है उसमें बड़े परिश्रम की जरूरत है। हम वहीं साधना के बल से इसी सत्य पर पहुँचना चाहते हैं।"

भैरव को वह भयकरवादियों का मठ याद आने लगा। उसने पूछा— "कुछ और विस्तार से बताइए। मुझे इस प्रश्न से बड़ी प्रीति है।

'तुम्हारे गुरु भैरव का नाम क्या है?"

'सुना होगा शायद कभी।'

"मैत्रेय आगामी बुद्ध का नाम है। उनके जन्म पर धरती का सारा राग-द्वेष कलह वैर ऊँच-नीच की भावना अमीरी-गरीबी—सब नष्ट हो जायगी। सारी मानवता एक परिवार-सी हो जायगी। चारों ओर सुख-शान्ति का राज्य हो जायगा।

भैरव को मग चैतन्य की याद आने लगी।

सरदार कहता जा रहा था—"इस धरती पर बहुत पाप बढ़ गए हैं। हमारे गुरुदेव यहीं मैत्रेय के जन्म के लिये कठोर साधना कर रहे हैं।

"मैत्रेय भगवान् की इच्छा से जन्म लेंगे या गुरुदेव की?"—भैरव ने प्रश्न किया।

"कोशिश तो यही है हमारी।

"एक तुम्हारी कोशिश से क्या हो सकता है? जान पड़ता है प्रकृति इस भेद के ही पक्ष में है।"

"प्रकृति तो इस ऊँचाई पर व्याप्त शीत के भी पक्ष में है। तो क्या हम जीवित रहने के लिये आग नहीं सुलगाते। पानी से विहीन इस देश में प्यास नहीं बुझाते? प्रकृति किसी पक्ष में नहीं होती। उसने मनुष्य को बुद्धि दे रखी है कि वह उसका उपयोग करे।

भैरव हँसा और उससे पूछा—"हम यह किस ओर जा रहे हैं?"

"चाड़ वड़ के निवास में।

"वहाँ हैं कोई रहनेवाले?

"कोई नहीं। यह दुर्गम्य स्थान है।"

"फिर वहाँ जाने से मतलब?

"जो कुछ माल लूटकर ले जाते हैं वहीं जमा करते हैं।"

"वहाँ कौन है?"

"मेरे चरवाल।

"इस निर्जन और शीत में क्यों रहते हैं?"

"हमारा एक मठ भी है वहाँ। उस मठ की रक्षा के लिये।

"मठ में कौन है?

"हमारे गुरुदेव हैं वहाँ तपस्या करते हैं अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये नहीं समस्त संसार के कल्याण के लिये।"

"उस कल्याण की साधना कैसे होती है?

"बताऊँगा। प्रकृति में जो कानून की सत्ता है उसको एकता बना देने का काम है उसमें बड़े परिश्रम की जरूरत है। हम वहीं साधना के बल से इसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहते हैं।"

भैरव को वह अपकारत्वादियों का मठ याद आने लगा। उसने पूछा—"कुछ और विस्तार से बताइए। मुझे इस प्रश्न से बड़ी प्रीति है।"

"तुमने कभी भैरव का नाम सुना है?"

२२

डायरी का पेज

अंत में वे लोग जिस गाँव में पहुँचे वहाँ करतार और रितूपी भी आए थे। वहीं घोड़े रोक लिए गए। थोड़ा-थोड़ा सामान प्रत्येक घोड़े से था सब उतार लिया गया।

घोड़ों के आँगन में पहुँचते ही डेम्पा और उसका बेटा घर से बाहर निकल आए और सामान यथास्थान रखकर अतिथियों की आव भगत में लग गए।

सब अतिथियों का व्यक्तिगत सामान ठाकुर-गृह में ही रख दिया गया। संध्या समीप थी। चाय पीकर वे सब लोग प्रार्थना के लिए तैयार हो गए। पंची माला से भैरव को भी प्रार्थना का कुछ पाठ याद हो गया था। वह भी सबके साथ गुनगुनाने लगा।

प्रार्थना के समय की रस्म सब कुछ जोरदार करते थे वे लोग। प्रभात और सन्ध्या की प्रकाश-रश्मियों में वे साथ अपने समवेत स्वरों से एक अजीब रस भर देते थे। मार्ग में कहीं भी यह वेला हो जाती वहीं कुछ भी हल्ला वे अपनी यात्रा को विश्राम देने को रुक जाते। मिनटों में तंबू गड़ जाते और बिस्तर बिछ जाते। सबसे पहले प्रार्थना होती तब कोई दूसरा काम।

पिछले कई दिनों से भैरव और सरदार के बीच निकट संपर्क में आ जाने से विशेष प्रीति उत्पन्न हो गई थी। धर्म की ओर भैरव की अनुरक्ति देखकर सरदार और भी अधिक उस पर आकृष्ट हो गया।

भैरव उस ठाकुर गृह को देखकर बहुत प्रसन्न हो गया। सामने विशाल मूर्ति को देखकर भैरव ने पूछा— यह किसकी प्रतिमा है ?"

"यही मैत्रेय है।

"इसे किसने बनाया है?

"मैत्रेय-मठ के गुरु महाराज ने।"

"मैत्रेय-मठ कहाँ है?

"यहाँ से दो दिन की यात्रा में। वहाँ और भी अधिक एकांत है।"

"वहाँ कौन-कौन रहते हैं?

"गुरु महाराज और उनके शिष्य। लेकिन शिष्यों की वे बड़ी कड़ी परीक्षा लेते हैं। ज्यादातर शिष्य घबराकर शीघ्र ही वहाँ से भाग जाते हैं।

भैरव मैत्रेय की मूर्ति को देखते हुए बोला—"गुरु महाराज योग साधते हैं या यह मूर्ति बनाते हैं?

"मूर्ति निर्माण को क्या तुम कोई छोटा योग समझते हो?

मैं तो इसे एक साधारण पेशा गिनता हूँ।"

साधे [illegible] साधना कहा जा सकता है। लेकिन मन की कल्पना को मूर्ति का रूप देना यह तो बड़ी कला है।

"कला और योग का क्या संबंध?"

"इंद्रियों पर अधिकार करने के अनंतर जब मनुष्य अपने मन का मालिक हो जाता है तब उसके धारणा जागती है।"

भैरव अपने मन में सोचने लगा—"जिसे अब तक एक डाकुओं का सरदार समझता चला आ रहा हूँ वह तो बड़ी गहराई का जीव जान पड़ता है। भैरव ने पूछा—धारणा क्या हुई?

"धारणा यानी ठहराव। हमारे मन में सागर की भाँति हर समय विचारों की लहरें बनती और बिगड़ती रहती हैं। यही मन की चंचलता है। जब मन की लगाम बुद्धि के हाथों में आ जाती है तो फिर ये लहरें न बनती हैं न बिगड़ती हैं।"

"क्या होता है फिर?

"चित्त स्थिर हो जाता है।"

"इस जड़ता को आप क्यों महत्त्व देते हैं ?"

"यह जड़ता नहीं है, यह ध्यान-योग की सिद्धि है। जैसे गीली मिट्टी में कोई भी छाप स्थिर हो जाती है। ऐसे ही मन हो जाता है, जो भी ध्यान किया जाता है वह मूर्ति-सा स्थिर हो जाता है भीतर, और योगी मूर्तिकार सहज ही उसे बाहर साकार कर देता है।"

"उस योगी के मन में यह ध्यान कहाँ से आता है ?"

"समष्टि की चेतना में से। भूत वर्तमान और भविष्य यह हमारी गणना से है। बोधिसत्व—यथार्थ में न हुआ है, न है और न होगा। वह तीनों काल और लोकों में व्याप्त एक चिरंतन सत्य है। धारणा में उस सत्य के छोर पड़ जाने से कभी-कभी हम बोधिसत्व को पा सकते हैं। उसी का मूर्त-स्वरूप यह मूर्ति है।" सरदार ने कहा।

भैरव सोच-विचार में पड़ गया।

सरदार बोला—"गुरुदेव की धारणा ऐसी ही है, इच्छा करने पर वे मन की किसी भावना, किसी चित्र को इच्छानुसार स्थिर रख सकते हैं, इसी ताकत से वे होनेवाली घटनाओं को पहले ही जान लेते हैं। किसी मनुष्य के मन की बातों को बता देना तो उनके लिये सरल है।"

भैरव के मुँह से अचानक निकल पड़ा—"माता जी के बारे में भी यही कहा जाता था।"

सरदार ने पूछा—"कौन माता थी ?"

"एक मठ में थीं। लेकिन मैंने अपनी मूर्खता से कुछ नहीं पाया उनमें।"

"तुम हमारे गुरुदेव की परीक्षा ले सकते हो। वहाँ के लिए सामान लेकर शीघ्र ही हम लोग जायेंगे, तुम्हें भी ले चलेंगे।"

भैरव सोच रहा था—"जीवन बड़ी विचित्रता है। हम समझते हैं हम कुछ छोड़ कर आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन जब तक हमारे भीतर के विचार की प्रणाली नहीं बदलती, वे छोड़ी हुई चीजें फिर आकर हमें घेर लेती हैं।"

जोल्मा और उसका लड़का अतिथियों के लिये भोजन बना कर ले आए।

भैरव ने उनका परिचय पूछा। सरदार हँसकर बोला— 'यह मेरी पत्नी है और यह लड़का।

"इस शून्य एकान्त में तुम्हें कोई भय नहीं लगता?"

'भय आत्मा का रोग है, भगवान् के भजन से वह पास नहीं फटकता।

"मेरे भी मन में आत्मा की खोज के लिए बर्फीली आग उठी है।"— भैरव ने कहा।

सरदार बड़ी जोर से हँसा— आत्मा की खोज के लिए? लेकिन बच्चे! जब तक तुम्हारे इस मिट्टी की प्यास नहीं बुझती तुम आत्मा को नहीं ढूंढ सकते।

भैरव ने बड़े विश्वास से कहा— 'मैंने उस पानी में धोखा ही धोखा पाया इसलिए मैं उस प्यास को भी एक धोखा ही समझता हूँ।"

सरदार चौंककर बैठ गया अच्छी तरह— 'बच्चे! तुम्हारे मुख से यह बड़ा विचित्र सत्य निकल गया। क्या तुम इस पर ठहर सकते हो?"

"हाँ सरदार!"

"तब तुम पर मैं अपना कोई भार न रखूंगा—तुम्हें गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दिया जायगा। तुम वहाँ जाने को तैयार हो?"

"हाँ वहाँ क्या करूँगा?

"वहाँ तुम्हें योग सिखाया जायगा।"

"योग क्या है?"

"योग का अर्थ है जोड़।"

"कैसा जोड़?"

"जोड़—भीतर और बाहर का जोड़। भीतर आत्मा है और बाहर है माया। उन दोनों का मेल मिलाना ही योग है।"

अभी आपन इस मिट्टी की प्यास को बुझता ही है और फिर

आप उसे मोक्ष में शामिल करना चाहते हैं।

दद्दू ! मैं अधिक कुछ जानता नहीं हूँ अगर जानता होता तो ऐसे जंगलों पर्वतों और मरुथलों में भटकता न फिरता। फिर भी कुछ कहता हूँ—सुनो तुम एक सरोवर के तट पर खड़े हो।

"अगर मैंने उस मिट्टी की प्यास को तृष्णा दे दी है तो मुझे यह मरीचिका ठग नहीं सकती। वह मरीचिका नारी है सरदार ! मैं दो बार उससे ठगा गया हूँ अब तीसरी बार नहीं ठगा जा सकता।"

"वह मरीचिका नारी है—बहुत सुन्दर ! दद्दू मैं उस नारी को ही सरोवर की उपमा दूँगा। तुम उसके तट पर खड़े हो।

नहीं सरदार मैं उसे बहुत दूर छोड़कर इस एकान्त में आ गया !"

'एकान्त कहीं नहीं है और न कहीं भीड़ ही है। ये तो सिर्फ मन की कल्पनाएँ हैं।"

"क्या कल्पना सत्य है ?"

"हाँ जिसे तुम सत्य कहते हो वह एक कल्पना है और जिसे तुम कल्पना कहते हो "

"क्या कल्पना—क्या वह कल्पना ही सत्य है ? —उत्तेजित होकर भैरव बोला।

कहता तो हूँ—लेकिन सत्य गुरुदेव के पास ही मिलेगा। तुम उस सरोवर के तट पर खड़े हो। क्या देखते हो ?

'वह सरोवर नारी है ? इस उपमा को न समझकर भी मुझे यह बड़ी प्यारी लगती है।" भैरव ने अपने साथियों की तरफ देखा—"ये सब सो गए हैं।"

"हाँ ! क्योंकि ये हमारी इस बात में रस नहीं ले सके अधिकार न होने से ही रस नहीं मिला तो सो गए दद्दू ! ये सब सो गए सो जाने दो। ये सोकर भी मग्न रहे हैं।"

"कैसे सरदार ?

"सोकर जीव और भी चैतन्य होकर जागता है।"

"विचित्र सत्य !

लौटकर फिर सरोवर पर आओ। क्या देख रहे हो तुम उ
सरोवर में ?"

"उस पानी में ?

"हाँ।"

"देख रहा हूँ अपनी ही परछाईं।

"लेकिन उलटी परछाईं।

"हाँ सरकार ! इसी से मुझे उससे घृणा हो उठी।"

"लेकिन घृणा से कुछ न मिलेगा।

"प्रेम से भी कुछ न मिला।"

"इसी से पूछता हूँ। तुम कहाँ पर हो ? पानी की प्रतिच्छाया में य
धरती पर ?"

'सरकार ! मैं तो धरती पर ही हूँ। इतना सरल सत्य किसक
समझ में न आयेगा ?

लेकिन पानी की लहरों में फँसा वह कौन है ? वह तुम ही हो
वह सूक्ष्मता तुम्हारी आत्मा क्यों नहीं है ? यह जो स्थूलता धरती प
खड़ी है, वह क्यों नहीं उसका प्रतिबिम्ब है ?"

"हो सकता है।

सरदार ने भी अपने और साथियों की ओर देखा—"ये सब सो र
हैं। बन्धु ! कौन जाग रहा है ?"

"सरकार के साथ मैं जाग रहा हूँ।"

"नहीं बन्धु ! यह झूठा अभिमान है ! तुम भी सो जाओगे, केवल
बोधिसत्त्व जाग रहा है !

'सरकार, यह अखण्ड जागृति कहाँ मिलेगी ?"

"बाहर कुछ नहीं सब अपने ही भीतर मिलेगा जगत की जागृ
पर। जल में फँसा हुआ प्रतिबिम्ब जब तुम्हारे ही भीतर समा जायगा तब
बाहर जो यह प्रपंच है वह सब हमारे भीतर भी है। लेकिन हम बाह

सत्य समझते हैं भीतर कल्पना। जब भीतर सत्य समझकर बाहर कल्पना समझ लेंगे तब आवरण दूर हो जायगा। तभी हम बोधिसत्व के निकट जाने लगेंगे। जाते जाते —सरदार रुक गया।

"रुक क्यों गए ? फिर क्या हो जायगा ? जाते जाते हम बोधिसत्व के निकट पहुँच जायेंगे ?"

"हाँ।

"इस तरह मैं मिल न सकूँगा ?"

"मिल जायेंगे रुद्र !

मैं उस भूमि पर खड़ा हो गया था सरदार ! लेकिन गिर पड़ा !"

गिरने के अनुभव को लेकर फिर खड़े हो सकते हैं अगर गुरु मिल जाय।"

"कहाँ है गुरुदेव ?

मैं ले चलूँगा तुम्हें उनके पास।"

"कब ?

सरदार ने कुछ सोचकर कहा—"गुरुदेव के लिए कुछ सामान जुटाना है। एक-दो रोज में वह सब हो जाने पर हम चल देंगे।

भैरव ने पूछा—"क्या सामान है गुरुदेव का ?

गुरुदेव का अपना निजी सामान तो कुछ भी नहीं है क्योंकि वह नीची इन्द्रियों के भोग पर आधारित नहीं है।"

"नीची इन्द्रियाँ कौन-सी हैं ?

"मुँह से नीचे सब नीची इन्द्रियाँ ही हैं।

"तो क्या वे कुछ खाते-पीते नहीं हैं ?"

"बहुत कम।"

फिर जीवित कैसे रहते हैं ?"

"ऊँची इन्द्रियों के भोगों से।"

"वे क्या-क्या हैं ?

"नाक द्वारा गन्ध, आँखों द्वारा प्रकाश और कानों द्वारा ध्वनि का

भक्षण कर वह जीते हैं। वे मानव की सूक्ष्मता के भोग हैं। अन्न खाकर जीना भी कोई जीना है? सत्व भोगी होकर जीव बहुत दिन तक जीवित रहता है।

भैरव सरदार की बातों को सोचता ही रह गया।

"वत्स! मैं कुछ नहीं जानता। मुझे एक कोरा सिपाही ही समझो। मुझे शरीर से काम लेना पड़ता है और बिना अन्न के मेरी गुजर नहीं। गुरुदेव का अधिकांश केवल मनोमय है—वह फूलों की गन्ध मेघों के रस और पक्षियों के कलरव से जीवित रह सकते हैं।

"कैसे? मुझे बड़ा आश्चर्य है।'

आश्चर्य कैसा? मन की कोई वास्तविकता तो है नहीं वह एक कल्पना है।

"उनका क्या शरीर नहीं है?

'शरीर है तो सही पर कभी-कभी वे उस शरीर का अतिक्रमण कर जाते हैं।"

"मैं अजीब गोरखधन्धे में पड़ गया हूँ।"

"वहाँ जाकर देख लोगे तो सब समझ में आ जायगा। वत्स! सो रहो तुम भी तो हारे थके हो।"

"मन थकता है या नहीं?"

"मैं नहीं जानता लेकिन जो चीज स्थूलता पर ठहरी हुई नहीं है उसे थकने की क्या आवश्यकता है? सरदार ने फिर कुछ सोचकर कहा—'नहीं मन नहीं थकता।"

'सोचता कौन है?

"मन सोचता है।" अचानक कुछ गड़बड़ाकर सरदार बोला—"नहीं दिमाग सोचता है।"

भैरव ने पूछा—"मन और दिमाग में क्या अन्तर है?"

सरदार बोला—"सो जाओ वत्स! मैं नहीं दे सकता तुम्हारे सवाल का जवाब। मैं थक गया हूँ सोच नहीं सकता। मुझे बड़ी जोर की नींद

जग गई। मैं अब सो गया।

'सरदार! सचमुच में क्या तुम सो गए?"

सरदार की नाक बजने लगी थी। कुछ देर तक मन यथार्थ है या नहीं इस तर्क-वितर्क में पड़ा हुआ भैरव जागता रहा फिर वह भी सो गया।

भैरव के मन में मैत्रेय-मठ को जाने के लिए बड़ी बेचैनी जाग उठी। दूसरे दिन ज्योत्स्ना से गुरुदेव के बारे में उसकी जो बातें हुईं उनसे तो उसका मन उखड़कर वहीं चला गया। यहाँ केवल उसका स्थूल शरीर रह गया।

दिन भर बिना विराम के वह मठ के लिए थैलों में सीकर सामान भरने लगा। किसी में घी-नमक किसी में चाय-मक्खन और भी अनेक तरह की आवश्यक चीजें।

सन्ध्या को उसने सरदार के सामने खड़े होकर कहा—"सरदार, जितना सामान था सब मैंने ठीक कर लिया।"

"बकरियाँ और जानवर?

उनकी कोई कमी नहीं है।"

सरदार दूसरे ही दिन सारा सामान बकरियों और जन्तुओं पर लाद कर मठ के लिए रवाना हो गए। दो दिन यात्रा में लगे। तीसरे दिन दोपहर में वे लोग मठ में पहुँच गए।

सरदार और भैरव ने मठ के बाहर एक विचित्र आकार देखकर आपस में बातचीत करनी आरम्भ की।

सरदार ने कहा—"यह भारी आकार की चिड़िया-सी दिखाई दे रही है इतनी बड़ी चिड़िया तो कोई होती नहीं।"

"सरदार, सृष्टि में पहले होती थी।"

"कौन कहता है?"

भैरव सोचने लगा कुछ सोचकर उसने निर्भय होकर कह दिया—"मैंने पढ़ा है।"

"कन्जूर और तंजूर में तो मैंने कहीं नहीं पढ़ा है।

भैरव को कहना पड़ा— मैंने इतिहास में पढ़ा है।

"कौन से इतिहास में ?"

"अंग्रेजी के इतिहास में।

"तुम्हें अपनी धार्मिक किताबें छोड़कर साइंसदानों की किताबें पढ़ने की क्या जरूरत है ? इन्होंने सच्चाई का बड़ा भयानक रूप बनाया है। तुमने यह अंग्रेजी क्यों पढ़ी ? कहाँ पढ़ी ?

"क्या बता दूं ? दार्जिलिंग में पढ़नी पड़ी मुझे।"

दोनों गुफा के नजदीक आते जा रहे थे। सरदार ने कहा—"यह चिड़िया तो नहीं जान पड़ती यह।

"मुझे तो हवाई जहाज-सा जान पड़ता है।

"तुमने हवाई जहाज कहाँ देखा है ?

"वहीं दार्जिलिंग में मैंने इसकी तसवीर भी देखी है और आसमान में इसे उड़ता हुआ भी देखा है।

दोनों और नजदीक आ गए थे। भैरव बोल उठा—"यह तो हवाई जहाज ही है।

"हवाई जहाज ? नहीं जी ! गुरुदेव की कोई मानसिक कल्पना होगा।"

"मानसिक कल्पना कैसी ?"

"भाई यह सब जो कुछ विस्तार है, सब मानसिक कल्पना ही तो है। भगवान् की कल्पना है लेकिन योगी लोग भी कल्पना कर लेते हैं। गुरुदेव भी कभी-कभी कुछ ऐसी बातें उपजा देते हैं। यह जो अजीब मठ है कहते हैं यह भी तो एक वैसी ही कल्पना है। नहीं तो ऐसे विकट पहाड़ के ऊपर राज और मजदूरों की ताकत नहीं है ऐसा मठ खड़ा कर दें।"—सरदार ने कहा।

भैरव कुछ चौंककर बोला—"मठ कहाँ पर है ?"

"इधर से नजर नहीं आता। उधर दक्खिन की तरफ से बड़ी कठिनता से दिखाई देता है। बिलकुल ढालू चट्टानों पर बना है।

दुर्गम ऊँचाई पर है। कोई ऊपर से जा नहीं सकता किसी तरह।"

रास्ता किधर से है?"

"इधर ही से एक गुफा से होकर।

ज्यों ही वे लोग गुफा के द्वार पर पहुँचे चारों कालेकलूटे बाहर आकर भौंकने लगे। सरदार ने पुचकारकर उनमें अपनी पहचान जगा ली। गुफा के द्वार पर सारा सामान जानवरों की पीठ पर से उतार लिया गया और जानवर चरने के लिए छोड़ दिए गए।

भैरव ने विनम्रता से पूछा— "अगर आप आज्ञा दें तो मैं जरा इस हवाई जहाज को देख लूँ।"

सरदार बोला— "चलो मैं भी चलता हूँ। मुझे तो ऐसा भासता है यह गुरुदेव के ही मन की कारीगरी है।

दोनों हवाई जहाज के निकट आए। भैरव उत्साह के साथ उसके ऊपर चढ़ने लगा था। सरदार ने रोक दिया—"ठहर जाओ मित्र उसके भीतर न जाओ। मालूम नहीं गुरुदेव ने यह किस मतलब से बना रखा है।

"गुरुदेव की रचना नहीं है यह सरदार! देखते नहीं हो इसमें ये कैसे अक्षर लिखे हैं—ये अंग्रेजी के हैं। गुरुदेव अंग्रेजी नहीं जानते।"

"गुरुदेव अंग्रेजी नहीं जानते? यह सिर्फ तुम्हारा भ्रम है। वह क्या नहीं जानते? धरती पर जितनी भी विद्याएँ हैं—गुरुदेव को सब मालूम हैं। जो विद्याएँ अभी तक सूझी नहीं हैं वे भी उन पर प्रकट हैं।"— सरदार ने भैरव का हाथ पकड़ लिया।

भैरव सरदार के सामने कोई हठ न कर सका। धूल के तूफानों से हवाई जहाज के सब तलों पर मिट्टी जम गई थी। वह बहुत दिनों से वहीं पर पड़ा सड़ रहा था। जल वायु और धूप के प्रभावों से उसका रंग फीका पड़ गया था।

भैरव लौटने से पहले जरा बारीकी से हवाई जहाज को देखने लगा था। कुछ बातें समझ में आने पर उसने सरदार से कहा— "जहाज का

यह हिस्सा टूट गया है। जान पड़ता है किसी खराबी के कारण यह भूमि पर गिर पड़ा है। इसका चालक और इसके यात्री भगवान् जाने उनका क्या हुआ है। उनकी सड़ी या सूखी लाशें शायद अब भी हमें देखने को मिल जाएँ।

हँसकर सरदार बोला—"पुरखों ने उनका अन्त कर ही दिया होगा। चलो हम अपना काम देखें।"

दोनों लौटने लगे। इतने में भैरव को भूमि पर पड़ी एक किताब दिखाई दी। उसकी बाहर की जिल्द गायब थी। भीतर के पेज भी कुछ कटे-फटे थे।

सरदार ने भैरव को उसे उठाते देखकर पूछा—"क्या है यह?"

"कोई किताब जान पड़ती है।" भैरव ने उसे अच्छी तरह देखकर कहा—"इसमें हाथ से कुछ लिखा गया है। बाहर की जिल्द किसी जानवर ने बहुत मुमकिन है चमड़े की गन्ध पाकर खा डाली है।"

"तुम पढ़ सकते हो इसे?"

"हाँ।"

सरदार ने बड़े ताज्जुब से उसे ऊपर से नीचे तक देखकर कहा—"तुम्हें सहारा में अच्छी नौकरी मिल सकती थी तुम कहाँ इस जंगल में भेड़ें चराने लगे?"

भैरव सरदार की बातों पर कोई ध्यान न देता हुआ उस छिन्न भिन्न लेख को पढ़ने में दत्तचित्त था।

"क्या है यह? तुम तो इस लेख की बड़ी गहराई में डूब गए।

"हाँ सरदार यह किसी महिला की डायरी लिखी जान पड़ती है जो इस जहाज में अकेली ही उड़ी थी।"

"कहाँ से?"

"जगह का नाम फट गया है तारीख और महीना भी सन् सिर्फ बचा है—१९९२।"

"यह कौन सन् है?"

"मैं नहीं जानता।" —कहकर भैरव फिर उस लेख को ही पढ़ने में लग गया।

"दद्दू! तुम्हारी समझ में आ रहा है क्या? मुझे भी बताओ वह अकेली ही उड़नेवाली महिला कौन थी? उसे भय भी नहीं लगा? अकेली ही उड़ने का उसका मतलब क्या था?"

भैरव पढ़ना समाप्त कर बोला— मिस इवा इसका नाम है यह कुमारी है।

"कुमारी? क्या यह अपना वर ढूंढने चली अकेली ही?"

"नहीं दुनिया में सबसे पहले लम्बी उड़ान की एक मिसाल कायम करने के लिए।"

"व्यापार के लिए भी नहीं और सैर को भी नहीं?"

"नहीं ऐसे ही जैसे गोरीसंकर की चोटी पर चढ़ने की बात है।"

"सिर्फ दिमाग की सनकी बात! और कुछ नहीं। अच्छा पढ़ो लिखा क्या है?"

भैरव ने पढ़ना शुरू किया—"कई वर्षों से हवाई जहाज से अकेली ही संसार की पूरी परिक्रमा करने की मेरी इच्छा आज पूरी हुई। सेंट पीटर के गिरजे के मैदान में मुझे विदाई देने के लिए लोग हजारों की संख्या में खड़े थे। मेरा दिल धड़क रहा था मैं यह सोच रही थी क्या सचमुच मैं किसी दिन ऐसी ही भीड़ द्वारा स्वागत भी पा सकूंगी या नहीं? सारी भीड़ जब मेरे इस असाधारण साहस के लिए नाना प्रकार के जय-घोषों से मुझे उत्साह दे रही थी मोटरों के भोंपू बजाकर मेरी विदाई को मुखरित किया जा रहा था तब मैं सोच रही थी—यह मेरी आत्म-हत्या को बल देने का प्रयास तो नहीं है? मेरा जहाज आकाश में उड़ चला लोगों का शोर चरम सीमा पर पहुँच गया। वसंत का यह प्रभात मुझे बड़ा ही मनोरम जान पड़ा। बादलों से विहीन स्वच्छ आकाश में उड़ी जा रही थी। ऐसे सुन्दर मौसम में मौत की याद भी

क्यों कब सुबह होगी ? भैरव ने निराश होकर डायरी के तमाम पृष्ठ पलट डाले।

"बस ? और कुछ नहीं है ?

"नहीं ! या तो लिखा नहीं गया या पन्ना फटकर गायब हो गया।"

गुरुदेव से पता लग जाएगा।

मुर्गा, साँप और सूअर

रिपूची सुरा के समुद्र में डूब जाना चाहता था इसी से उस अन्धकार मयी गुफा का होकर रह गया। सुरा समाप्त ही नहीं होगी यह उसके मास्टर का विषय था उसका जीवन समाप्त हो जाएगा—यह उसका ध्रुव सत्य था।

दूसरे दिन कमलम उसके लिए चाय और कुछ भोजन लेकर आया और उसने उससे कहा—"इस अँधेरी गुफा का मोह छोड़ दो दोस्त। यह पेट-पाताल जानवरों की खोह है।

'तुम कहाँ रहते हो ?"

"मैं तो ऊपर दिन-दुनिया में रहता हूँ। गुरुदेव ने मुझे बहुत काम सौंप दिए हैं।"

"हूँ !" बड़ी तुच्छता-सा कमलम को देखकर रिपूची ने कहा—'देखो भी तुम कहीं काम क्यों न करो और मैं कहीं क्यों न सो रहूँ ? अन्त में हम दोनों को गिद्ध और गीदड़ों का ही भोजन बनना है।

"यह कायरों का दर्शन है। तुम साधु और चोर के जीवन में कोई अन्तर ही नहीं देख रहे हो। तुम्हारी विवेक-हीनता है यह। इन अँधेरे पेट-पाताल में रहने से तुम ज्योति के जगत का कोई अस्तित्व ही नहीं मान रहे हो।" कमलम ने बड़े दुख के साथ कहा— रिपूची हम आत्मा की खोज के लिए सब कुछ छोड़कर इतनी दूर आए थे। अफसोस है तुम अपना लक्ष्य भूलकर अत्यन्त तुच्छ पाशविकता में रम गए। यदि तुम्हें अन्धकार ही पसन्द है तो आँखें बन्द कर क्यों नहीं उस अँधेरे में रहते ?"

"क्या मिलेगा उस अँधेरे में ?"

"सब कुछ ! जो बाहर है वही सब कुछ । बाहर छाया है, भीतर असलियत । बाहर का सब नष्ट हो जाने वाला है भीतर जो प्राप्त कर लोगे वह तुम्हारी अक्षय तृप्ति करेगा ।

'अच्छी बात है । मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ । बीच का द्वार खुला रहने दोगे ?

किसलिए ?"

छद् के नशे के लिए । जलजन क्या तुम चाय नहीं पीते निरन्तर ?"

"तुम्हारे उस मन के अन्धकार में भी तो छद् का कलश मौजूद है । बड़ी आसानी से तुम उसे पी सकते हो ।

"नशा भी उठता है उससे ?"

"क्यों नहीं !"

"एक ही सपने में जिस सपने में वह पी जाती है ।

'सपना जागृति से अधिक गंभीर है रिपुघी ।"

'तो तुम भाग जाओ यहाँ से । मैं सपने में हूँ । गुफा के अन्धकार के ऊपर मैंने अपनी आँखें भींच रखी हैं और नींद के ऊपर मैंने नशे की चादर ओढ़ रखी है ।"

जलजन उसे नशा में समझ छोड़कर चला गया । लेकिन वह अपने मित्र के लिये अधिक बेचैन हो उठा । वह मन ही-मन उसके कल्याण के लिये कामना करने लगा । उसने गुफा के द्वार को बंद कर दिया पर उस पर साँकल नहीं चढ़ाई । इस आशा पर कि उसकी प्रार्थना सफल होगी और उसका मित्र उस अन्धकार को छोड़कर प्रकाश की ओर बढ़ जायगा ।

द्वार बंद कर उसने दिल-दुनिया में प्रवेश किया और वह मैत्री के ध्यान में बैठ गया । लेकिन उसका मन जमा नहीं उस कल्पना पर । वह सोचने लगा—"मेरा इतना निकटस्थ मित्र इस प्रकार अन्धकार में फँस गया है और मैं सारे विश्व के त्राण की उपासना करूँ ? यह एक बेढब तर्क है । मेरा पहला कर्तव्य उसका त्राण करना है । उसे प्रकाश में

लाकर ही मेरा उद्देश्य पूरा होगा।"

वह इस प्रकार बैठा ही था कि अपोलामा ने आकर पूछा—"क्या कर रहे हो?

"ध्यान कर रहा हूँ।

"किसका?

"अपने मित्र का।

"लेकिन हमें तो मैत्रेय को धरती पर उतारना है, सारे विश्व के कल्याण के लिये।

"गुरुदेव वह मेरा मित्र है, मैं उसे अपने साथ लाया हूँ। उसका उस अँधेरी गुफा में बंदी रह जाना मेरे लिये असह्य है।

"सबकी मुक्ति के लिये भगवान फिर तुम क्यों एक पर ही अटक गए हो?"—अपोलामा ने कहा। उनके पास एक हाथ का बना चित्र था उस पर उन्होंने दृष्टि की।

"गुरुदेव ध्यान किसे कहते हैं?

"क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो?

"नहीं गुरुदेव मैं आपसे सत्य प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"पाँचों इंद्रियों का जो यह बाहरी भ्रम है इसे मन में पैदा कर लेना ही ध्यान है।"

"जिसे अनुभव नहीं है मैत्रेय का वह कैसे उनका ध्यान करेगा?"

"सबके हृदयों में उस मैत्रेय का प्रकाश है। उसके लिये सच्ची इच्छा होने पर ही वह ध्यान में घुल जाता है।

"किस तरह?"

"ऐसे ही जैसे तुम मुझे देख रहे हो।"

"आँखें बंद होने पर?"

"यह आँख सिर्फ बाहर के भ्रम की साक्षी है। भगवन हमारे भीतर आँखें हैं।"

"भीतर कौन-सी आँख है?"

"जिससे तुम स्वप्न देखते हो।"

कमलन कुछ चकराया।

कंदोसामा ने कहा— "स्वप्न में पाते हो न ? पूरे रंगों में स्पर्शों में गंधों में स्वादों में और स्पर्शों में ?

"हाँ गुरुदेव पाता हूँ।

"अनुभव ? एक तुच्छता को यह नाम दिया गया है। स्मृति के ऊपर सदियों की धूल पड़ गई है। कमलन हम करोड़ों जन्मों से आवर्तित हैं। हमने बार-बार उसे देखा है।"

उसे बार-बार देखकर भी हम इस चक्कर के बाहर नहीं निकल सके क्यों ?

"उसको देख लेने से कुछ नहीं होता। जब तक तृष्णा हमारे भीतर मौजूद है तब तक निर्वाण नहीं। जब तक दिए में स्नेह है वह जलता ही रहेगा। हवा से बुझ जाना मौत है निर्वाण नहीं। निर्वाण तो तेल के समाप्त होने पर ही होगा। देखना हमें तृष्णा के क्षय का सहज मार्ग बता देता है वह हमारी तृष्णा हर नहीं सकता। कर्म का बड़ा निर्मम विधान है। वहाँ कोई अपवाद नहीं चलता। कर्म का बीज विचार में है और विचार उपजता है हमारे ध्यान से।

"गुरुदेव अभी आपने मन में से तृष्णा को निकाल देने को निर्वाण का सहायक बताया है—फिर अभी आप विचार करने को कहते हैं!"

"विचार और तृष्णा में अंतर है। तृष्णा अपनी पूर्ति के लिये बाहरी जगत में भ्रमती है और विचारणा मन में ही रमकर पूर्ण हो जाती है। तृष्णा में तुम्हारा मन इंद्रियों के पीछे भागता रहता है अपने स्वरूप को भूलकर। विचारणा में मन बुद्धि में प्रतिष्ठित रहता है।"

"गुरुदेव मैं अपने मन को अपनी बुद्धि में प्रतिष्ठा दूँगा। मैं बाहरी जगत में भ्रमित न होऊँगा मैं अपने भीतर ही ध्यान करूँगा।"

"रचना की प्रतिष्ठा से पूर्व उसके लिये आसन तैयार करना होगा। ध्यान के लिए पहले भूमिका बनाई जायगी तभी तो ध्यान जमेगा।"

"कैसे यह भूमिका बनेगी ?

"धारणा से। धारणा ही वह वेदिका है जिस पर तुम्हारे हृदय का देवता आकर स्थिर होगा।

"धारणा कैसे सिद्ध होगी ?

"प्रत्याहार से।

"प्रत्याहार क्या हुआ ?

"इन्द्रियों के पीछे भागते हुए मन को पकड़कर बुद्धि में स्थिर करना ही प्रत्याहार है।

"बुद्धि क्या है ?

"तू उस प्रत्यक्ष ब्रह्म का ही प्रकाश है यही बुद्धि है। दोपोलामा ने हाथ का चित्र कलवान को दिखाते हुए कहा— जो जब तक तुम उस निराकार ब्रह्म को नहीं पकड़ सकते तब तक इस चित्र को सामने रखो।"

कलवान ने पूछा— किसका चित्र है यह ? यह हाथ का बना हुआ है गुरुदेव क्या यह आपने ही बनाया है ?

"हाँ।"—दोपोलामा ने उत्तर दिया।

"इसके कपड़े कुछ दूसरी ही तरह के हैं। ऐसे क्यों बना दिए ?"

"ऐसे ही हैं।"

"कहाँ ?"

"तिर-भरम में।"

"वह कहाँ है गुरुदेव ?"

"हिम-दुनिया के ऊपर।

"कौन है यह ?"

"देवी महामाया ! मैत्रेय की जननी !"

"रंग-रूप विदेशी है इसका ?"

"मैत्रेय समस्त विश्व की संपत्ति है फिर तुम्हें क्यों अपने ही रंग रूप का अभिमान हो ?

"ये कहाँ से आईं ?

"आकाश से भगवान् ने भेज दी।"

"चित्र के नीचे क्या लिखा है ?

"ये महामाया के दो अक्षर हैं।

"क्या अर्थ है इस लेख का ?

"इसका लेख और वाणी दोनों हमारी बुद्धि से परे की चीजें हैं। लपोसामा ने कहा—"भ्रम में न पड़ो, कमजन मैत्रेय का अवतरण अब स्पष्ट संभव हो गया। माता आ गई! यही है वह माता।" लपोसामा ने उसके सामने वह चित्र रख दिया।

कमजन अपने मन में सोचने लगा—"माता आ गई पिता भी तो चाहिए।"

लपोसामा कहने लगा—"हाँ कमजन, माता आ गई। पवित्र अत्यन्त पवित्र है वह। उसके विरुद्ध कोई मलिन भावना न करनी होगी।

कमजन ने घबराकर मन के उस विचार को तोड़ दिया। उसने विनम्रता के साथ कहा—'हाँ गुरुदेव।

"इस चित्र को दीवार पर लटका दो और निरन्तर इसका ध्यान करो। इसकी गोद में शिशु मैत्रेय के दर्शन करो। जिस दिन तुम उसे स्पष्ट देख लोगे वह अवतरित हो जायगा। मैं भी इसी ध्यान को साध रहा हूँ कमजन। बाहर जो सारा सृष्टि का रूप है उसकी जड़ हमारे मन की गहराई में ही है।"

कमजन ने वह चित्र अपने आसन के सामने की दीवार पर लटका दिया और बड़े कौतूहल से उसे समझने की कोशिश करने लगा—"इस चित्र में जो ये तीन जानवर आपने बनाए हैं उनका क्या मतलब है ?"

"हाँ ये तीन जानवर हैं, जिन्होंने धरती पर के मानव को भी जानवर में बदल दिया है। ये तीन जानवर हैं मुर्गा साँप और सूअर! ये तीनों धरती पर के तीन पापों के प्रतीक हैं। मुर्गा काम को व्यक्त करता है, साँप घृणा को और सूअर अज्ञान को। जब मैत्रेय धरती पर

ऐसा है सब ये तीनों पाप उसी नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय पर रात का अंधकार।

मैत्रेय की जय हो, शीघ्र पधारें धरती पर। —कलजन ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

हाँ, इस कामना का भी कुछ फल है, लेकिन कामना से ध्यान का माहात्म्य कई गुना है। इस बात को तुम्हें अधिक समझने की जरूरत नहीं है।"—कहकर लोसालामा चला गया।

कलजन उस भिक्षु को देखता ही रह गया। अनगिनती भावनाएँ उसके मन में उठने लगीं— कौन है यह महात्मा? निःसन्देह यह किसी दूर देश का है। लोसालामा ने इसके बारे में आज तक कभी कुछ नहीं कहा। यह नारी विलक्षण नवीन वय की जान पड़ती है। इस एकान्त में कहाँ से आ गई? गुरुदेव आकाश-मार्ग में भ्रमण करते रहते हैं। जरूर इन्हीं में से एक होंगे।

कलजन किसी विचार में स्थिर नहीं रह सका। इसी समय अतिथि-शाला के बन्द द्वार पर उस महात्मा की आवाज सुनाई दी।

रिंचुगी चिल्ला रहा था— द्वार खोल दो कलजन, द्वार खोल दो। मैं तुम्हारी आज्ञा मानने को तैयार हूँ।

कलजन की समझ में कोई बात नहीं आई। उसने पूछा—"आखिर क्या हो गया तुम्हें? इतनी जल्दी तुम्हारी मति कैसे फिर गई?"

"बात नहीं करूँगा भाई, द्वार तो खोलो।

कलजन ने द्वार खोला। हाँफता हुआ रिंचुगी हिम-गुफा के भीतर घुस आया और बोला— यह दरवाजा बन्द कर दो।"

"क्या बात है?

मुझे बड़ा भय लग रहा है। मुझे कहीं छिपा दो।

"रिंचुगी, तुम्हें अधिक नशा चढ़ गया जान पड़ता है।"

नहीं, मैं तुमसे सच कह रहा हूँ। उस पहाड़ी पेड़ के पास की गुफा में बड़े भयानक भूत रहते हैं। आज मैंने उन्हें देखा और सुना।"

"मैं कब से तुमसे कह रहा था। भगवान् का धन्यवाद है आज तुम्हें अक्ल आई। प्रतिज्ञा करो कि तुम आज से मद्य का सेवन नहीं करोगे। मद्य से बढ़कर बुरी चीज और क्या है? यह तमाम पापों का पिता है।"—कमजन ने कहा।

"बड़े भयानक भूत!"—रिंपूची ने द्वार बंद कर उसमें साँकल चढ़ा दी।

"नशा मनुष्य को ही भूत में बदल देता है। तुम स्वयं ही भूत बन गए हो। तुम्हें देखकर मुझे डर लगता है।"

"छिपा दो कहीं।" अचानक रिंपूची की नजर उस चित्र पर गई उसने पूछा—"यह किसका चित्र है?"

"महामाया का।"

"कहाँ है वह?"

"यहीं इसी मठ के ऊपरी भाग में।"

"मुझे दिखा दो।"

"नहीं अभी हमें इसी चित्र को देखने की आज्ञा है।"

"यहाँ तो बहुत प्रकाश है। ये लकड़ी के ठप्पे कैसे हैं?"

"इनसे पुस्तकें छापी जाती हैं।"

"ये चित्र और ये मूर्तियाँ! इनका यहाँ क्या काम है?"

"गुरुदेव ने इन सबको ध्यान-साधना का बहुत आवश्यक अंग बताया है।"

"इसके लिए तो एकाग्रता चाहिए।"

"अवश्य।"

"लेकिन एकाग्रता तो वहाँ अंधेरी गुफा में है।"

"यह तुम्हारा अंधविश्वास है।"

रिंपूची फिर चौंका उछलकर बोला—"भूत! भूत!" वह चीखता-चिल्लाता कमरे में इधर-उधर दौड़ने लगा।

कमजन ने उसे पकड़कर कहा—"रिंपूची मूर्खता न करो! भूत

कोई चीज नहीं है।

है! भूत कोई चीज नहीं है! इतने दिन तक भूतों को माना तुमने उनसे भय खाया उनकी पूजा की—अब तुम भूत न माननेवाले बन गए! —रिबूची ने कहा।

'मन की कल्पना है सब जैसा सोचो वही रूप रखकर सामने आ जाता है। —कमजन बोला।

'बस यहीं पर तुम्हारी जबान रुक जाती है। मैंने भूतों को सोचा है इसी से भूत भी देखा है। कोई कारण नहीं है यहाँ आकर तुम्हारे देखने में भी आ जाएँगे।

कभी नहीं तुम्हारे विचारों की जड़ में बैठे हुए भी का अज्ञान है मैंने उसे नहीं लिया है। मेरी कल्पना में भूत नहीं है न मेरे सामने भी नहीं आ सकते।

इतने में किसी ने द्वार खटखटाकर कहा—'गुरुदेव! गुरुदेव!

रिबूची बोला—'यह कैसे आ गए भूत! अब देखता हूँ कैसे तुम्हारी बात चलती है? रिबूची जाकर दिल-कुनिया में भगवान् संवेग की विशाल मूर्ति के पीछे छिप गया।

बात ऐसी हुई उस दिन हवाई जहाज में का फटा हुआ डायरी का पन्ना पढ़ते हुए जब भैरव लौटा तो सरदार और वह दोनों मिलकर जानवरों की पीठ पर से उतारा हुआ सामान गुफा के भीतर रखने लगे। उसकी गुफा में गूँजती हुई आवाज और छाया से घबराकर रिबूची वहाँ से भागा और कमजन के पास चला गया।

बाहर का तमाम सामान गुफा में रखकर सरदार भैरव को लेकर भीतर चला। दिल-कुनिया का द्वार खटखटाकर उसने पुकारा—"गुरुदेव! गुरुदेव!

कमजन उस आवाज को सुनकर प्रभावित हुआ। उसने अपने मन में निर्णय किया—'यह पुकार किसी अधिकारी की ही है। लेकिन बिना गुरुदेव की आज्ञा पाए द्वार खोल देना उचित नहीं।" उसने जवाब में

कहा—"कौन है ?

अपना परिचय दो तुम कौन हो ?"—आवाज आई उसमें यह स्पष्ट ही गूँज रहा था पूछनेवाले के मन में इस उत्तर देनेवाले के लिये जरा भी प्रतिष्ठा नहीं है।

अब कलजन का माथा ठनकने लगा वह बोला—"गुरुदेव सिर चरण में विराजते हैं।

पूछनेवाला जोर से हँसा—"तुम कोई नए ही आदमी जान पड़ते हो खोलो द्वार।

रिपुजी भैरव की मूर्ति की ओट से बोला—"कलजन यही तो है वह मूर्ख ! और भी बड़ी समस्या है इसके साथ भला चाहते हो तो मत खोलो दरवाजा।"

कलजन द्वार खोलने ही वाला था रिपुजी के इस आग्रह पर रुक गया। सोचने लगा—"यदि ये सचमुच में मूर्ख हैं तो इन्हें द्वार खुलवाने की क्या आवश्यकता है ? वह द्वार खोलने लगा।

रिपुजी ने आवाज से कलजन का मतलब समझकर एक बार फिर कहा—"कलजन खबरदार !

कलजन ने द्वार खोल दिए। सरदार और उसके पीछे-पीछे भैरव ने प्रवेश किया। सरदार के रौबीले मुख को देखकर कलजन ने झुक-कर उसके प्रति आदर प्रकट किया।

सरदार ने भैरव से कहा—"तुम यहाँ बैठो मैं गुरुदेव से मिलकर अभी आता हूँ।" सरदार ने कलजन से कोई बात नहीं की वह सीधा आगे को बढ़कर न जाने कहाँ चला गया।

कलजन देखता ही रह गया। उसने अंदाज लगाया वह आनेवाला बढ़कर किसी गुप्त मार्ग से गुरुदेव के पास चला गया। कलजन के ऊपर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा वह गुरुदेव का जरूर कोई विशेष भक्त है। उसने भैरव के बैठने को आसन देते हुए कहा—"बैठो जी।"

भैरव इधर-उधर देखते हुए बोला—"बैठ जाऊँगा। तुम

तकलीफ मत करो।"

मूर्तियों की भव्य कला को देखकर भैरव प्रसन्न हो गया। कलजन उसके साथ-साथ उस कमरे में घूम रहा था। भैरव ने पूछा—"यह किसकी कला है ?'

गुरुदेव की।"

'अच्छा गुरुदेव मूर्तिकार भी हैं क्या ?

'हाँ वह आत्मा की खोज के लिये कला का प्रकाश आवश्यक मानते हैं।

"होगा। —भैरव ने बड़ी उदासीनता के साथ कहा।

'होता नहीं है। कला भी भावना का ही पार्थिव रूप है आत्मा की खोज उसी के सहारे होती है।

'यह मूर्ति मैत्रेय की है ?' —भैरव ने उस बड़ी मूर्ति की ओर उँगली दिखाकर पूछा। दरबार के पर उसने मैत्रेय की मूर्ति को देखा था।

मूर्ति के पीछे छिपे हुए रिखूकी की साँस बड़ी जोर-जोर से चल रही थी। भैरव ध्यानपूर्वक उसे सुनने लगा।

कलजन ने जवाब दिया—"हाँ मैत्रेय की ही मूर्ति है। वह अपने मित्र की कमजोरी को छिपा देने के मतलब से भैरव का हाथ पकड़कर आगे को ले जाने लगा।

लेकिन भैरव और भी कौतूहल के साथ उस मूर्ति के पास ठहर गया। रिखूकी ने अपनी स्थिति बदली उसके एक हाथ की कोहनी दिखाई पड़ गई। भैरव ने उसे हाथ लगाकर टटोला।

रिखूकी भेद खुल जाने पर खिजकर बाहर निकल आया और भैरव का हाथ पकड़कर बोला—"कौन होता है तू ?"

भैरव ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। कलजन ने बीच बचाव कर दिया। भैरव बोला—"बड़ा बदतमीज कौन है यह ?"

"मेरा मित्र है। जाने दो इस इसकी तबीयत कुछ खराब है।"

रिकूची कलजम पर बिगड़कर बोला— कुछ तबीयत खराब नहीं है।

कलजम ने इशारा कर भैरव को समझा दिया। भैरव चुप हो गया। दोनों आगे को बढ़ने लगे।

रिकूची अपने को स्थिर न रख सका। उसने फिर झपटकर भैरव का हाथ पकड़ लिया और बोला— 'तुम किस मतलब से यहाँ आए हो?

कलजम ने उसका हाथ छुड़ाकर कहा— तुम्हें नहीं मालूम है ये गुरुदेव के खास आदमियों में से हैं।"

"इनके हाथ-पैर तो ठोस जान पड़ते हैं। मुझे धोखा हो गया था।

भैरव महामाया के उस चित्र के पास आया। उसे देखकर उसने पूछा— यह किसकी तसवीर है?

कलजम ने जवाब दिया— 'महामाया मनुष्य की माता की।

भैरव ने कुछ और निकट जाकर देखा। उस चित्र के कैनवास पर वह बोला— 'यह तो कोई यूरोपियन महिला जान पड़ती है।

"हाँ यही है। —कलजम ने कहा।

"कहाँ से आया यह चित्र?"

"गुरुदेव ने बनाया।"

"योग-शक्ति से? इसी समय भैरव की दृष्टि चित्र के एक कोने में लिखे हुए अक्षरों पर पड़ी। उन सब को पढ़कर वह सन्न रह गया।

भैरव की भावना छिपी न रह सकी। कलजम बोला— क्या लिखा है इसमें? तुम इस भाषा को जानते हो?

"अच्छी तरह नहीं जानता।" भैरव ने टाल दिया।

चित्र के एक कोने में अक्षरों में जो लिखा था उसका अर्थ इस प्रकार था—

> इस घट में बन्दिनी हूँ मैं
> कौन मुक्त करेगा मुझे?
> —कुमारी इवा मार्गिन

भैरव ने पूछा—"गौतम की मूर्ति अधिक काल्पनिक है और यह महामाया अधिक सजीव !"

कलजम ने कहा—"लेकिन कल्पना और सत्य में कोई फर्क नहीं है।"

भैरव के मन में मठ के बाहर के टूटे हुए हवाई जहाज डायरी के फटे हुए पन्ने और महामाया के चित्र पर लिखे हुए शब्दों से एक नई ही कहानी जुड़ रही थी। उसने कलजम से पूछा—"मठ के बाहर यह हवाई जहाज किसका है ?"

"हम नहीं जानते किसका है ? वह हमारे यहां आने से पहले ही से वहां पर पड़ा है।" कलजम ने कहा।

रिंपूची बोला—"वह मुर्दों का डेरा है।"

"इसकी बातों पर ध्यान न दो यह पागल है।"—कलजम ने कहा।

"तुम दोनों क्या करते हो यहां ?"

"हम तपस्या करते हैं।"—रिंपूची बोला।

कलजम ने खिन्नता के साथ कहा—"नहीं ऐसी तकदीर कहाँ है हमारी ? हम दोनों गुरुदेव के चाकर हैं।"

भैरव ने कहा—"कोई किसी का चाकर नहीं है जी। यह स्वतन्त्रता का युग है, वह गुलामी का अन्धकार चला गया हम सब बराबर हैं।"

कलजम डरते-डरते कहने लगा—"यह कैसी बात है ? आप कौन हैं ? आप यह कैसी सुना रहे हैं ? यहाँ तो पैसे-टके का कोई सौदा नहीं है। यहाँ धर्म का मामला है। गुरु गुरु की जगह में है और चेला चेले की। बौद्ध धर्म के भीतर शील सर्वोपरि है।"

"तुम्हें धर्म के नाम पर यह बहका दिया गया है। महात्मा बुद्ध ने ही संसार में सबसे पहले समता का उपदेश दिया है। सब बराबर हैं भाई।"

"तुमने अपना परिचय नहीं दिया।"

"मैं भी ऐसे ही एक जीव हूँ।"

"और यह जो गुरुदेव से मिलने गए हैं ?"

"वह सरदार है।"

"तुम्हारे सरदार ?"

"हाँ।"

"और अभी तुम कहते थे हम सब बराबर हैं। अभी तुम्हारे सरदार निकल आए!"

२८

महामाया

सरदार ने गुरुदेव के पास जाकर भैरव के बारे में सब बातें बता दीं। उन्होंने तुरन्त ही उसे अपने पास बुला लिया। कलकल और रिमझिम करते ही वह सात एक घुमावदार एकदम गुमसुम सीढ़ियां मढ़ियों को एक ही दिन में पार कर भीतरी घेरे में पहुँच गया।

तपोमाया के सामने सरदार ने मुख्य द्वार से आकर भैरव को पेश कर कहा — "गुरुदेव यही है वह युवक।"

भैरव ने गुरुदेव के सामने तीन बार प्रणाम किया। तपोमाया ने उसके सिर पर तीन बार हाथ रखकर आशीर्वाद दिए।

भैरव तपोमाया को देखकर प्रभावित हो गया। जैसा उनके बारे में उसने सुना था उसमें कोई अधिक अन्तर नहीं जान पड़ा उसे। गुरुदेव ने उसे अच्छी तरह देखा और फिर कहा—"बहुत अच्छा युवक तुम्हारे मुख में तुम्हारी भावना अंकित है और जान पड़ता है तुम कोई बहुत बड़ा काम करने के लिए संसार में आए हो।"

भैरव चुपचाप सुनने लगा।

तपोमाया ने फिर कहा—"लेकिन एक भय है वरना बड़ा गुरुदेव रुक गए।

भैरव चुप ही रहा उसके मन में उस भय के निराकरण के लिए कोई जिज्ञासा पैदा नहीं हुई।

तपोमाया ने प्रसंग बदलकर पूछा—"युवक तुम जानते हो तब यहाँ क्यों आए हो ?"

भैरव ने कुछ सोचकर कहा— "अवश्यमेव।"

तपोमाया ने पूछा—"बताओ।"

भैरव ने जवाब दिया—"रंगीन एशिया में सफेद चमड़ेवालों की कामना कैद है। मैं उसे मुक्त करने आया हूँ।"

तपोमाया हठात् उस श्वेतांगना को सोचने लगा जिसका नाम उसने महामाया रख दिया था। उसने पूछा—"कौन है वह? तुम्हें कैसे ज्ञात हो गया?"

"सत्य स्वयं प्रकट हो जाता है गुरुदेव।"

गुरुदेव ने भैरव के कन्धे पर बड़ी प्रीति से हाथ रखकर पूछा—"साफ-साफ बताओ तो सही।"

तपोमाया के पैर छूकर भैरव ने कहा—"क्षमा कीजिए गुरुदेव ऐसे ही मुख से निकल पड़ा।"

"तुम शराब भी पीते हो?"—तपोमाया ने पूछा।

"पहले पीता था महाराज, अब अचानक उसे आज छोड़ देनी पड़ी।"

"अब क्या?"—तपो ने पूछा।

"अब छोड़ दी महाराज, कई बरस हो गए।"

"उसको कैसे जान लिया तुमने वह कहाँ कैद है?"

"कौन गुरुदेव?"

"वही वह श्वेतांगना?"

"कौन श्वेतांगना देव?" भैरव ने हँसकर पूछा।

"जिसके बारे में अभी तुमने कहा।"

"मेरा मतलब श्वेत जातियों की उस विजय की कामना से है जो एशिया के उर्वर भाग को निरन्तर अपनी गुलामी में ले लेने के लिए सोचती रहती है। वह मैंगी नहीं चाहिए उन्हें। उनकी आबादी बढ़ गई है तो वे लम्बाई-चौड़ाई में फैलने के बजाय आकाश में क्यों नहीं बढ़ जाते? गेहूँ के अन्न के बदले क्यों नहीं रासायनिक तत्वों द्वारा अपनी खुराक बना लेते?"—भैरव ने कहा।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"—लंपोलामा ने पूछा।

सरदार ने बताया—"भैरव।"

"तुम बहुत होशियार जान पड़ते हो। तिब्बती के सिवाय कुछ और भाषाएँ जानते हो ?" पुरोहित ने भैरव से पूछा।

"तिब्बती लेख-पढ़ नहीं जानता। नेपाली जानता हूँ कुछ अंग्रेजी भी।"

"जो कुछ भी है तुम्हें भगवान् ने मेरे पास एक बहुत बड़े मतलब से भेजा है।"

"लेकिन मेरा तो सिर्फ एक ही आशय है मैं उसी के लिए इस संसार में आया हूँ। वह है दुनिया में जो जबर्दस्त और दुर्बल का भेद है, उसे मिटा दूँ। यह जो एक देशवाले दूसरे देशवासी की गर्दन में फंदा लगाए हुए हैं वह फंदा काट दिया जाय। सबके अधिकार समान हैं।"—भैरव बोला।

लंपोलामा ने कहा—"भाई, तुम तो यह दुनियादारी की बात कर रहे हो—यह सब मामूली सम्पत्ति है। हमें दैवी सम्पत्ति का बराबर बटवारा करना है। जब मैं तो नहीं हूँ। यहाँ यह हुआ नहीं कि तुम्हारा उद्देश्य अपने-आप सिद्ध हो जायगा।"

"उसके लिए क्या करना होगा ?"—भैरव ने पूछा।

"उसके लिए मैत्रेय का अवतरण करना होगा धरती पर।" लंपोलामा को कुछ याद आया। उन्होंने सरदार से कहा—"दिव्य-दुनिया में महामाया का चित्र रखा है मैंने उसे ला दो।"

सरदार चित्र लाने चला गया। भैरव ने अपने मन में सोचा—"हो-न-हो वही चित्र है।"

तुरन्त ही चित्र के आ जाने पर उसका संशय मिट गया। लंपोलामा ने पूछा—"तुमने इस चित्र को देखा है ? यह महामाया है, मैत्रेय की माता।"

"मैत्रेय की माता !"—चौंक पड़ा भैरव।

"क्यों ? क्यों ?"

'यह महा भयानक पाप की बात आपके समान महात्मा के मुँह से कैसे निकल गई ? —भैरव बोला ।

सरदार ने भैरव का हाथ पकड़कर कहा— वत्स ! तुम यह क्या कहते हो ये गुरुदेव हैं ।

चंपोलामा ने सरदार के हाथ से भैरव का हाथ स्वयं पकड़कर कहा—'नहीं सरदार ! इस युवक की मन और वाणी की एकता को देखकर मैं बहुत खुश हूँ उसकी पीठ ठोकता हूँ । मुझे विश्वास है अब हमारी सिद्धि में कोई संशय नहीं है ।"

भैरव ने संकोच से माथा नीचा कर लिया ।

चंपोलामा ने उसका माथा ऊँचा कर कहा— 'वत्स ! प्रकृति दो भागों में बँटी है—क्षर और अक्षर । तुमने क्षरता को सामने रखकर पाप को देखा । अक्षरता पाप और पुण्य दोनों की सीमा का अतिक्रमण कर जाती है । महामाया के जो धर्म स्थापित होगा वह अक्षरता में होगा । इसलिए पाप की कोई कल्पना न करो ।"

भैरव ने फिर सिर नीचा कर गुरुदेव की बात का कोई विरोध नहीं किया ।

गुरुदेव ने कहा—"महामाया क्या वैभव को भोग नहीं ले सकती ?

सरदार ने जवाब दिया—"जरूर ले सकती है ।"

"फिर कैसे पाप की कल्पना तुम्हें हो ? युवक पाप और पुण्य की परिभाषा में बाँध लेना सहज बात नहीं है ।"—गुरुदेव ने कहा ।

सरदार बोले—"गुरु के वाक्य को बिना किसी संशय के ग्रहण कर लेना ही कल्याणकारी होता है ।"

भैरव बोला—"गुरुदेव इसी भय से धर्मों के भीतर क्या पाखण्ड की बुनियाद नहीं पड़ गई ? हम वाणी की गुलामी ने हमें भीतर कुछ और बाहर कुछ बना दिया !"

गुरुदेव हँसे—"धीरे-धीरे तुम्हारी समझ में आ जायगा । अच्छा एक बात तो बताओ । इस चित्र में यह क्या लिखा हुआ है ? महा-माया

है यह ? तुम पढ़ सकते हो इसे ?

भैरव असमंजस में पड़ा। उसने मन में सोचा— "इस लेख को सही सही पढ़ूँ या किसी और तरह ?" उसने तुरन्त ही निर्णय कर कहा— "गुरुदेव यह अंग्रेजी में लिखा गया है।

"क्या मतलब है इसका ?

"कुमारी इवा मार्टिन नामक किसी महिला ने इसे लिखा है। —भैरव आगे को चुप हो गया।

'क्या लिखा है ? —गुरुदेव का आग्रह था।

'गुरुदेव! —भैरव ने फिर बड़ी कठिनता से उस पत्र को पढ़ने का नाटक किया।

'तुमने पढ़ लिया है इसे। सत्य नहीं छिपाया जायगा युवक! कहो जो भी लिखा है। तुम्हें किसका भय है ?

'गुरुदेव यह नारी लिखती है—मैं इस मठ में बन्दिनी हूँ कौन मुझे मुक्त करेगा ? —भैरव ने लेख का अनुवाद किया।

"बन्दिनी ? कौन कहता है वह बन्दिनी है ? —गुरुदेव ने कहा।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोला। एक गम्भीर सन्नाटा छा गया। गुरुदेव ने ही उसे तोड़ा— 'युवक तुम उसको देखकर कहना वह बन्दिनी है या उसकी इच्छा में हम बंदी हैं!

पंचोलामा सिर मठ की ओर को बढ़ते हुए फिर लौट गया— 'तुम उसके साथ बात कर सकोगे ?

"हाँ गुरुदेव यह उन्हीं का लिखा है।

हाँ उन्हीं का लिखा है। अच्छा जाओ चुपचाप बहुत धीरे धीरे छिपकर देखो उसे। देखो क्या मैंने उसे कैद कर रखा है ?"

तीनों ऊपर की ओर चले। चार कमरे थे उसमें। चारों सम्पूर्ण साज-सज्जा से परिपूर्ण। बढ़िया गलीचे और कालीन बिछे हुए थे। छोटी चित्र विचित्र मखमलों के बिछौने में अंकित निमन्त्रण मढ़ी लगी थीं। धूप और हवा के लिए झरोखे बने थे। दीवारों पर भाँति-भाँति की

\

भाड़ियाँ लगी थीं। बढ़िया रेशमी झालरदार परदे टँगे थे। अनेक प्रकार की मूर्तियाँ रखी हुई थीं। दीवारों में दर्पण जड़े थे।

कमरे के बाहर ही गुरुदेव ने उन दोनों को ठहरा दिया और एक छेद से कमरे के भीतर देखकर धीरे-धीरे बोले— "देखो मैंने उसे वशी नहीं किया है। वह सुख से रहता है यहाँ।

भैरव ने छेद से देखा। एक परम सुन्दरी नारी श्वेतांगना एक तकिए के सहारे बैठी हुई बड़ी गहरी चिन्ता में डूबी हुई थी। उसके मुख पर करुणा मूर्तिमती होकर बसी हुई थी।

गुरुदेव बोले— "माया का बन्धन कहा जा सकता है। उसकी भावना मुख पर प्रकट नहीं और मेरी उस पर नहीं। लेकिन युवक तुम्हारे आ जाने से यह ताला टूट जाएगा।"

सरदार उसे छेद से देखने लगा।

"मालिक मैं कहीं से फुसलाकर-छीनकर नहीं लाया। परमेश्वर ने इसे मेरे पास भेजा है जरूर अपना ही मतलब पूरा करने को। ठहरो युवक जल्दी मत करना। ज्यादा बातें भी इससे करनी नहीं है।

भैरव ने फिर उस छेद से देखना शुरू किया। वह सुन्दरी उठी। उसने धीरे धीरे खिड़की खोलकर पर्दा हटाया और बाहर की ओर दृष्टि की। पर्दा गिरा दिया उसने शीघ्र ही। एक रूमाल से उसने अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछ डाला। दीवार में एक विशाल दर्पण जड़ा हुआ था उसमें उसने अपना प्रतिबिम्ब निहारा। अपनी छाती पर हाथ रखकर उसने एक ठण्डी साँस ली और फिर एक निराधार लता की भाँति नीचे बिछौने पर गिर पड़ी।

भैरव दूर देश में एक अज्ञात निर्जन में एक बौद्ध भिक्षु की सम्पत्ति में उस सुन्दरी की कल्पना कर क्षुब्ध हो उठा। एक नए ही वायुमण्डल सर्वथा विरोधी रहन-सहन और एक अनजान अपार भावना के बीच में उस बाला की विषम परिस्थिति की कल्पना कर न सका भैरव। उसकी इच्छा होने लगी वह दौड़कर उसके पास जाकर उसकी मन्त्रणा जिसमें

हो। तुमने कहाँ सीखी यह भाषा? —इवा ने पूछा।

बुद्धदेव ने कहा— बस! इतना ज्यादा मुख खोलने की आवश्यकता नहीं है। एक-एक शब्द मन पर खुल जाना चाहिए।

भैरव ने कहा—'ये पूछती हैं हमारा क्या रिश्ता स्थिर होगा?

दपासामा बोले—'तुम्हीं बताओ।

"मैं इसमे ही पूछता हूँ।" भैरव ने इवा से पूछा—'हमारा रिश्ता तुम्हारी ही रुचि पर निर्भर है।

इवा हँस पड़ी— 'मैंने तुम्हें कभी देखा नहीं तुम्हारे बारे में कुछ सुना नहीं। मैं कैसे तुमसे कोई रिश्ता कर लूं? इसीलिए तो कहती हूँ सामने आओ।

भैरव ने यही दपोसामा के कान में दुहराया। दपोसामा ने प्रत्युत्तर में कहा— इससे कहो भगवान् ने ही इसे यहां भेजा है संसार की एक विशेष सत्ता के लिए।

इवा ने यह सुनकर कहा— 'भगवान् ने नहीं भेजा है मेरा हवाई जहाज टूट गया और मैं यहां गिर पड़ी। मैं हवाई उड़ान का एक रिकार्ड स्थापित करने जा रही थी।

भैरव ने कहा—"यह कहती है भगवान् ने नहीं भेजा हवाई जहाज में पेट्रोल खत्म हो जाने से ये यहां गिर पड़ी।

दपोसामा ने हँसकर कहा— यही तो भगवान् का भेजना है।

इवा बोली—"तुम अपना परिचय देने में क्यों संकोच कर रहे हो?"

दपोसामा ने पूछा—"इसने क्या कहा?

भैरव ने जवाब दिया—"यह मेरा परिचय पूछती है।"

"यह तो मैं मैत्रेय हूँ।"

भैरव ने चौंककर पूछा—"मैत्रेय कौन है?"

तुम मैत्रेय को नहीं जानते जरूर जानते हो। मैत्रेय वही है सदियों से त्रस्त धरती जिसके आने की प्रतीक्षा कर रही है।"

"तुम मैत्रेय हो?"

"हाँ तुम मैत्रेय हो वत्स ! भ्रम और अविश्वास की कोई गुंजाइश नहीं है। यह दो—तुम मैत्रेय हो और यह मैत्रेय की जननी।

"वह मैत्रेय की जननी ! बड़ा असम्भव सत्य है यह। हम दोनों की आयु में बहुत थोड़ा अन्तर है।"

"इससे क्या होता है ? गोद ली हुई सन्तान ऐसी ही होती है। गुरु की आज्ञा मान लो हम तुम्हारे भी मैत्रेय की आत्मा की प्रतिष्ठा कर देंगे। अभी तुम्हें जो कल्पना जाग उठी है कुछ ही दिनों में वही सत्य हो जाएगा।"

इरा बोली— कौन हो तुम ? इस शून्यता में मैं कई बार आत्म भाव की चेष्टा करने लगी थी। तुमने उसे क्या लिया। क्या कभी किसी से बोलकर अपने हृदय का दुःख बाँट सकूँगी ?—मैं यही सोचती रह गई थी। तुम्हारी इस आज्ञा में मेरी प्रार्थनाएँ स्वीकृत हुई हैं। मुझे विश्वास हुआ है भगवान् अवश्य हैं। आओ मेरे सामने आओ मेरी भक्ति के उपायों पर हम बहस कर सकें।"

धम्मालामा ने कहा— 'यह न-जाने क्या-क्या बक रही है। तुम्हें शीघ्र ही इस पर मेरा उद्देश खोल देना चाहिए।

"हाँ गुरुदेव !"—भैरव ने कहा।

"नहीं ! यह संबोधन नहीं देना होगा अब तुम्हें अब से, तुम जगद्गुरु मैत्रेय हो। मुझे गुरु कहने से तुम्हारे भीतर मैत्रेय की आत्मा प्रकाशित न हो सकेगी।"

"अच्छी बात है।"

"सबको एक साधारण मनुष्य समझकर बात करो।

'ऐसा ही होगा। अब मैं इस पर अपना सम्बंध खोलता हूँ।" भैरव ने इरा से कहा—"सुनती हो ? मेरा-तुम्हारा सम्बंध क्या है ? तुम मेरी माता हो मैं तुम्हारा बेटा हूँ।"

'छी ! यह क्या परिहास करते हो ? मुझ कलंकिनी बनाते हो तुम ?"

'नहीं तुम संसार में पूजित होओगी । मैं मैत्रेय हूँ ।

"मैत्रेय कौन है ?

'आगामी बुद्ध संसार का भाग्यकर्ता ।

नहीं मैं बिना पत्नी बने माँ बनने को राजी नहीं हूँ ।

संगोलामा ने पूछा— क्या कहती है यह ?

भैरव ने जवाब दिया—"मेरी माता बनना स्वीकार नहीं करती । कहती है मैं बिना पत्नी बने माता नहीं बन सकती ।

संगोलामा बोला—"कहो मैत्रेय के लिये सब कुछ किया जा सकता है धरती बड़ी आकुलता से उसकी प्रतीक्षा कर रही है ।

भैरव ने इला से कहा— 'बिना पत्नी के माता हो सकती हो तुम । ईसा की माता मरियम ने जिस प्रकार कौमार्य में ही मसीह को जन्म दिया इसी तरह ।

"नहीं नहीं मैं मरियम नहीं बनना चाहती ।

भैरव ने संगोलामा से वैसा ही कह दिया ।

संगोलामा प्रत्युत्तर में बोला— 'तो इसे सावधान कर दो यह अपनी भावनाओं की समाधि बनाकर इसी कमरे में समाप्त हो जायगी । तुम इसके साथ कभी कोई बात न करने पाओगे ।

भैरव ने कहा— 'इला !

इला चौंक पड़ी— तुम मेरा नाम कैसे जान गए ?

'कैसे भी हो ।

इला बड़े आश्चर्य में पड़ गई— इस ऊँचाई पर इस कँटीली हवाओं और अबूझ भाषा के देश में इस सनकीले जाय और उन के प्राण में— तुम मेरे इतने परिचित कहाँ से आ गए—कौन हो तुम ?

मैं मैत्रेय हूँ मैं आनेवाला बुद्ध हूँ मैं आ गया हूँ । तुम्हें मेरी माँ बन जाने की ममता क्यों नहीं होती ?"

"बिना प्रभात के ही निशा कहाँ हो जाती है ?

"हिम के तूफान में कभी क्या प्रभात और रात का रंग एक ही सा

नहीं हो जाता ? धरती माता के इस संकटकाल में जब कि प्रत्येक मनुष्य और जाति अपने तुच्छ स्वार्थ में अंधी हो गई है तुम क्यों अपने तुच्छ मोह में पड़ी हो ?

"तुम आनेवाले बुद्ध हो ! मैं ईसा को मानती हूँ।

"नामों के अंतर में क्या रखा है ? सभी जातियाँ आनेवाले प्रभु को मानती हैं। जिसे बौद्ध लोग बुद्ध कहते हैं—क्यों उसी को मुहम्मद ईसा महावीर और कल्कि नहीं कहा जा सकता ?

"तुम इनमें से ही कोई या सब हो इसका क्या सबूत है ?"

'सबूत ? सबूत कुछ नहीं सिर्फ तुम्हारा विश्वास। आस्तिक को किसी सबूत की आवश्यकता नहीं है और नास्तिक किसी तरह नहीं मानता। अधिक से अधिक लोगों की भावना से ही मेरे भीतर दैवत्व की प्रतिष्ठा हो जायगी।

'लेकिन तुमने मेरा नाम कैसे जान लिया ?"

"किसी दैवी शक्ति से नहीं साधारण तर्क का अनुसरण कर।"

बताओ भी तो।

"तुम्हारे टूटे हुए हवाई जहाज में मुझे तुम्हारी डायरी का फटा हुआ पन्ना मिल गया था।"

"मैत्रेय ! मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करती हूँ तुम विश्व की मुक्ति के लिये हो। मुझे भी यहीं न भूल कर दो।

इतने ही में लंपोलामा कहने लगा—"मैत्रेय ! अधिक इसके साथ घुल-मिलकर बातें करने की जरूरत नहीं है। तुमने कह दिया इससे कि यदि यह मैत्रेय की माता बनने को राजी नहीं है तो बिना किसी के कष्ट यह-युग ऐसे ही समाप्त हो जायगी ?"

"हाँ कह दिया।

"उसका कोई असर नहीं हुआ ?"

"नहीं।

"अच्छा तुम यहीं आ जाओ।"

एक बार ऐसा कह दूं इससे ?

नहीं कोई जरूरत नहीं है।

भैरव संपोलामा था जहाँ बाहर वहीं चला गया । दोनों सिर सदन के द्वार बंद कर दिल-दुनिया में चले गए । गुरुदेव बोले— मैं चाहूँ तो खाना-पीना बंद कर एक ही दिन में इसे काबू में कर लूं लेकिन इस तरह नहीं । हमें बिना इसके हृदय को जीते सफलता नहीं मिलेगी।

हाँ ऐसा ही उचित है।

दोनों छेद से देखने लगे क्या क्या करती है।

२५

मैत्रेय !

भैरव का वहाँ से चला जाना यमी इला पर छुपा नहीं था। लेकिन गुरुदेव को वहाँ से कुछ दूसरी [illegible] भावना लेकर जाते हुए देखकर इला कुछ सहम गई थी जरूर। उसने भैरव के लिये कहा— मेरे सामने प्रगट हो जाओ न ! जिसका तुम्हें डर था वह तो चले गए।

लेकिन जब उसे इसका कोई उत्तर न मिला तो उसने अपने मन में समझा गुरुदेव अकेले ही नहीं गए। वह उठी उसने कमरे में चारों ओर देखा। कहीं किसी को न पाया। द्वार की ओर बढ़ी। द्वार बंद कर दिया गया था। उसने द्वार पर हाथ से धक्के देकर पुकारा— "क्यों द्वार क्यों बंद कर दिए तुमने ? अब तक बोल रहे थे। मैं अपनी प्राणों का मानव छोड़ दूंगी। आओ न।"

बाहर छेद से जंगामामा और भैरव दोनों देख रहे थे। जंगामामा ने भैरव से चुप रहने का इशारा किया।

"मैत्रेय ! मैत्रेय ! कहाँ हो तुम ? सामने आओ न।

गुरुदेव भैरव का हाथ पकड़ दूर ले जाकर बोले—"क्या कह रही है यह ?"

कुछ नहीं—मैत्रेय ! मैत्रेय !—कहकर मुझे पुकार रही है।"

"चलो अच्छा हुआ इसकी आवाज से तो तुम्हारा जन्म हो गया !"

"मैत्रेय ! मैत्रेय !" इला द्वार खटखटाकर बोली—"मैं तुम्हारे नाम की रटना लगा चुकी दिन-रात। तुम कहीं नहीं [illegible] मैं तुम्हारी तरह जानती हूँ (तुम कब तक न [illegible] !

"भैरव [illegible] जंगामामा [illegible] दूर

महत्ता से मंडित हो जाती है।

मुझे कोई जवाब तो देना ही चाहिए। मैत्रेय करुणा की मूर्ति है।"

"जरूर दो जवाब—वह एक ही है। यह जब मैत्रेय कहकर पुकारती है तुम माता! माता! कहो।"

प्रभा ने फिर पुकारा— मैत्रेय! मैत्रेय!

भैरव ने प्रत्युत्तर में कहा—"माँ! माँ!

"नहीं नहीं कुछ और बोलो।

भैरव ने जंपोलामा की ओर देखा। जंपो बोला— "और क्या बोला जा सकता है, मैत्रेय अपनी माता से और जो कुछ कह सकता है तुम भी कहो।

"मैत्रेय! मैत्रेय! —प्रभा फिर चिल्लाई उधर से।

"माँ! माँ!"—इधर से भैरव ने उत्तर दिया।

"नहीं मैं किसी की माँ नहीं हूँ।

भैरव ने जंपोलामा से कहा—"यह कहती है मैं किसी की माँ नहीं हूँ।

"तब पड़े ही बंद रहने दो इसे। जब तक यह मन से पुत्र कह देने को तैयार न होगी द्वार नहीं खोले जाएंगे।—जंपोलामा ने कहा।

"मैत्रेय! मैत्रेय! तुम चाहे किसी के भी पुत्र हो सकते हो। मैं तुम्हें मैत्रेय मानने को तैयार हूँ। द्वार खोल दो।

जंपो ने पूछा—"यह तुमसे क्या कह रही है?"

"नहीं।"

"कभी फिर मत खोलो द्वार। इसमें यह दो द्वार ही नहीं इसका भोजन भी बंद कर दिया जायगा।"

भैरव ने वैसा ही कह दिया। प्रभा बोली—"मुझे जरा भी भय नहीं है। अगर तुम मुझे इस तरह मार देना चाहते हो तो मैं समझती हूँ मेरे कमरे की ये खिड़कियां बाहर काफी ऊँची हैं और उनके नीचे के चट्टान

ये शीशे और सख्त हैं। मैं यहीं से कूदकर आत्महत्या कर सकती हूँ।" भैरव ने अविश्वास्य यह मुस्कैया ने कह दिया। गन्धव हँसे— मर जाना इतना आसान नहीं है अम्मो।

लेकिन भैरव यहीं पर रुक गया— नहीं हमें एक अबला पर कठोर नहीं होना चाहिए।

'अच्छा तुम यहाँ से ऊपर छिप जाओ। मैं तुम्हारे मन का वहम निकाल देता हूँ। मैं इसे बीच के कमरे में बन्द कर देता हूँ जहाँ इसके कूद जाने के लिये कोई खिड़की नहीं है। —कहकर कांचोलामा ने द्वार खोले।

द्वार खुलता देखकर बड़ी प्रसन्नता न हुई। भाग को बड़ी पर जब उसे कांची दिखाई दिया तो वह बड़ी निराशा के साथ पीछे को हट गई।

कांची ने इशारा कर उस कमरे को दिखाया जहाँ वह उसे बन्द करना चाहता था लेकिन इला ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

कांची ने फिर जब बार-बार उस कमरे की ओर इशारा किया तो इला उधर चली गई। कांची ने द्वार बन्द कर दिए।

इला ने चिल्लाकर कहा— भैरव !

"हाँ माँ !"—भैरव ने जवाब दिया।

"इस कमरे में कोई खिड़की नहीं है इसीलिए तुमने मुझे अब यहाँ बन्द किया है। लेकिन तुम क्यों ऐसा समझते हो मैं परदे की रेशम की रस्सी खोलकर उससे फाँसी लगा सकती हूँ।

भैरव ने कांचा को यह बात समझाई तो कांची बोला— 'यह एशिया की रीति है।

इला ने फिर पुकारा—"मैत्रेय !"

"कहो भी तो क्या कहती हो माँ ?

"पहले हम एक-दूसरे को देख तो लें तब तुम मुझसे माँ कहना।"

कांचोलामा ने यह सुनकर भैरव से कहा— 'इससे पूछो देख लेने पर यह तुम्हें पुत्र कहने को तैयार है क्या ?"

दवा ने इसका उत्तर दिया—"यह मेरी रुचि की बात है।"

नरोलामा इस पर राजी नहीं हुआ। उसने भैरव से कहा—"नहीं इसे मानना पड़ेगा। यह भगवान् द्वारा यहाँ इसी के लिए भेजी गई है। इसके भीतर कोई शैतान घुसा है। धीरे-धीरे भूख और प्यास की साधना से इसकी आत्म-शुद्धि हो जायगी और वह पापात्मा इसके शरीर से निकल जायगी। तब यह मैत्रेय के मातृपद के समान गौरवमय पद को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लेगी।

दवा बोली—"मैत्रेय तुम्हारा जन्म हो गया। तुम चलने-फिरने हँसने-बोलने लगे—तुम्हें अब किसी सहारे की जरूरत नहीं रही फिर क्यों माता को ढूँढ रहे हो अब ? तुम्हारी माता कहाँ गई ?

"मेरी माता एक साधारण माता है मैं उसका साधारण पुत्र था। मैं अब मैत्रेय हुआ हूँ। साधारण से असाधारण—मेरी भी असाधारण माता इसलिए चाहिए कि वह मेरा हाथ सँभाले रहे मैं विपथ में न पड़ूँ। हम भौतिक मार्ग से भावना के मार्ग में सिद्ध भी भटक जाते हैं।"

'कोई दूसरी माता क्यों नहीं ढूँढ लेते ?'

'तुम्हारे सिवा इस मठ में और दूसरी कोई स्त्री नहीं है।

'माता के लिए क्यों बेचैन हो उठे हो ? माता के अभाव में पिता सही।"

लेकिन नरोलामा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भैरव के द्वारा उसे अन्तिम चेतावनी दी—"जब तक तुम मैत्रेय को पुत्र का सम्बोधन न दोगी तब तक न तुम्हारे लिए ये द्वार खोले जायेंगे न तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर ही दिया जायगा।"

नरोलामा भैरव का ध्यान दवा की ओर से हटा देने के लिए उसे मूर्तियों की तरफ ले गया। दवा का कमरा वहाँ से दूर पड़ता था। द्वार बन्द होने के सबब उसकी आवाज उधर शायद नहीं सुनाई पड़ने की बहुत सम्भावना थी।

नरोलामा बोले—"मैत्रेय अभी कुछ दिन तुम्हें प्रकृति के रहस्य

मुझे बताने पड़ेंगे। जब तुम्हारे भीतर सत्य जाग उठेगा तो फिर मैं तुम्हारे चरणों में बैठकर सीखूंगा।"

"बहुत अच्छा तब तक मैं गुरुदेव कह सकता हूँ आपको ?

संगोलामा हँस पड़ा।

"और सत्य के जाग जाने पर तो मुझे माता-पिता के सम्बन्ध खोजने की कोई आवश्यकता न रहेगी न ?

संगोलामा के मुख पर गम्भीर छाया फैल गई। वह बोला— इसके बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

हवा अपन कमरे के द्वार पर अपनी हथेलियाँ बजाती हुई कह रही थी— मैत्रेय ! मैत्रेय ! सब स्वरों में सुनाई देनेवाली उसकी पुकार को संगोलामा अपनी आवाज में दबा देने लगा।

संगोलामा ने कहा— मैत्रेय कल्पना एक वास्तविकता है। सब लोग उसे कुछ भी मान नहीं देते।

वास्तविकता कैसी ?"

"मैत्रेय—यह एक कल्पना है विश्वास के बल पर हम इसे वास्तविकता में बदल सकते हैं। संसार में जो कुछ भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है सब एक कल्पना से निकलकर फिर उसी कल्पना में विलीन होता जा रहा है। इसी मठ का उदाहरण लो—यह एक दिन एक कल्पना था आज इसका जो रूप है वह स्थायी नहीं है, किसी दिन यह फिर कल्पना में ही मिल जायगा।"

भैरव का ध्यान हवा के ही कमरे की ओर था। वह कभी प्रत्यक्ष में उसकी पुकार को सुन रहा था कभी उसकी प्रतिध्वनि में।

संगोलामा ने कहा— मैत्रेय तुम समझ रहे हो मेरी बात ?"

भैरव ने यों ही कह दिया— 'हाँ गुरुदेव !"

"ध्यान क्या है—कल्पना का ही एक शुद्ध रूप। बिना धारणा का क्षेत्र तैयार किए ध्यान की सार्थकता नहीं है। मैत्रेय को अपने भीतर जागृत करने के लिए तुम्हें कुछ दिन एकाग्र होकर ध्यान करने की

आवश्यकता है।"

'कितने दिन ? —भैरव ने पूछा।

समय कोई बड़ी चीज नहीं है। धारणा प्राप्त कर लेना ही ध्यान की परिपूर्णता है।"

"धारणा कैसे मिलेगी ?

"ध्यान की सहायता से। ध्यान और धारणा एक दूसरे पर टिके हुए हैं जैसे स्वर में ताल और ताल में स्वर या रेखा में रंग और रंग में रेखा। ध्यान के जमते-जमते धारणा घुल पड़ेगी धारणा के घुलते-घुलते ध्यान खिल पड़ेगा।

"हाँ गुरुदेव" भैरव के कान हवा की ओर ही थे। उसका ध्यान वहीं था। उसने कहा— गुरुदेव वह फिर पुकार रही है—मैत्रेय! मैत्रेय!

'तुम उसकी मनन की पुकार में जब तक धुन-धुन की ध्वनि न सुन लोगे द्वार नहीं खोले जायेंगे।

'गुरुदेव! क्या मेरी कल्पना से भी वह अपनी पुकार को बदल सकती है? या उसके अपने नियम से ही वह बदल सकेगी?

'कल्पना केवल दर्शन की ही नहीं है मैत्रेय! वह श्रवण की भी है। तुम उसकी आवाज में धुन-धुन की पुकार जब लो तो उसे कहना ही पड़ेगा ऐसा।"

"ऐसे ही हमें पाँचों इन्द्रियों के इष्ट प्राप्त हो सकेंगे ?

'निःसन्देह!"

"तब हम अपने ही में परिपूर्ण हैं। हमें अपनी कामनाओं के लिए किसी के आग्रह की आवश्यकता नहीं है।"

"अवश्य!

फिर मनुष्य की बहिर्मुखता ही उसका बन्धन है। मैं अन्तर्मन होकर अपनी समस्त कामनाओं को जीत लूँगा।"

'हाँ! हाँ! तुम्हारे भीतर यही मैत्रेय बोलने लगा है।"

"भैरव की माता भी उसके भीतर ही है। भैरव जोर-जोर से पुकारने लगा—"माता! माता!

'पुकारता क्यों है भैरव! जब सब कुछ तुम्हारे भीतर ही है तो तुम बाहर किसे पुकार रहे हो?

"जब सब कुछ सबके भीतर ही है तो फिर उपदेश की क्या जरूरत है?"

"इसी सत्य का बोध कराने के लिए कि सब कुछ सबके भीतर ही है। भैरव इसी प्रकाश तत्व को तुमने पहले सीखकर सबको सिखाना है। जितना आकाश बाहर है उतना ही तुम्हारे भीतर है। काल का जो महासिन्धु बाहर लहरा रहा है वही तुम्हारे मन में भी रहा है। आँख बन्द करो भैरव!"

भैरव ने आँखें बन्द कर लीं।

क्या दिखाई दे रहा है?"—योगिराज ने पूछा।

"कुछ नहीं गुरुदेव!"

"ऐसा मत कहो भैरव! तुम स्वयं की विभूति हो पृथ्वी पर के उज्ज्वलतम प्रकाश! वहाँ सब कुछ दिखाई दे रहा है।

"सब कुछ कैसे गुरुदेव! यहाँ तो केवल अन्धकार ही अन्धकार है! —भैरव ने कहा।

"सब कुछ भीतर है भैरव! वाणी ही विश्वास की पूर्ण रेखा है। वाणी को गाढ़ करो। यहाँ सब कुछ भीतर है। जो अन्धकार दिखाई दे रहा है वह उन सबकी ही छाया है। केवल एक ही चिनगारी दरकार है छाया और प्रकाश के बीच में भेद पड़ जायगा और रूप खिल उठेगा।"

'हाँ गुरुदेव!"

"बिना सोचे-समझे न कहो। आँख खोल दो।

भैरव ने आँखें खोल दीं।

'यह क्या है?" गुरुदेव ने पूछा।

"भैरव की मूर्ति है।"

"यह भीगी जमीन से इसकी गीली मिट्टी रखी है, इससे इस मूर्ति को बना सकते हो?"

"मैंने कभी यह कला सीखी ही नहीं, इसका अभ्यास ही नहीं है।"

"कला के लिए अभ्यास नहीं चाहिए, उसके लिए चाहिए विश्वास। विश्वास जिसके पास नहीं है जिसका ह्रास है।"

"गुरुदेव!"—प्राणों में बड़ी कठिनाई दिखाकर भैरव बोला।

"भीतर और बाहर की सन्धि ही कला है—चाहे वह मूर्ति में मिले, चाहे गीत में, चाहे पत्थर में! देखो मैं बनाता हूँ कितनी जल्दी!"—कहते-कहते अंगोमामा ने उस मिट्टी को साकार मैत्रेय में बदल दिया थोड़ी ही देर में।

भैरव चमत्कृत हो उठा—"धन्य गुरुदेव!"

"जिसके भीतर विचार है उसके भीतर कला भी है। विचार और धारणा जब दोनों एक दूसरे में मिल जाते हैं तो मन में चित्र खिल उठता है। जब मैत्रेय का मन में देखो वहीं से फिर इस इस मिट्टी में बना देना आसान हो जायगा।"

"धीरे-धीरे अभ्यास से।"

"नहीं, विश्वास से।"

"गुरुदेव, आपकी धारणा जागृत है, तो फिर आप स्वयं ही भगवान क्यों नहीं बन जाते?"

"भगवान धारणाओं से बहुत ऊपर है।"

"आप सरलता से उस स्तर तक पहुँच सकेंगे।"

"नहीं, मैं सहारा देकर तुम्हें वहाँ तक पहुँचा सकता हूँ, स्वयं नहीं जा सकता।"

भैरव चुपचाप गुरुदेव का मुख ताकता रह गया।

गुरुदेव बोले—"मूर्ति बनाओ न। बाहर की इस मूर्ति के अन्तर से तुम्हारी कल्पना में अपने-आप गहराई पैदा हो जाएगी।"

भैरव मूर्ति बनाते-बनाते बोला—"गुरुदेव, मात्रा कुछ और बात

रह रही है। शायद वह आपकी बात मान लेने को तैयार है।

दोनों इला के कमरे के बाहर आकर खड़े हो गए। इला बोली—"भैरव ! भैरव !"

"हाँ माँ ! कहो न।"

"मुझे भूख लगी है।"

भैरव ने नरानामा से कहा—"कहती है भूख लगी है।"

संगोमामा बोला—"चुप रहो। कोई जवाब न दो।"

ऐसा ही किया गया। कुछ देर बाद इला बोली—"तुम कैसे कठोर भैरव हो। तुम्हारे व्यवहार से क्या ऐसे लोगों को भूखा मरना पड़ेगा ?"

जब भैरव ने कानों में यह कहा तो उसने फिर उससे मौन रहने का ही संकेत किया।

फिर कुछ देर बाद इला बोली—"तुम कैसे पुत्र हो तुम्हें माता पर कोई दया नहीं।

भैरव ने चिल्लाकर मंगी से कहा—"सुरेश हमारा मतलब हल हो गया !"

"क्या इसने तुम्हें पुत्र कहकर पुकारा है ?"

"सीधे पुत्र कहकर तो नहीं पुकारा पर परोक्ष में उद्देश्य यही है।"—भैरव ने सुरेश को समझाया।

सुरेश मान गए और बोले—"अच्छा मैं कुछ खाना सत्तू और सूखे मेवे लाता हूँ।"

इला बोली—"माता को मुक्त न करोगे ?"

"करूँगा।"

"प्रतिज्ञा करते हो ?"

"हाँ।"

"पुत्र ! पुत्र !

भैरव ने सुरेश के आने पर उनसे कह दिया।

२६

विज्ञान-शाला

बड़ी देर तक गुरुदेव इस दुविधा में पड़े रह गए। क्या सचमुच में इला मैत्रेय को यन्त्र का संचालन दे रही है। भैरव द्वार का ढक्कन खोलने को आगे बढ़ रहा था। लामालामा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"गुरुदेव, अब आप क्यों रोकते हैं? माँ बेटे को पुकार रही है।"

"धीरज रखो। एक बार मैं सुन भी तो लूँ।"

"वह कई बार पुकार चुकी। आप उसकी भाषा समझ भी तो नहीं सकते।"

"भाषा नहीं समझता यह ठीक है, पर ध्वनि को तो समझता हूँ। तुम फिर बातें करो उससे।"

भैरव ने इला से कहा—"माँ!"

"और क्या कहते हो अब तुम? क्या मैं तुमसे पुत्र नहीं कह चुकी? फिर क्यों तुम्हें मेरी ममता नहीं होती?"

भैरव ने लामालामा से पूछा—"नहीं सुना आपने?"

"हाँ सुना, पुत्र कह रही है न वह तुमसे?"

"हाँ गुरुदेव! द्वार खोल दूँ?"

लामालामा ने कुछ देर विचार करने पर कहा—"खोल दो।"

भैरव द्वार खोलने लगा। गुरुदेव बोले—"तुमसे पूछकर ही कुछ कहना होगा उन्हें।"

"हाँ गुरुदेव!"—भैरव ने द्वार खोल दिए।

इला ने भैरव को देखा। बड़ी देर तक वह उसे देखती ही रही। फिर कहने लगी—"मुझसे मेरी भाषा में बातनवाले क्या तुम्हीं हो?"

भैरव ने गुरुदेव की अनुमति लेकर उत्तर दिया—"हाँ।"

इसके बाद इला को भोजन कराया गया। भोजन के बाद वह बोली—"भैरव नारी की प्रतिष्ठा रखने के लिए मैं आकाश में उड़ी थी।"

भैरव ने गुरुदेव को समझाकर उत्तर दिया—"तुम्हारे द्वारा भैरव की माता बन जाने से नारी और भी गौरव को प्राप्त हो जायगी।"

"लेकिन मुझे इस प्रकार अवतारवाद में विश्वास नहीं।"

भैरव ने इला का यह आशय जब गुरुदेव पर प्रकट किया तो वह बहुत नाराज हो गए। ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे—"नहीं यह असम्भव बात है। यह नास्तिक होती तो यहाँ आ ही नहीं सकती थी। इसने बड़ी देर में भोजन किया है इसी से इसकी भावना में उत्तेजना फैल गई है। फिर पूछो इससे।"

भैरव ने इला से कहा—"निश्चय पर से फिर जाना भले आदमी की पहचान नहीं है।"

इला ने कुछ याद कर उत्तर दिया—"मैं अपने निश्चय पर जमी हूँ भैरव लेकिन तुम्हारा क्या मेरे प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?"

"कैसा?"

"मैं सभ्यता और विज्ञान-भूमि की बाला हूँ। कैसी भयानक परिस्थितियों के बीच मैं घिर गई हूँ यहाँ? वन की जंगली वायु में तड़पती कैसे देख सकते हो तुम? तुम मेरी भाषा समझते हो इन बर्बरों की बात नहीं कहती मैं।

"इला तुम क्या कह रही हो यह? यह तो कुशल हुई ये तुम्हारी भाषा नहीं समझते हैं। बड़ा कठिन प्रश्न तुमने इनके लिए उपस्थित कर दिया। तुम्हें अपने विज्ञान का गर्व हो सकता है, लेकिन तुम क्यों इनके दर्शन की हँसी उड़ाती हो?

"कई महीनों से इनका दर्शन देख तो रही हूँ।"

"मैं कहता हूँ इला तुमने अभी तक कुछ नहीं देखा है।"

"तुम दिखा सकते हो कह ? तुमने देखा है कुछ ?"

देखा तो कुछ नहीं है लेकिन मुझे ऐसा भासता है कुछ है अवश्य।

"मैंने कई महीनों के अपने इस प्रवास में कुछ नहीं देखा। जो देखा वह एक बनावट नाटक और पाखंड से अधिक कुछ नहीं।"

अपोलामा बोच में बोल उठा— मैत्रेय यह ठिकाने पर आई या नहीं ?

"धीरे-धीरे आ जाएगी गुरुदेव ! मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।

"क्या प्रयत्न कर रहे हो ?

दर्शन तर्क के परे की चीज है।

"हाँ तुमने यह ठीक ही किया है।

हवा चुपचाप एक विचित्र भाषा में उन दोनों का कथोपकथन सुन रही थी। भैरव ने कहा— 'यह मेरी भाषा विलास के वायुमण्डल में पली है। आसानी से यह दर्शन के घेरे के भीतर नहीं घुस सकती।

गुरुदेव आप इसका यह मिथ्या घमण्ड तोड़ नहीं सकते ?

"कैसा घमण्ड ?"

"इसके विलास और इसकी सम्यता का।"

"मैं कैसे तोड़ सकता हूँ अगर मैं इसकी भाषा जानता तब तो को बात भी थी।"

"तुम कोई योग का चमत्कार दिखाकर आप सहज ही यह सकते हैं। भाषा कोई महत्व नहीं रखती।"

"लेकिन आप जानता कौन है ?

"आप सब कहते हैं।"

"झूठ बोलते हैं सिर्फ मेरी महिमा बढ़ा देने की बात। तुम वे तुम प्रयत्न कर रहे हो।

"भाषा और तर्क से कुछ न होगा। क्या दर्शन तक पहुँच तक सीढ़ी जरूर है गुरुदेव। उसका उपाय करूँ ?"

"अवश्य !"—कहकर श्रीपोलाया वहाँ से चला गया।

भैरव ने इला से कहा—"इला, आओ मेरे साथ चलो।"

"कहाँ ?"—इला ने पूछा।

"चलो तुम्हें गुरुदेव की कला दिखाता हूँ। तुमने उसे देखा है या नहीं ?

"ध्यानपूर्वक तो नहीं देखा।"

भैरव इला को मूर्तिकला और चित्रों की ओर ले गया। इला उधर कभी नहीं गई थी। वह अपनी ही चिन्ता में रही थी।

इला उन मूर्तियों की ओर आकृष्ट हो गई। उसने पूछा—"क्या यह गुरुदेव की कला है ?"

"हाँ।

"कौन गुरुदेव ?"

"जिन्हें अभी तुमने बर्बर कहा था।"

"कोई वास्तविकता नहीं है यद्यपि इस कला में जीवित अनुपातों का साम्य रेखाओं की कमनीयता और संगठन का संतुलन विचार की प्रौढ़ साक्षी दे रहा है।"

"जिसके विचार की प्रौढ़ता की तुम ऐसी प्रशंसा कर रही हो फिर उसके मैथुनवाद को तुम क्यों कोरा पाखण्ड समझती हो ?"

"मैथुन भगवान् को मनुष्य नहीं बना सकता।"

"इला तुम अपने इस वाक्य से तमाम धर्मों की जड़ पर कुल्हाड़ी चला रही हो। धर्म के सिद्धान्त की जड़ मार रही हो ?"

"क्या है वह धर्म का सिद्धान्त ?"

"यही कि अच्छे विचार अच्छे कर्म को जन्म देते हैं और अच्छे कर्म से मनुष्य के जीवन का संस्कार होता जाता है। मनुष्य के संस्कार की उत्तरोत्तर वृद्धि पर क्यों देवत्व की प्रतिष्ठा न होगी ?"

इला ने भैरव के तर्क पर कोई ध्यान न देकर कहा—"एक मूर्ति किस दिशा में बना रहे हैं गुरुदेव ?"

"मुझे ठीक मालूम नहीं है।

"क्यों ?"

"मैं यहां नया ही आया हूं। लेकिन मैंने उनको मूर्ति बनाते हुए थोड़ी देर के लिए देखा है। जो कुछ देखा उससे पता चलता है, उनकी कल्पना में बड़ी स्पष्टता और उनके हाथ में बिजली का वेग है।

मैंने सुना तो है सच्चा कलाकार देश और काल का अतिक्रमण कर जाता है।"

"अर्थात् ?"

"जो विस्तार हमारी पहुंच के बाहर है वहां उसकी सहज गति है और जो काल हमारे लिए भूत और भविष्य है, वह उसके लिए न बीत चुका है, न आनेवाला है।"

क्या तुम इस रहस्य में विश्वास भी करती हो ?"

"कलाकार की अतिमानवता अवश्य ही मुझे लुभाती है। मैं उसकी असाधारण शक्तियों पर विश्वास करती हूं।

"फिर तुम क्यों विज्ञान को कला से बड़ा समझती हो ?"

"उसका उपयोग जो है रात-दिन एक एक कदम पर। कला केवल धनवानों के विलास के और किस काम की है ?"

"विज्ञान स्थूलता है उसका उपयोग भी कोई उपयोग है ? उसने निश्चय ही धरती को संकुचित कर एक ही विशाल नगर में बसा दिया है। लेकिन क्या हो गया ? यहां के और हमारे बीच में दूरी और रहस्य ज्यों-का-त्यों वैसे ही कायम है।"

"मैत्रेय धर्म और विज्ञान के झगड़े को लेकर हमें क्या करना है ? तुम्हारे गुरुदेव कोई चमत्कार दिखा दें तो हमारा विवाद सहज ही मिट जाए।"

"उनकी यह अनोखी कला जो तुम देख रही हो वह किस चमत्कार से कम है ?"

"तुम्ही मैत्रेय !" एक दीर्घ श्वास लेकर इला बोली— मुझे भूख

आज्ञा का पालन करूँगा।

दूसरा उस्तरा रिभुओं को दिया गया। दासों ने नए शिष्यों के सिर मूँडने शुरू किए।

भैरव ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा से इला को चाबी देते हुए कहा—"पेट्रोल आ गया है चार टीन।"

"यह ठीक ही समय से आया है। इतने दिनों में हमने इस जहाज में लगी हुई तमाम धूल साफ कर दी। जो कुछ कल-पुर्जों में खराबी आ गई थी उसे ठीक कर दिया और जो टूट-फूट हो गई थी उसकी भी मरम्मत हो गई। चलो ले आओ पेट्रोल।"

"अभी?"—बड़ी आकुलता के साथ भैरव ने पूछा।

"केवल प्रभात करने का विलंब। यहाँ से जहाज नहीं उड़ सकता—उसे कुछ मैदान चाहिए।"

"नीचे है मैदान लेकिन वहाँ तक हम इसे ले नहीं जा सकते।"

"इतने आदमी आए तो हैं, इन्हें बुला लाओ।"

"अभी उनके ही काम को और आनेवाले हैं, उनकी भी यहाँ न आ जाने दें। धैर्य रखो इला।"

"तुम्हें क्या, यहाँ से उड़ जाने के लिए जल्दी नहीं हो रही है। मैं अपनी नहीं जाऊँगी भैरव।"

इसी समय लगोमामा उनको ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे, बोले—"क्या कर रहे यहाँ?"

"ठीक कर रहे हैं इसे।"

"ठीक हो गया? उड़ सकता अब यह?"

"हाँ महाराज उड़ सकेगा।"

लगोमामा घबराकर बोला—"नहीं, इसको नहीं उड़ाया जायगा।"

"क्यों महाराज?"

"कारण नहीं है बताना कुछ।"

इसी बात से आतंकित भैरव बड़ा आशंकित सा देश-देशान्तरों में

प्रसिद्ध हो सकेगा।

लंपोलामा ने कुछ देर तक सोचने के अनंतर कहा—"ठीक है।"

"महाराज आप भी चलेंगे आपको भी तो हमें संसार में प्रसिद्ध करना है ऐसा बड़ा महात्मा आसानी से देखने को कहाँ मिलता है?

"लेकिन यह कहीं फिर अटक गया तो?"

"यह तो एक संयोग था हमेशा ऐसा नहीं होता। पेट्रोल की टंकी में छेद था हमने उसे ठीक कर लिया है।

"अच्छा तुम दोनों चलो आज तुम्हारा आदि शिष्यों की मण्डली में अवतरण होगा।"

लंपोलामा उन दोनों को मठ के भीतर ले चला। इरा ने मार्ग में कहा—"भैरव पेट्रोल के लिए पूछ लो।

भैरव ने कहा—"गुरुदेव कल को हमें पेट्रोल दिला दीजिए।

"वह आ गया क्या?"

"हाँ।"

सरदार ने तो मुझसे कुछ कहा नहीं। मैंने भी देखा नहीं।

"बस्ती में घुस गए होंगे। मक्खन की थैलियों में बड़ी हिफाजत के साथ लाए हैं। —उसी समय वे अतिथि-गृह से होकर जा रहे थे। भैरव ने कहा—"मैं दिखा दूँ आपको।"

"इस समय नहीं हमें आवश्यक काम है।"—लंपोलामा दोनों को शिर-गम्य की ओर ले चले।

भिक्षु-भूमियों में उन्होंने देखा, कामन और सिमूनी ने चार चेला के सिर मूँड़ लिए थे और दो पर वे उस्तरे चला रहे थे। लंपोलामा ने उन दोनों को वहाँ पर ठहरने का जरा भी अवसर नहीं दिया। तुरन्त गति से उन्हें शिर-शरण में ले गए।

वहाँ से आकर उन्होंने उन दोनों को बहुमूल्य रेशम के और जर किनार के पट्ट के कपड़ों से सुसज्जित किया भाँति-भाँति के आभूषणों से शृंगार किया। इरा को यह तिब्बती परिष्कार बड़ा प्रिय मालूम पड़ा

वह बार-बार अपने को दर्पण में देख-देखकर फूली नहीं समाती थी। वह इस प्रकार कल्पना कर रही थी— मेरा आविष्कारित और प्रतिष्ठित जहाज जब किसी नगर में पहुँचेगा तो लोग मेरा वेश देखकर भाँति भाँति की कल्पना करेंगे। मैं बहुत देर तक मूक रहकर अपने भेद को सुरक्षित ही रहने दूँगी।

भैरव तो इस परिच्छेद का साथी था अतएव उनकी कीमत बदली थी कोई नई विचार-धारा नहीं फूटी उसके। वह बोला— इरा तुम हमारे जहाज में उड़ रही हो अगर वह नहीं उड़ा तो?

केवल पेट्रोल का अभाव ही उसकी असफलता है।

अंबोसामा ने उन दोनों को छिर-मगर की एक सुसज्जित वेदी पर बिठाया। जहाँ वे स्वयं बैठकर ध्यान करते थे। उनके पीछे रेशम में अंकित अजदहे का चित्र था ऊपर से चँदोवा टंगा था नीचे बढ़िया कालीन। दाएँ बाएँ दो सुनहले के दीपाधारों पर घी के दीपक उज्ज्वल थे।

उन दोनों को वहाँ बिठाकर लोसामा उन नए चेलों को भी नए वस्त्र पहनाकर वहाँ ले आए। त्रिमूर्ति और फलराम को भी उन्हीं में शामिल किया स्वयं भी उनके साथ हो लिए। इस प्रकार वे तीनों प्राणी एक-एक माली हाथ में ले भैरव और इरा को घेर कर बैठ गए और माली घुमाते हुए जपने लगे— ओ३म् मणि पद्मे हुँ—ओ३म् मणि पद्म हुँ!"

बीच-बीच में गुरुदेव उन्हें खड़े हो जाने की आज्ञा देते। सब उठकर इसी प्रकार माला घुमाते मंत्र जपते इरा और भैरव के चारों ओर दौड़ लगाते। कभी इस ओर कभी विपरीत चाल में। फिर आसन पर बैठ जाते और फिर वैसा ही क्रम चलता।

बड़ी देर तक रात में ऐसा होता रहा। दूसरे दिन भी खा-पीकर इसी की आवृत्ति हुई। दिन में विश्राम किया गया। रात को फिर वही कार्यक्रम रखा गया।

गुरुदेव बोले— भैरव आज तुम्हें हमें कुछ उपदेश देना होगा।

भैरव ने कहा— "महाराज मैं आपको क्या उपदेश दे सकता हूँ?"

"ऐसा मत कहो । तुम ऐसा कहकर अपने पद से नीचे गिरते हो । हम निरन्तर तुम्हें ऊपर उठा रहे हैं । मेरी इतने वर्षों की साधना केवल इसी दिन के लिए थी, तुम हमें निराश न करो ।

भैरव कुछ सोचने लगा ।

"सोचने की कोई बात नहीं है । प्रसन्न होकर बैठो मैत्रेय का ध्यान करो विचार एक जल की धारा के समान बिना प्रयास ही तुम्हें प्राप्त हो जायगा । बस उसे तुम ध्वनि का रूप देते जाना ।"

"लेकिन आज नहीं महाराज आज कुछ नहीं सूझ रहा है ।

"कल को ?"—गुरुदेव ने पूछा ।

"और लोगों के आने पर ।"

"यह भी ठीक है ।" छंपोलामा ने फिर चेलों की मण्डली से माला घुमाकर मंत्र जपाने को कहा ।

दूसरे दिन भी यही क्रम जारी रहा । तीसरे दिन सरदार महंत जी और उनके आठों चेलों को लेकर आ पहुँचे । गुरुदेव ने उनकी परीक्षा के लिए पहले उन्हें अतिथिशाला में ठहराया । बिना उनसे अच्छी तरह बातें किए उन्होंने यह उचित नहीं समझा कि वे मठ में शामिल हों ।

महंत और छंपोलामा की भेंट आयोजित किया गया । बड़ी देर एक दूसरे को चुपचाप देखते रहे । पहले महंत जी ने जबान खोली—"महाराज इतनी शून्यता में आप किसे ढूंढ रहे हैं ?

"इस संसार में फैली हुई बीमारी की औषधि ।"

"बीमारी क्या है ?

"इसकी खुदगरजी ।"

"दवा मिली ?"

"दवा तो मिली है, केवल उसे शुद्ध करना है ।

"दवा क्या है ?"

"मैत्रय—उसका रूप भी हो गया है, केवल उसकी शक्ति को जगाना है ।"

"वह कैसे आयेगी ?"

मंत्र द्वारा उनके जन्मों की स्मृति जगाकर ।"

'आपको धन्य है महाराज । —महंत ने मतलब की बात कही— महाराज मैंने सुना है आपने योग शक्ति से एक हवाई जहाज मंगाया है ।'

"नहीं मैं योग-शक्ति की वास्तविकता पर गर्व नहीं करता ।

"तो क्या यह अफवाह है । यहाँ कोई हवाई जहाज नहीं है ?"

हवाई जहाज तो है पर वह स्वयं ही यहाँ आ गया ।

'कौन ले आया ?"

'मैत्रेय की जननी ।"

'कौन है वह ?'

'मैत्रेय की जननी से और बड़ा परिचय क्या है ?

'सुना है वे श्वेतांगदेश की रहनेवाली हैं ।"

"इससे उनके मैत्रेय की जननी होने में कोई फर्क नहीं आता काली गोरी सभी जातियाँ भगवान की हैं ।

महंत के तमाम संशय दूर हो गए अब उसे उन बातों को देख लेना बाकी था । उसने पूछा— 'महाराज आपको धन्य है आपने विश्व के कल्याण के लिए इतनी बड़ी कठिन तपस्या सिद्ध की । हमारा कब ऐसा सौभाग्य होगा कि हम मैत्रेय और उनकी माता के दर्शन कर सकेंगे ।

गंगोलामा को भी महंत पर कोई संशय नहीं रहा उसने उत्तर दिया— आज रात को उनकी पूजा में तुम उनके दर्शन करोगे ।

उस समय भैरव और हेला एक गुप्त द्वार से बाहर निकल गए थे और गुरुदेव की आज्ञानुसार सरकार की सहायता से हवाई जहाज के टैंक में पेट्रोल भर रहे थे।

महंत ने कहा— 'महाराज वह हवाई जहाज कहाँ है क्या हम उसे देख सकते हैं ?"

"हाँ देख सकते हो बाहर गुफा के द्वार के पास ही तो है, उसने

जाते समय नहीं देखा उसे ?

"नहीं कुछ ध्यान नहीं रहा ।"

महंत हवाई जहाज देखने के मतलब से अकेला ही बाहर निकला । वहाँ सरदार और उसके दसों अनुचर हवाई जहाज को मैदान की ओर धकेल रहे थे । वे प्रायः उसे इष्ट स्थान पर ले आए थे । एकाएक सरदार ने महंत को उधर आता हुआ देखकर भैरव और हवा को वहाँ से सुरंग की राह मठ में चले जाने का कह दिया । दोनों चल दिए ।

महंत ने वहाँ जाकर उस हवाई जहाज को देखकर कहा— "मैंने तो सुना था शीशे का जहाज है यह तो बिल्कुल अच्छा है ।

सरदार बोला— "हाँ महाराज । ऐसा ही है ।"

महंत ने पूछा— "कहाँ-कहाँ की सैर होती है इसमें ?"

"आकाश में सड़कें नहीं हैं चारों ओर इसकी स्वच्छन्द गति है ।

"कौन-कौन आता-जाता है इसमें ?

"जिनके लिए गुरुदेव की आज्ञा हो जाय ।

महंत के तमाम शक सत्य में बदल गए अब तो उसे यह भी स्पष्ट होने लगा कि जरूर साम्यवादियों के समय से उनका सीधा सम्बन्ध है । वह मन ही मन सोचने लगा— "धर्म का सिर्फ इन लोगों ने एक दिखावा बना रखा भीतर रहस्य कोई दूसरा ही है ।" वह महात्मा की मदद के शीघ्र वहाँ पहुँच जाने के लिए विचित्र हो उठा ।

रात को मैत्रेय की पूजा हुई । सब लाम मैत्रेय के चारों ओर जमा होकर मन्त्र जपाने लगे । महंत ने भैरव और हवा को देखा । उसने हवा को देखकर निश्चय किया यह स्वयंसेविका है । भैरव को देखकर उसको याद आने लगा उसने उसे कहीं देखा है । थोड़ी देर में उसे स्मरण हुआ यह वही पूना व्यक्ति है जो उस पशु चराते हुए मिला था । उससे किसी विरोधी राज्य का जासूस होने का उसे पहले ही सन्देह था अब वह निश्चय में बदल गया ।

मैत्रेय के प्रवचन का समय आरम्भ हुआ । योगेलामा ने कहा—

"अब आप लोगों को साधक होकर मैत्रेय की अमृत वाणी सुननी चाहिए। आप लोगों को यही वाणी सारे जगत में फैलानी है। यह युग का सन्देश है। हम लोग धन्य हैं जिनके भाग्य में यह सुअवसर बदा था। मैत्रेय की जय हो।"

चंपालामा ने मैत्रेय की तरफ इशारा किया। मैत्रेय ने इला की ओर देखा और मुसकराकर उससे कहा—'तुम कैसे समझाओगी ?

चंपोलामा कागज और लेखनी लेकर बैठ गया मैत्रेय के एक-एक उद्गार को अतिस्पष्ट समझकर। उस जिज्ञासा-गोष्ठी आरम्भ की हुई सभा के बीच में मैत्रेय ने मुँह खोला—"आज दुनिया बड़ा की और छोटा की हो गई है—यही इसकी बीमारी है। हम सब बराबर हैं। बड़ा को छोटा और छोटा को इतना बड़ा कर दिया जाय कि सब बराबर हो जायें—यही एक मात्र इलाज है। मैत्रेय का यही सन्देश है।

महंत आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ देखकर अपने मन में कहने लगा—"जरूर यह साम्यवादियों का एजेंट है। इस जहर को जड़ में ही मार देना चाहिए, नहीं तो यह सारे देश में फैल कर भारी उपद्रव पैदा कर देगा।

मैत्रेय फिर कहने लगा—'यह मैं नहीं बोल रहा हूँ। आप लोगों ने मेरे भीतर जो मैत्रेय की आत्मा का आह्वान किया है वही बोल रहा है। इसलिए कुछ बुरा भला मानने की बात नहीं है। मैं तमाम अन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए आया हूँ जो धर्म के नाम पर आज चल रहे हैं।

चंपोलामा आश्चर्यचकित होकर मैत्रेय की तरफ देखने लगा और मन में सोचने लगा—'यह क्या माया है ? मेरा ही बनाया हुआ यह क्या सबसे पहले मेरी ही गर्दन पर तलवार चलायगा ?"

मैत्रेय बोला—"अन्धविश्वास क्या है ? विज्ञान के साथ जिस धर्म की कोई संगति नहीं है वह सब अंधविश्वास है। आप लामों का यहाँ पर बैठे-बैठे यह माला घुमाना यह अंधविश्वास का एक नमूना है। अगर आप मुझे मैत्रेय मानते हैं तो इसे छोड़ दो।

गुरुदेव ने आँखें तरेरकर मैत्रेय की ओर देखा। मैत्रय की भावना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मैत्रय कुछ देर के लिए दया से बात करने लगा। महन्त ने गुरुदेव की ओर देखा। उनकी आँखों में कुछ विवशता [illegible] [illegible] शर उनके हृदय में चुभ गया। वह बोला— [illegible] यह क्या मन रहा है

"मैत्रय की आत्मा नहीं है यह [illegible] की आत्मा आ गई"

"फिर क्या हो इसका प्रतिकार ?"

"और ज़ोर से पढ़ो—ओ३म मणि पद्मे हुँ ओ३म मणि पद्मे

सब मन्त्र पढ़ने लगे।

भैरव बोला—"यह पाखण्ड बन्द करो।"

यशोमामा ने कहा— [illegible] तुम्हारे [illegible] [illegible] नहीं आई है यह तुम्हारे भीतर पाप बोल रहा है।

"नहीं तुमने हमें भी पाखण्ड में डाल दिया है [illegible] [illegible] वत्स ?"—मैत्रेय दया को लेकर वहाँ से चल दिया [illegible] [illegible] [illegible] बदमन।

महन्त बोला—"गुरुदेव मुझे ये आत्मवादिता के [illegible] [illegible] पड़ते हैं।"

"नहीं तो मन्त्र पढ़ता रहा अभी ठीक आत्मा आ जायगी।

फिर सब मन्त्र पढ़ने लगे—ओ३म् मणि पद्मे हुँ ओ३म् मणि पद्मे हुँ!"

भैरव और दया अपने-अपने वेश में आ गए। दया का यूरोपीय वेश देखकर महन्त बोला— यह मेम कौन है ?"

मैत्रय की माता।" यशोमामा ने जवाब दिया।

"असम्भव तक ! बेटे और माँ की आयु में क्या इतना छोटा अन्तर होता है ? मैं मैत्रेय हो सकता हूँ लेकिन ये मत्रय की माता नहीं है।

"मन्त्र जपो मन्त्र जपो ! अभी इसकी आत्मा शुद्ध नहीं हुई" यशो बोला।

"अब आप लोगों को साधक होकर मैत्रेय की अमृत वाणी सुननी चाहिए। आप लोगों को यही वाणी सारे जगत में फैलानी है। यह युग का सन्देश है। हम लोग धन्य हैं जिनके भाग्य में यह सुअवसर बदा था। मैत्रेय की जय हो!

सन्तोलामा ने मैत्रेय की तरफ इशारा किया। महन्त ने इधर की ओर देखा और मुसकराकर उससे कहा— 'तुम कैसे समझोगी ?"

सन्तोलामा कागज और लेखनी लेकर बैठ गया मैत्रेय के एक-एक अक्षर को मणिमय समझकर। जब शिक्षा-मौन आरम्भ की हुई सभा के बीच में मैत्रेय ने मुँह खोला—"आज दुनिया बड़ों की और छोटों की हो गई है—यही इसकी बीमारी है। हम सब बराबर हैं। बड़ों को छोटा और छोटों को इतना बड़ा कर दिया जाय कि सब बराबर हो जायें—यही एक मात्र इलाज है। मैत्रेय का यही सन्देश है।"

महंत आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ देखकर अपने मन में कहने लगा—"जरूर यह साम्यवादियों का एजेंट है। इस जहर को जड़ में ही मार देना चाहिए नहीं तो यह सारे देश में फैल कर चारों ओर उपद्रव पैदा कर देगा।"

मैत्रेय फिर कहने लगा— 'यह मैं नहीं बोल रहा हूँ। आप लोगों ने मेरे भीतर जो मैत्रेय की आत्मा का आह्वान किया है वही बोल रहा है। इसलिए कुछ बुरा भला मानने की बात नहीं है। मैं तमाम अन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए आया हूँ जो धर्म के नाम पर आज चल रहे हैं।"

सन्तोलामा आश्चर्यचकित होकर मैत्रेय की तरफ देखने लगा और मन में सोचने लगा— 'यह क्या माया है ? मेरा ही बनाया हुआ यह बच्चा मुझसे पहले मेरी ही गर्दन पर तलवार चलायेगा ?

मैत्रेय बोला— अन्धविश्वास क्या है ? विज्ञान के साथ जिस कर्म की कोई संगति नहीं है वह सब अंधविश्वास है। आप लोगों का यहाँ पर बैठे-बैठे यह माला घुमाना यह अंधविश्वास का एक नमूना है। अगर आप मुझे मैत्रेय मानते हैं तो इसे छोड़ दो।"

भैरव बोला— मेरी आत्मा शुद्ध है क्योंकि मैं मानव की मुक्ति का सन्देश लाया हूँ यह है—सबकी समानता सम्पत्ति की समानता, और पाखण्ड का सफाया !

महंत बोला— यह निश्चय ही साम्यवादी है गुरुदेव—इसे पकड़ कर बांधने की आज्ञा दो।"

कोई नहीं बांध सकता मुझे ? मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है इस लिए मैं विमुक्त हूँ। —वह हवा के साथ वहाँ से चला गया।

'गुरुदेव मरे वे आठों बैल कुछ ही देर में आठ सैनिकों में बदल सकते हैं। इनकी आठों नालियाँ अभी आग तलवारों में। महंत ने कहा।

'नहीं नहीं ! इसके मन के शैतान को हम अभी बदल सकते हैं। माली घुमाते रहो मन्त्र जपते रहो।

सब फिर मन्त्र जपने लगे। इसी समय बाहर गुम्फा के द्वार पर बड़ा शोर सुनाई देने लगा। तपोलामा एकाग्र होकर उसे सुनने लगा। तमाम लामा ने मन्त्र का जप स्थगित कर दिया।

महंत सोचने लगा—शायद अशान्ति से उसकी धमक यहाँ पहुँची। उसने तपोलामा से कहा—"गुरुदेव आपने मेरी बात नहीं मानी। यह जरूर उन्हीं साम्यवादियों की सेना है। उन्होंने मठ में चढ़ाई कर दी। अब माली से इनका सामना नहीं किया जायगा।

"फिर क्या होगा ?"

इन दोनों को कैद कर लें।"

"किस को ?"

"ये दोनों अत्याचारी के एजेंट हैं।"

"ऐसा है ?"—तपोलामा ने पूछा।

"हाँ उन्होंने इस एकान्त में अपना फौजी आधार बनाने के लिए आपका मठ सबसे सीधा लक्ष्य पाया है।

फिर बाहर शोर सुनाई दिया। तपो ने पूछा—"ये बाहर कौन हैं ?"

"शायद उनकी सेना है। बाहर चलकर देख लें। लेकिन घबराने की

बात नहीं है हमारे पास भी शस्त्र हैं।

सब बाहर को चले। महंत ने अपने शिष्यों को शस्त्र दे दिए। उन्होंने बाहर जाकर देखा—महंत के ही साथी आ पहुँचे थे। महंत बोला—"सब मेरी सेना है।

"तुम कौन हो? —लामों ने पूछा।

मैं रहामा की सरकार का एक अफसर हूँ। इन विरोधी साम्यवादियों का मुकाबला करने के लिए यहाँ आया हूँ। आप कोई चिन्ता न करें भगवान् का चमत्कार है हम ठीक समय पर आ पहुँचे।

चंगोलामा अब भी मानो घूमा रहा था। गगन ही में हवाई जहाज में से उनके चलने की आवाज सुनाई दी। जहाज उतरने लगा था। सब उधर दौड़े।

चंगोलामा बोला—"मैत्रेय! मैत्रेय!

हवाई जहाज में से भैरव बोला— मानव मात्र बराबर है—हम सब बराबर हैं हम सब मैत्रेय हैं।"

महंत बोला— पकड़ लो यह साम्यवादी है।

शांतिवादी हूँ। बड़े-छोटे के विचार से ही धरती पर अशान्ति है!"—भैरव बोला।

"इस श्वेतांगना पर गोली छोड़ो यह श्वेतांगों की एशिया को विजित कर लेने की कामना है। —महंत ने कहा।

"मैं इसे इसके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।"—भैरव ने कहा।

चंगोलामा ने कहा—"मैत्रेय! तुम फिर कब आओगे?"

भैरव बोला—"जब समय आयगा। मैं मैत्रेय पर विश्वास रखता हूँ पर मुझ में उसका भार उठा सकने की सामर्थ्य नहीं। मैंने जो विचित्र स्वप्न देखा है उसकी साक्षी के लिए भर आता हूँ।

चंगोलामा ने विचारा—"अभी तपस्या पूरी नहीं हुई। अपित मानुष हो गया!"

परिशिष्ट

[पुस्तक में आए हुए कुछ तिब्बती शब्द]

मबलोत=फिसलती हुई हिम शिलायें

कंग्यूर=बौद्ध धर्म-ग्रन्थ

काबो=तिब्बतियों के कमर का पटका

गऊ=तावीज

गारपन=तिब्बती अधिकारी

गुंपा=मठ

ग्यांची=तिब्बत का एक नगर

चखर=सुंघनी रखने का डिब

चोबा=भुना गेहूँ-जौ का आटा

चाङ थङ=तिब्बत का एक हिम मरु

चोमा=सूखा गोबर

छङ=जौ की शराब

छुपा=लंबा कोट

टशी ल्हुन्पो=एक मठ

डीबू=पूजा की घंटी

डोम्मा=माल की ताग

तंग्यूर=बौद्ध धर्मशास्त्रों की टीका

तुग=[illegible] की तुरही

थुल्मा=ऊनी कम्बल

थुक्पा=पतला भात

दन=ऊनी गलीचा

पंदेप=कान का आभूषण

पोनछ्हा=दलाई लामा का प्र

फुर=चाय पीने का का प्याला

मानी=प्रार्थना चक्र

ल्हामा—गुरु

शिग=[illegible]

शिगर्ची=तिब्बत का दूसरा मुख्य नगर

सोंबा=घुटने तक का ऊन और चमड़े का जूता

ह्यो=एक घास

श्या काम्बो=भेड़ का सूखा मांस